राजस्थान रा दूहा

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

सम्पादक
नरोत्तमदास स्वामी

पिलाणी-राजस्थानी-ग्रंथमाळा—नंबर २

राजस्थानरा दूहा, भाग १

PILANI RAJASTHANI SERIES—No: 2

Rajasthana-ra Duha—Part I

राजस्थानी वर्णमाळा

१ स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ अे अ‍े ऒ ओ अै अ‍ै औ औ

२ अतिरिक्त स्वर

(जो प्रायः कवितामे आते है)

आ अै औ

३ व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	व़
श	ष	स	ह	ळ	क़	ड़	ह		

४ अयोगवाह

ं अनुस्वार ँ चन्द्रविन्दु : विसर्ग

स्पष्टीकरण—अे = ह्रस्व अे। ऒ=ह्रस्व ओ।

अै = ह्रस्व अै। औ=ह्रस्व औ। आ=ह्रस्व आ

अे = हिन्दी ऐ (जैसे 'अैसा' में)

अै = संस्कृत ऐ (अइ) (जैसे दैव' में)

औ = हिन्दी औ (जैसे 'और' में)

औ = संस्कृत औ (अउ) (जैसे 'कौवा' में)

व = संस्कृत व, और अंग्रेजी W.

व़ = अंग्रेजी V.

ळ, ल़ = मूर्धन्य ल (जो वैदिक, मराठी, गुजराती आदिमे पाया जाता है)

ऊ़ = द़ का मूर्धन्य उच्चारण

द़ = अरबी ज्वाद ض

नोट १—संस्कृतका आदि व हिंदीमें ब और राजस्थानीमें व़ बन जाता है।

२—देवनागरी लिपिमें और राजस्थानी लिपिमें निम्नलिखित अक्षरोंमें मिलता हैं—ख=ष। छ=छ। झ=झ। ट=ट। ड=ड या ड़।

३—इस सीरीजमे देवनागरी लिपिको ही राजस्थानीके अनुकूल बनाकर ग्रहण किया गया है।

४—राजस्थानी लिपिमें संस्कृत व (W) व़ से और राजस्थानी व़ (V) व से लिखा जाता है। पर इससे भ्रम होनेकी आशंका है इसलिये हमने क्रम बदल दिया है (अर्थात संस्कृत व के लिये व ही रहने दिया है और राजस्थानी व को व़ से लिखा है)।

पिलाणी-राजस्थानी-ग्रंथमाळा
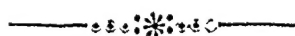
राजस्थानी भाषाके साहित्यके उद्धारके निमित्त

दानवीर सेठ घनश्यामदासजी बिडला द्वारा संस्थापित

तथा

बिडला-कालेज, पिलाणी, की अध्यक्षतामें प्रकाशित

सम्पादक

ठाकुर रामसिंह, अेम० अे०, विशारद

सूर्यकरण पारीक, अेम० अे०, विशारद

अेवं

नरोत्तमदास स्वामी, अेम० अे०, विशारद (प्रधान संपादक)

नम्बर २

प्रकाशक

नवयुग-साहित्य-मन्दिर,

पोस्ट बक्स नं० ७८,

दिल्ली।

राजस्थानरा दूहा

(भाग पहलड़ो)

महामहोपाध्याय रायबहादुर
श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा लिखित
प्रवचन सहित

—०—

संग्रहकार और सम्पादक

नरोत्तमदास स्वामी, ऍम० ऍ०, विशारद,
प्रोफेसर, बिड़ला कालेज, पिलाणी

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, दिल्ली, में मुद्रित

—०—

प्रथम संस्करण

संवत् १९९१ विक्रमी
सन् १९३५ ईस्वी

राजस्थान,

राजस्थानी संस्कृति तथा राजस्थानी साहित्यरा घणा प्रेमी

राजस्थानी इतिहासरा अमर लेखक

मातृभूमि राजस्थानरी महान विभूति

सरल-स्वभाव महामना

महामहोपाध्याय रायबहादुर

श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझारे

चरणाँमें

सविनय समर्पित ।

संपादकीय वक्तव्य

राजस्थानी भारतवर्षकी आधुनिक आर्य-वंशोत्पन्न देशभाषाओंमें सबसे प्राचीन है। सबकी जन्मदात्री अपभ्रंशके वह सबसे अधिक निकटवर्त्ती है। उसका प्राचीन साहित्य, क्या गद्यात्मक और क्या पद्यात्मक, अत्यन्त विस्तृत है। भारतीय भाषाविज्ञान और भारतीय इतिहासके सुचारु अध्ययनके लिअे उसका परिज्ञान नितान्त आवश्यक है। राजस्थानी भाषाका लोक-साहित्य Folk-Literature भी किसी भाषाके लोक-साहित्यसे कम विस्तृत और कम मनोरंजक नहीं। इस विस्तृत साहित्यका प्रकाशन सभी दृष्टियोंसे आवश्यक है। इसी उद्देश्यको ध्यानमें रखकर पिलाणी (जयपुर-राज्य) के निवासी सुप्रसिद्ध बिडला-परिवारके समुज्ज्वल रत्न मातृभाषा-प्रेमी दानवीर सेठ श्री घनश्यामदासजी बिडलाकी प्रेरणा अेवं सहायतासे इस पिलाणी-राजस्थानी-ग्रन्थमाळाकी स्थापना की गई है। पिलाणीके बिडला-कालेजकी तत्त्वावधानतामें इसका प्रकाशन होगा। निम्नलिखित उद्देश्य इस ग्रन्थमाळाके होंगे—

१—प्राचीन राजस्थानी साहित्यकी खोज करना, हस्तलिखित ग्रन्थोंका पता लगाना, उनका संग्रह करना, तथा उनकी वर्णनात्मक सूची तैयार करना।

२—लोक-प्रचलित मौखिक साहित्य—जैसे दूहे, गीत, कविता, कहावतें, कहानियाँ, वातें आदि—का संग्रह करना।

३—इस प्रकार संगृहीत, प्राचीन अेवं मौखिक, राजस्थानी साहित्यको सुसंपादित रूपमें प्रकाशित करना।

४—साधारण जनताके लिअे उपयोगी नवीन राजस्थानी साहित्यका निर्माण तथा प्रकाशन करना।

भूमिका

दूहा राजस्थानी साहित्य अेव राजस्थानी जनताका अत्यन्त प्रिय छन्द है। राजस्थानीका दूहा-साहित्य जनतामें सदैव लोकप्रिय रहा है। अब भी सैकडों दूहे राजस्थानकी जनताकी जिह्वापर मिलते है। उनमेंसे अधिकांशका बारबार कहावतोंकी भांति प्रयोग होता है। राजस्थानके कहानी कहनेवाले कहानीके भावपूर्ण स्थलोंपर दूहोंका प्रयोग करते है। जनता और साहित्यमे विशेष प्रचलित अैसे ही दूहोंका अेक छोटा-सा सग्रह प्रस्तुत ग्रन्थमे किया गया है। इस प्रकारका सग्रह मैं आज कोई चौदह-पद्रह वर्षोंसे करता आ रहा हूँ। उसी सग्रहमेसे चुने हुअे कोई १२००—१२२५ दूहोंको इस प्रथम भागमें सकलित किया गया है। सग्रहका अवशिष्ट अश कई भागोंमे क्रमशः प्रकाशित होगा। यह सग्रह लोगोंसे जबानी सुने हुअे दूहों, मित्रों द्वारा सग्रह करके भेजे हुअे दूहों, प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थोंमे सकलित किये हुअे दूहों, अेव प्राचीन सग्रहोंसे चुने हुअे दूहों, को लेकर तय्यार किया गया है। मेरा विचार था कि टिप्पणीमे तुलनाके लिअे सस्कृत-श्लोक और हिंदी, अग्रेजी तथा अन्यान्य भाषाओंके पद्य भी दिये जाते और सामग्री भी बहुत कुछ तय्यार थी पर ग्रथका कलेवर बढ जानेके भयसे अैसा नही किया गया। इससे ग्रथका मूल्य भी बहुत बढ जाता और साधारण पाठकोंको असुविधा होती।

सग्रहके कार्यमे मुझे अनेक दिशाओंसे सहायता मिली। सबसे प्रथम सग्रह मुझे श्रीयुत कँवर खीवसिहजी, कँवर प्रेमसिहजी बी० अे०, कँवर जसवतसिहजी बी० अे०, तथा ठाकर कान्हसिहजी बी० अे०, अेल-अेल बी०, द्वारा प्राप्त हुआ जिससे उत्साहित होकर मैने इस कामको आगे चलाया। आगे चलकर नीचे लिखे तथा अन्यान्य अनेक सुहृदरोंने मेरे इस सग्रहको वृद्धि करनेमे सहायता दी—सर्वश्री कँवर किशनसिहजी बी० अे०, कँवर सूर्यमालसिहजी, कँवर दीपसिहजी बी० अे०, अेल-अेल बी०, ठाकर जीवणसिहजी, कँवर राजसिहजी, श्रीचांदसिहजी, प० बख्शीरामजी गौड (नागोर-निवासी), पुरोहित कृष्णगोपाळजी कावनीवाळ, भँवरलालजी नाहटा, राधाकृष्ण चतुर्वेदी, तथा कँवर चन्द्रसिह इत्यादि-इत्यादि। बीकानेरके डूगर-कालेजके प्रिंसिपल श्रीयुत खीची जुगल-

सिंहजी ओम० ओ०, ओल-ओल बी०, वार-ओट-ला, ने अपने निजके कुछ दूहे देकर मुझे अनुगृहीत किया। इन महानुभावोंका ऋण मैं कभी नहीं भूल सकता।

जिन प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ग्रथोंसे दूहे सगृहीत किये गये है उनकी नामावली बहुत लबी है और उसको यहाँ देना अनावश्यक है। हाँ, ढोला मारूरा दूहाका उल्लेख मैं अवश्य करूँगा जो राजस्थानका सच्चा जातीय काव्य है। उसके अनेक दूहे शृगार-प्रकरणमे लिये गये है। मळसीसर-ठाकर भूरसिंहजी शेखावत द्वारा सकलित और सपादित विविध सग्रह तथा महाराणा-यश-प्रकाश नामक सग्रह-ग्रथोंसे भी मुझे बहुत सहायता मिली है।

मुझे सबसे अधिक अनुगृहीत किया है महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशकर हीराचदजी ओझाने, जिन्होंने हस्तलिखित सग्रहको पढकर परम हर्ष प्रकट किया और फिर बडे प्रेमके साथ सब प्रकारसे मुझे उत्साहित किया। इस वृद्धावस्थामें, अवकाशकी कमी रहनेपर भी, आपने प्रवचन लिखकर मुझे कृतार्थ किया।

यहाँपर मै मातृभाषाके महान् प्रेमी सेठ श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाको धन्यवाद देना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ जिनकी प्रोत्साहना और प्रेरणासे ही राजस्थानी साहित्यका उद्धार-कार्य आरभ हुआ है और जिनकी कृपासे ही यह ग्रथ इस सुन्दर रूपमें पाठकोंके आगे रखा जा सका है। ग्रन्थकी सुदर छपाईमें हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेसके सचालकोंका भी बहुत कुछ हाथ है।

अंतमे रह गये मेरे स्नेहशील सहयोगी सुहृद्वर श्रीयुत ठाकर रामसिंहजी ओम० ओ० तथा सूर्यकरणजी पारीक ओम० ओ०, जिनका मुझपर अनेक प्रकारसे ऋण है जिससे मैं हजार बार कृतज्ञता-प्रकाश कर देनेपर भी मुक्त नहीं हो सकता। राजस्थानीके नवयुगके उदीयमान नवयुवक कवि साहित्यरत्न प० रामनिवास शर्मा हारीतने प्रस्तावनाका अधिकांश आलोचनात्मक भाग लिखनेका कष्ट किया है। उनका धन्यवाद मैं यहाँपर नहीं करना चाहता।

छपनेमें कहीं-कही मात्राओ टूट गई है तथा कुछ स्थानों पर साधारण अशुद्धियाँ भी रह गई है जिनको पाठक स्वय सुधार लेगे। ग्रथमें सशोधन तथा परिवर्धन विषयक सूचनाओंको सहर्ष और सधन्यवाद स्वीकार किया जायगा।

नरोत्तमदास स्वामी

अनुक्रमणिका

—:*:—

कवियोंकी नामावली

जिन दूहोंके रचियताओंका पता लग सका उनकी नामावली, अकारादि क्रमसे, दूहोंके नंबरोंके साथ, यहाँपर दी जाती है—

१ अकबर ४·१ ४०

२ अमरसिंह, राणा ३·३ ६६–७०

३ अहमद २·७·१ । ६ ४·१

४ आलोजी चारण ४·१ २१

५ आसोजी चारण ४·१ ११

६ ईलियो चावडो (देखो लाखणसी)

७ ईसरदास चारण ३ १·२१ (?) । ३ १ २६–२७

८ ईसरदास (?) ८ ४ १०

९ उजळी ७·६ ४–६ । ८·११·१।६·४ २

१० उदैराज २·२१ २ । २·२२ १ । ६ ०·३६ । ७ २ ४

११ ऊमरदान चारण २ १६ २–७ । ५·०·१२ ।

१२ कबीर २ २७ १७ ।

१३ करणीदान चारण ३·४ १३।४·१·३५

१४ काळू २ ६·१ । २ १३ ७ । २·२८·३। ८·४ १४

१—प्रसिद्ध मुगल-सम्राट। अकबरने राजस्थानीमें रचना नहीं की थी परंतु तुलसी, सूर आदि अनेक कवियोंकी रचनाओंकी भांति उसकी रचानाओंने भी राजस्थानमें आकर राजस्थानी रूप धारण कर लिया है।

२—ये महाराणा प्रतापके पुत्र थे।

६—यह जूनागढ राज्यका पटायत सरदार था। बड़ा दानी हुआ है। इसको संबोधन करके लाखणसी चारण (नं० ५९) ने सोरठे बनाये थे। इसका समय १४७३ के लगभग है।

७—यह राजस्थानका अेक अत्यन्त प्रसिद्ध महाकवि हो चुका है। इसका समय संवत १५८० के लगभग है।

९—यह थूमली (काठियावाड) के जेठवा जातिके राजा (नं० २७) पर आसक्त हो गई थी और उसीको संबोधन कई सोरठे इसने बनाये हैं।

११—यह जोधपुर-निवासी तथा आर्यसमाजका अनुयायी बड़ा प्रसिद्ध कवि हुआ है। इसकी रचनाअे उमरकाव्यके नामसे छप चुकी हैं।

१३—यह अेक सुप्रसिद्ध कवि हो चुका है। इसका समय सं० १७५० से १८०० के लगभग है।

१५ किरपाराम चारण २·४·१ । २·६·२ । २ ७·२ । २ ८·१—२ । २·६·१—३ । २ १० ४—६ । २ ११·१—३ । २·१२ २—६ । २·१३·५ । २·१७ १—४ । २·१६ ८—६।२ २०·३—५ । २·२२ २ । २·२३·१ । २·२७ ३—५, १२-१३ २·२८ १६,१८,२०,२१,२५,२६,२३, ४८,५६,६५,६६,७४,७६,७८,७६,८० ८२,८३ । ३·१ २६—२७ । ५·०·२६, ३५ । ८ ६·१३ ।

१६ किसनियो २ १ १० । २·२·८ । २· १०·३ । २ १३ ६ । २·१८·५ । २ १६·१।२·२०·८-६ । २·२८ २८,७५ ।

१७ किसनो ७·६·१६

१८ केलियो ८·६·३

१६ केवळकृबो २·३·३

२० खेमदास २·१८·३

२१ चतरसिंह वीको २·८·३

२२ जटमल ३·१·४१ । ३·३·६६,६८

२३ जमाल २·२८ १४८,१४६ । ७·६·३८, ५४,१०६ । ७ १४ ५ । ६·२ १—१५

२४ जसवतसिंह, महाराज २ २८·५ । ३ १·२१ (?) । ३·३ ६१ । ८ २·४ । ८·४·५,६ ।

२५ जाडो चारण ३·३ १०५ । ३·४· ७,८

१५—यह सीकरके राजा देवीसिंहके यहाँ रहता था । यह खिडिया शाखाका चारण था और इसने अपने चाकर राजिया (न० ५७) को संबोधन करके बहुत-से सोरठे लिखे थे ।

१६—यह किसी चारणका चाकर था जिसने इसको सबोधन करके सोरठे लिखे थे ।

१६—ये अेक सन्त हो चुके हैं ।

२१—यह आपूवाला (वीकानेर) का निवासी वीका राठोड था । इसने अपने साथी बाघजीको सबोधन करके सोरठे बनाये थे । इसने राजस्थानी सोरठोंका अेक छोटा सग्रह अर्वाचीन-प्राचीन-सोरठासंग्रह नामसे छपाया था जिसका दूसरा परिवर्धित सस्करण इसी ग्रथमालामें शीघ्र ही प्रकाशित होगा ।

२२—इसने सवत १६८० में खडीबोली-मिश्रित राजस्थानी पद्यमे गोरा-बादलरी बात नामक ग्रथ लिखा था । यह जातिका नाहर ओसवाल था ।

२४—यह जोधपुरका महाराजा औरगजेबका समकालीन था । बडा वीर, साहित्यप्रेमी और कवि हो चुका है । भाषाभूषण आदि कई ग्रथ इसके लिखे हुअे हैं ।

२६—ये बीकानेरके निवासी हैं और आजकल वहीं डूँगर-कालेजके प्रिंसिपल हैं। अेम० अे०, अेल० अेल० बी०, बार-अेट-ला, डी० पी० अेड० हैं।

२७—जेठवा राजपूतोंकी अेक शाखा है। यह जेठवा धूमली (काठियावाड) का राजा था। इसका नाम मेहा था। उजळी (न० ९) नामक अेक चारणीने, जो उसपर आसक्त हो गई थी, उसे सबोधन कर ये दूहे बनाये थे।

२९—यह गुजरातका अेक प्रसिद्ध कवि और लेखक हो चुका है। इसने फारबस साहबको सम्बोधन करके दूहे लिखे हैं।

३२—यह राजस्थानका अेक प्रख्यात चारण महाकवि हुआ है। यह महाराणा प्रतापका समकालीन था।

३८—सिख-सप्रदायके आदि-प्रवर्त्तक।

३९—यह दधवाडिया चारण लालजीका चाकर था। लालजीने इसे सबोधन करके सोरठे कहे हैं।

४१—यह अेक चारण था जिसे गोड वछराजने करोड-पसाव दान दिया था।

४२—ये अेक प्रसिद्ध सत कवि हो चुके हैं।

४७ फारवस (देखो, दलपतराम कवि)
४८ बाघजी भाट (देखो, चतरसिंह वीको)
४९ भैरियो २·२·४ । २·१२·१ । २.१७. २ । ८.८.७ ।
५० महवूब (?) २·२८·६
५१ मानसिंह, महाराज ३·३·६० । ३· ४·१६ । ३·३·८२
५२ मीराँबाई—८·६·७–११
५३ मुकनो चारण किनियो ३·३·६८
५४ मोतिगो (देखो, रायसिंह चारण)
५५ रज्जब २·८·४ । २·२७·१४ । २·२८· १३१ । ८·४·१७
५६ रहीम, खानखाना ३·३·७१ । ४·१· ३६
५७ राजियो (देखो, किरपाराम चारण)
५८ रायसिंह चारण साँदू २·१८·७ । ६·०·४१

४७—यह अेक साहव था । गुजराती भाषा और साहित्यका प्रेमी तथा विद्वान था । आधुनिक गुजरातीके उत्थानमें इसका प्रमुख भाग है । दलपतराम आदिके सहयोगसे इसने गुजराती-वर्नाक्युलर-सोसायटीकी स्थापना की थी । दलपतराम कविने इसको सबोधन करके कई सोरठे लिखे हैं ।

४८—यह सोनड़ी गाँवका निवासी था । चतरसिंह वीके (न० २१) ने इसको संबोधन करके सोरठे लिखे हैं ।

४९—यह रतलाम-नरेशका चाकर था । इसको सवोधन करके कई कवियोंने सोरठे वनाये थे ।

५१—यह जोधपुर—मारवाड़का महाराजा था ।

५३—यह साँभासरका निवासी किनिया शाखा था चारण था ।

५४—यह घाणेरावके ठाकुरका चाकर था । साँदू रायसिंह चारण (न० ५८) की इसने बहुत सेवा की थी जिससे प्रसन्न होकर रायसिंहने इसको सवोधन करके सोरठे बनाये थे ।

५५—ये दादूपथमें अेक प्रसिद्ध सत हो चुके हैं ।

५६—यह अकवरका सेनापति और हिंदीका सुप्रसिद्ध कवि रहीम है ।

५७—यह खिड़िया चारण किरपारामजी (न० १५) का चाकर था । उक्त चारणने इसको सबोधन करके सोरठे बनाये थे ।

५८—यह गाँव मिरगेसरका निवासी था । इसने मोतिया (नं० ५४) को

५९ लाखणसी चारण २'२८'३७

६० लालजी चारण दधवाडियो २'२८'६१ ५'०'३२ । ८.१ १२ । ८'४ २०

६१ वाँकीदास, चारण १'२'९ । २'१ ६ –८ । २'२ ६ । २'१५'४ । २'७७' । २'२८'३६ । ३ १'६–१६,११,२०,२३ ३ ४'६ । ५'०'३७ ४० । ८८८

६२ विदरो ५ ० ३९

६३ विसनो ८'१'१५,१६ ।

६४ वींझरो ८'१'१८ । ८'११'२

६५ सम्मन २'१८ १–२ । २'२०'४ । २'२७'१७ । २'२८ ३ । ६'०'५,१५, २० । ७'१'४ । ७'५'१७ । ८'१'५ ८'२'१० । ८'४ २१ । ९'२ ३)'३ ।

६६ सहदेच २ २८'१०५

६७ सिवदास चारण २'१'१–२

६८ सूरायच टापरया चारण ३'३'५०–५९

६९ हरिदास दयालजी २'२७'८,९,१०, ११ । ६'० ४३ । ८'४'७ २२ । ८' ५ ७ । ८'९'२,७ ।

५९—इसने ईलिया (न० ६) को संबोधन करके सोरठे बनाये थे। यह ओखा-मडळका निवासी था। इसका समय स० १४७३ के आसपास है।

६०—इसने अपने चाकर नोपला (न० ३९) को सबोधन करके सोरठे बनाये थे। यह 'कोलोडा-की-ढाणी' का निवासी था।

६१—यह मारवाडके महाराज मानसिंहजीके यहाँ रहता था और राजस्थानमें अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हो चुका है। इसके ग्रन्थ वाँकीदास-ग्रथावळी नाम से काशीकी नागरीप्रचारिणी-सभा द्वारा दो-तीन भागोंमें प्रकाशित हुअे हैं।

६५—यह अेक प्रसिद्ध कवि हुआ है। हिंदीमें भी इसकी प्रसिद्धि है। यह जातिका मुसलमान था।

६७—इसकी बनाई हुई खीची अचलदासरी वचनिका राजस्थानी साहित्यका अेक प्रसिद्ध ग्रथ है। यह गागरोनगढके राजा अचलदास खीचीका आश्रित था। इसके दोनों दूहे उक्त वचनिकामेंसे लिये गये हैं।

६९—ये निरजनी पथके प्रवर्त्तक अेक बडे सन्त हो गये हैं। इनकी 'वाणी' की कविता बडी ही सरस है। इनका स्थान डीडवाणेमें था जहाँ इनके पथके साधु अब भी रहते है।

प्रवचन

—+*+—

[लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर श्रीगौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

भारतवर्षके प्राचीन वाङ्मयमें काव्यका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गद्यकी अपेक्षा कवितामें प्रायः विशेष आकर्षण और प्रभावोत्पादनकी शक्ति रहती है। किसी घटना-विशेषको देखकर मानव-हृदयमें सहसा जो विचार उत्पन्न होते हैं उनकी कविताके रूपमें बहुत सुंदर अभिव्यंजना होती है। इसी विचारको लक्ष्यमें रखते हुअे अंग्रेजी-साहित्यके सुप्रसिद्ध आलोचक मैथ्यू आर्नोल्डने कविताके सम्बन्धमें लिखा है कि—

Poetry is nothing less than the most perfect speech of man, that in which he comes nearest to being able to utter the truth.

अर्थात् कविता मनुष्यकी सर्वाङ्गसुंदर उक्ति है, जिसमें वह सत्यको अधिक-से-अधिक सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है।

प्राचीन भारतीय काव्यके इतिहासमें महर्षि वाल्मीकि आदि-कवि और उनका ग्रंथ रामायण आदि-काव्य माना जाता है। अेक बार वाल्मीकिने देखा कि किसी व्याधने कामासक्त क्रौंच (पक्षीविशेष)-मिथुनमेंसे अेक पक्षीको अपने बाणसे आहत किया, तो तत्क्षण ऋषिके कोमल हृदयपर उसका बहुत प्रभाव पड़ा और उस समय उनके शोकके उद्गार अेक दम श्लोकके रूपमें प्रकट हुअे, जिसके सम्बन्धमें महाकवि कालिदासने अपने रघुवंश महाकाव्यमें लिखा है कि—

निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

संस्कृत वाङ्मयके इतिहासका अध्ययन करनेसे ज्ञात पड़ता है कि विगत ढ़ाई हजार वर्षोंमें भारतमें काव्य-कलाके असंख्य उत्कृष्ट कोविदोंने कविता-कामिनीके कलेवरको अनेक प्रकारसे अलंकृत किया है। प्राचीन

कविपुङ्गवोंकी चमत्कार-पूर्ण कवितासे प्रभावित होकर ही जयदेवने बारहवीं शताब्दीमें लिखा था कि—केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय। भारतीय कवियोंने अपनी काव्य-रचनामें न केवल ईश्वर-भक्ति अेवं संसारकी अनित्यतापर अपनी लेखनी चलाई है, किन्तु उनके काव्य-ग्रंथोंमें भाँति-भाँतिकी वक्रोक्तियाँ, स्वभावोक्तियाँ, अन्योक्तियाँ, ऋतु-वर्णन, प्राकृतिक दृश्योंका चित्रण, नानाप्रकारके पशु-पक्षियों तथा भिन्न-भिन्न व्यवसायोंके मनुष्योंका वर्णन, नायक-नायिका-भेद तथा नायिकाओंके अंग-प्रत्यंगका वर्णन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न, अपराह्ण आदि विभिन्न कालोंका यथेष्टवर्णन, राजदरबारों अेवं युद्धोंका विशद विवरण, सेवाधर्मका निरूपण विषयोपभोगकी तुच्छताका विवेचन, सामान्य नीति, आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका भी सुचारु समावेश देख पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कविके काव्यमें इन सब विषयोंका विवरण होना चाहिअे, किन्तु बहुधा उत्कृष्ट काव्योंमें, और विशेषतः महाकाव्योंमे, इनमेंसे कई-अेक विषयोंका वर्णन यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार क्रमशः अनेक सुकवियोंके परिश्रमके फलस्वरूप विभिन्न विषयोंपर बहुत-कुछ काव्य-साहित्य प्रस्तुत होने लगा, तब कतिपय काव्य-मर्मज्ञ सरस्वती-पुत्रोंने अनेक विद्वानोंके ग्रंथों-से विविध विषयोंके चुने हुअे सुभाषित पद्योंका संग्रह आरंभ किया। उनके संकलित ग्रंथोंको सुभाषित-संग्रह (Anthology) कह सकते हैं।

अधिक प्राचीनकालके भारतीय संग्रह-कर्त्ताओंकी प्रवृत्ति अनेक विषयोंके पद्योंके संकलनकी नहीं, किन्तु कुछ अति महत्वपूर्ण विषयोंके पद्य-संग्रह की ओर थी। सुविख्यात भर्तृहरिने नीति, शृंगार और वैराग्य इन तीन विषयोंसे सम्बद्ध सुन्दर पद्योंका नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक नामसे संग्रह किया। शिल्हण नामक काश्मीरी कविके शान्ति-शतकमें वैराग्य-विषयक लगभग १०० पद्योंका संग्रह है। श्रीशंकराचार्यने सांसारिक जीवन की अनित्यताके सम्बन्धमें अपने मोहमुद्गरमें अनेक श्लोक लिखे। इसी प्रकार चाणक्यनीति नामक ग्रंथमे, जिसका आजतक पर्याप्त प्रचार है,

नीति-सम्बन्धी पद्योंका संग्रह मिलता है। इस प्रकारके ग्रंथोंमें वि० सं० १०५० में रचित जैन विद्वान् अमितगतिका 'सुभाषितरत्नसन्दोह' भी उल्लेखनीय है। यह तो हुई प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित अथवा संगृहीत अेकागी पद्योंकी बात; किन्तु विक्रम संवत् १००० के पश्चात्—इस समय तक कालिदास, माघ, भारवि आदि अनेक प्रसिद्ध कवि-पुंगवोंके अमर काव्य-ग्रन्थोंकी रचना हो चुकी थी—सुभाषित-संग्रहके अैसे ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें उल्लिखित विभिन्न विषयोंके अनेक सुंदर पद्योंका उत्कृष्ट संग्रह हुआ है। उन संकलन-ग्रंथोंको देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उनके संग्रहकर्त्ताओंका अत्यन्त गम्भीर अध्ययन रहा होगा, और मुद्रण-यंत्रका अभाव होते हुअे भी उन्होंने सैकडों विद्वानोंके ग्रंथोंका मनोयोगपूर्वक अवलोकन किया होगा। अन्यथा उस अतीतकालमें इतने विषयोंपर उत्कृष्ट पद्यों के इतने बडे-बड़े संग्रह तैयार करना अत्यन्त कठिन समस्या होनी चाहिअे। सुभाषित-संग्रहमे चुने गये पद्योंका भावपूर्ण होना नितान्त आवश्यक है, अन्यथा उनकी उपयोगिता नहीं रहती। अेक प्राचीन कविकी उक्ति है कि—

सुभाषितेन गीतेन युवतीना च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशु ॥

दूसरे शब्दोंमे इससे यही अर्थ निकलता है कि योगी अथवा पशुकी कोटिसे बाहर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका चित्त सुभाषित पद्यको पढ़, सुन या समझकर भावार्द्र अेवं तन्मय होना चाहिअे। अैसी दशामें संकलन-कर्त्ताओंका कार्य और भी कठिन हो जाता है।

अबतक मिले हुअे इस प्रकारके सुभाषित-ग्रंथोंमें सबसे प्राचीन संकलन किसी बौद्ध विद्वान द्वारा अनुमान बारहवीं शताब्दीमें संकलित 'कवीन्द्र-वचन-समुच्चय' है, जिसको नेपालसे प्राप्त हस्तलिपिके आधारपर डाक्टर थामसने अत्यंत योग्यतापूर्वक सम्पादित किया है। इसमें जिन-जिन कवियों के ५२५ पद्योंका संग्रह हुआ है, उनमेसे कोई भी ई० सन् १००० के पश्चात् का नहीं है। तदनंतर ई० स० १२०५ मे बंगालके राजा लक्ष्मणसेनके दर-

बारके विद्वान् श्रीधरदासने 'सदुक्तिकर्णामृत' तैयार किया, जिसमें ४४६ कवियोंके पद्य संगृहीत हैं। तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध में जल्हण पंडितने 'सुभाषितमुक्तावली' का संकलन किया। ई० स० १३६३ मे शार्ङ्गधर नामक विद्वान्के द्वारा 'शार्ङ्गधरपद्धति' नामक विशाल संकलन प्रस्तुत हुआ। इसमें १६३ विषयोंपर ४६८९ पद्योंका अपूर्व संग्रह हुआ है। मद्रासकी हस्तलिखित पुस्तकोंकी सूचीसे ज्ञात होता है कि ख्यातनामा वेद-भाष्यकार सायणने भी चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध में 'सुभाषित-सुधानिधि' नामक संग्रह-ग्रंथका निर्माण किया था। पंद्रहवीं सदीमें वल्लभदेवने ३५० कवियोंके १०१ विषयके ३५२७ पद्योंका 'सुभाषितावलि' नामक उत्कृष्ट संग्रह किया। इसमें शार्ङ्गधर पद्धतिके कई पद्य ज्यों-के-त्यों पाये जाते है। इसी शताब्दीमें श्रीवर पंडितने 'सुभाषितावलि' नामक अेक और संग्रह प्रस्तुत किया जिसमे ३८० से अधिक कवियोंके पद्य संकलित हुअे है। रूपगोस्वामीने अपनी 'पद्यावली' में अनेक विद्वानोंके कृष्ण-भक्ति विषयक पद्योंका संग्रह किया। न केवल संस्कृत-भाषामें ही सुभाषित-संग्रह तैयार हुअे किन्तु प्राकृतमेंभी जयवल्लभ नामक श्वेताम्बर जैन विद्वान्ने 'वज्जालग्ग' शीर्षक संकलन-ग्रंथ तैयार किया। जिस प्रकार प्राचीन कालमें विद्वानोंने समय-समय पर इस महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन किया, उसी तरह आधुनिक युगके विद्वान भी इस कार्यके महत्त्वसे अपरिचित नहीं रहे। इस समयके संकलन-ग्रंथोंमें कृष्णशास्त्री भाटवड़ेकरका 'सुभाषितरत्नाकर' तथा काशीनाथ-पांडुरंग परब द्वारा संकलित 'सुभाषित-रत्न-भांडागार' नामक बृहद् अेवं अनुपम संग्रह उल्लेखनीय है। संस्कृत भाषाकी भावपूर्ण एवं सुललित काव्य-रचनापर मुग्ध होकर न केवल अनेक अेतद्देशीय विद्वानोंने ही सुभाषित-पद्य-संग्रहका कार्य किया, किन्तु गत शताब्दीमें जर्मनीके सुविख्यात सस्कृतज्ञ विद्वान डाक्टर बाथलिंकने भी सारे संस्कृत-साहित्यसे कोई ८००० उत्कृष्ट पद्योंको चुनकर जर्मन-भाषाके अपने सुंदर गद्यानुवादके साथ Indische Sprüche नामक विशाल ग्रंथके रूपमें प्रकाशित किया।

जिस प्रकार संस्कृत-साहित्यमे सुभापित-संग्रह तैयार होते रहे वैसे ही हिन्दीमें भी कुछ पद्य-संग्रह समय-समयपर बने और प्रकाशित हुअे[१], किन्तु उनमे राजस्थानी-साहित्यका स्थान नहींके वराबर है। मोतीलाल सोलंखी द्वारा संकलित 'आनंद-सग्रह-बोध' तथा मेरे मित्र मलसीसर-ठाकुर स्वर्गीय श्रीभूरसिंहजी शेखावतके 'विविध-सग्रह' मे राजस्थानी भापाके कुछ सुन्दर पद्य मैंने पढ़े है, किन्तु राजस्थानीकी दृष्टिसे इन्हे सर्वांगसुन्दर नहीं कह सकते। राजस्थानी भापाका साहित्य भी हिन्दी-साहित्यका अेक महत्त्वपूर्ण अंग है। सैंकडों वर्पोंसे राजपूतानेके भिन्न-भिन्न हिन्दू राजाओंके आश्रयमे रहेहुअे अनेक चारणों,भाटों,तथा कवियोंके द्वारा राजस्थानी भापाका काव्य-साहित्य तैयार होता रहा है। राजस्थानीकी कविता भी वैसी ही मर्मस्पर्शिनी, ओजस्विनी अेवं प्रभावोत्पादिनी है, जैसी प्राचीन संस्कृत और हिन्दी कविता। जो वस्तुतः काव्य-मर्मज्ञ है, वे अेक वार राजस्थानीके चुभते हुअे पद्योंको पढ़ या सुनकर उनकी हृदयसे सराहना किये विना नहीं रह सकते। जिस राजस्थानी भापाका काव्य-साहित्य इतना व्यापक अेवं प्रभावोत्पादक है, उसके विभिन्न विपयोंके चुने हुअे भावपूर्ण पद्योंके सुन्दर संग्रहकी सामान्यतः हिन्दी-प्रेमियों,और विशेपतः राजस्थानियो, के लिअे चिरकालसे आवश्यकता थी। राजस्थानीके पद्योंका कोई उत्कृष्ट सग्रह अव तक प्रकाशित नहीं

१ उदाहरणार्थ—कालिदास-हजारा, प्रताप-हजारा, हफीजुल्लाखाँका हजारा, षड्ऋतु हजारा, रसमोदक-हजारा, नवीनसग्रह, शिवसिंह सरोज, भारतेंदु-कृत सुंदरी-तिलक, रागसागरोद्भव, रागकल्पद्रुम, रागरत्नाकर, मु० देवीप्रसाद कृत राज-रसनामृत, महिलामृदुवाणी, कविरत्नमाला, वियोगी-हरि कृत व्रज-माधुरीसार, श्यामसुंदरदास कृत सतसई-सप्तक, लोचनप्रसाद पांडेय कृत कविता-कुसुममाला, रामनरेश त्रिपाठी कृत कविताकौमुदी तथा घाघ-और-भड्डरी, लाला भगवानदीन कृत सूक्तिसरोवर, वियोगी-हरि कृत भजन-सग्रह, संतवानी संग्रह, साहित्य प्रभाकर, नवीन-पद्य-सग्रह, कालिदास कपूर कृत आधुनिक पद्यावली, नरोत्तमदास स्वामी कृत हिंदी-पद्य-पारिजात, इत्यादि-इत्यादि।

हो सका, इसका अेक कारण यह भी है कि राजस्थानियोंके सिवा अन्य प्रान्तीय साहित्य-प्रेमी इसको कम समझते हैं। इसके सिवाय इसका बहुत-कुछ साहित्य अब तक अमुद्रित अेवं हस्तलिखित ग्रन्थोंके ही रूपमें विद्यमान है, इसलिअे विशेप खोज अेवं परिश्रमके बिना इस भाषाके उत्कृष्ट पद्योंका संग्रह होना बहुत कठिन है। इसीसे यह महत्वपूर्ण कार्य अब तक अपूर्ण-सा पड़ा रहा। हर्पका विपय है कि इधर कुछ वर्पोंसे राजपूतानेके कतिपय इन-गिने उत्साही साहित्य-सेवियोंने राजस्थानीको सेवाका व्रत ग्रहण किया है और इनमें बीकानेर-निवासी श्रीयुत नरोत्तमदासजी स्वामीका प्रमुख स्थान है। इस भापाके अन्य कर्मठ सेवकोंमें बीकानेरके ठाकुर श्रीरामसिहजी अेम० अे० (वर्त्तमान अध्यक्ष, शिक्षा-विभाग, बीकानेर राज्य) और श्रीसूर्यकरणजी पारीक अेम०अे० (वाइस-प्रिंसिपल, बिडला इंटरमीडियट कालेज, पिलाणी) के नाम उल्लेखनीय हैं। विगत कई वर्पोंसे स्वामीजी अनुकरणीय मनोयोगके साथ राजस्थानी साहित्यका अध्ययन करते रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व, जब मैं बीकानेर गया था तब, स्वामीजीने मुझे राजस्थानीका विविध विषयोंका अपना संकलन बतलाया था। उसे देखकर मुझे बहुत हर्प हुआ था। स्वामीजीने कई वर्षोंके परिश्रमसे अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमे पाये जानेवाले तथा जन-श्रुतिमे प्रचलित विभिन्न विपयोंके मार्मिक दोहोंका सुन्दर संग्रह किया है, जिसका यह प्रथम भाग, आशा है, हिन्दी-प्रेमियों और विशेषतः राजस्थान वासियोंके लिअे अेक अनूठी वस्तु होगी। राजस्थानी पद्य-साहित्यमें प्रायः दोहा, सोरठा (जो राजस्थानी पिंगळमें दोहेका ही अेक भेद माना जाता है), और कवित्त आदि छंद अधिक पाये जाते है, किन्तु दोहोंका सबसे अधिक प्रचार है और आज भी अनेक राजस्थानियोंके मुखसे समयानुसार अनेक प्रकारके दोहे सुने जाते हैं। थोड़े शब्दोंका होनेके कारण दोहा उसी तरह सरलता-पूर्वक कंठ किया जा सकता है, जिस प्रकार संस्कृतमें अनुष्टुभ् वृत्त। इस पहिले भागको विद्वान् संकलनकर्त्ता ने विनय, नीति, वीर, अैतिहासिक और भौगोलिक, हास्य और व्यंग, प्रेम, श्रृंगार-रस, शान्त-रस तथा प्रकीर्णक शीर्षक ६ मुख्य भागोंमें विभक्त किया है। प्रत्येक भागमें अनेक रोचक विपय

पसंद कर उनके सम्बन्धमे चमत्कार-पूर्ण दोहोंका सुचारु संकलन किया है। टिप्पणमें कठिन अेवं अपरिचित शब्दोंका अर्थ देनेसे तथा आरंभमें राजस्थानी भाषा अेवं साहित्यकी परिचायक और आलोचनात्मक प्रस्तावना जोड देनेसे पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। अैसे उत्कृष्ट संग्रहको हिन्दी-प्रेमियोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेके लिअे श्रीस्वामीजी साधुवादके पात्र हैं। साथही समस्त राजस्थानियोंको भारतके सुविख्यात दानवीर सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला का कृतज्ञ होना चाहिअे, क्योंकि उन्होंने राजस्थानी साहित्यको पुनरुज्जीवित करनेके लिअे अेक ग्रन्थमाला स्थापित करके उसके प्रकाशनकी व्यवस्था कर दी है और बिड़लाजीकी इस दानशीलताके फलस्वरूप ही यह उत्तम संकलन प्रकाशित हो रहा है। आशा है, इस सुन्दर संकलनको पढ़कर पाठकवर्गमे राजस्थानी भाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न होगा और स्वामीजीके आदर्शका अनु-करण करते हुअे निकट भविष्यमें कर्मण्य राजस्थानी साहित्यिकोंका अेक दल तैयार हो जायगा।

अजमेर,
पौष कृ० ११, संवत् १९९१ वि० } गौरीशंकर हीराचंद ओझा

प्रस्तावना

पूर्वार्ध

राजस्थानी भाषा और साहित्यका दिग्दर्शन

(१) राजस्थानी भाषा

राजस्थानी राजस्थान और माळवा प्रान्तकी भाषा है। इसके पूर्वमें बुंदेली और व्रजभाषा, पूर्वोत्तरमे व्रज और बाँगड़ू, उत्तरमे पंजाबी, पश्चिमोत्तरमें पश्चिमी पंजाबी (जिसे लहँदा भी कहा गया है), पश्चिममें सिंधी, दक्षिणपश्चिममें गुजराती और दक्षिणमें मराठी आदि भाषाअे बोली जाती हैं।

इसकी पाँच मुख्य शाखाअे है—(१) मारवाड़ी—इसका क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत और इसका साहित्य सबसे अधिक संपन्न है। यह पश्चिमी राजस्थान (जोधपुर, मेवाड़, जेसलमेर, बीकानेर, शेखावाटी आदि) की बोली है।

(२) ढूँढाड़ी—इसका क्षेत्र पूरबी राजस्थान (जयपुर, कोटा, बूँदी, झालावाड़, किशनगढ़ आदि) है। इसमें भी अच्छा साहित्य वर्त्तमान है।

(३) मेवाती—यह मेव प्रान्त अर्थात् अलवर आदि भागोंमें बोली जाती है। इसमें साहित्य नहींके बराबर है।

(४) माळवी—यह माळवा प्रान्त (इंदोर, भोपाल, नेमाड़, तथा ग्वालियर राज्यके अधिकांश भाग) की बोली है। इसमें बहुत थोड़ी साहित्य-रचना हुई है।

(५) भीली यह राजस्थानीका वह रूप है जिसे भील आदि पहाडी आदिम जातियाँ बोलती है। इसमे गुजरातीका मेल बहुत पाया जाता है।

राजस्थानी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या दो करोड़के लगभग है। राजस्थानकी वैश्यजाति भारतके कोने-कोनेमें फैली हुई है अतः इसके बोलनेवाले समस्त भारतवर्षमें मिल सकते है।

(२) राजस्थानीका विकास

राजस्थानी उत्तर-भारतकी वर्त्तमान देशभाषाओंमें सबसे प्राचीन है। वह अपभ्रंशकी जेठी बेटी है। अपभ्रंशकालमे साहित्यिक क्रियाशीलताका केंद्र मुख्यतया पश्चिमी भारत ही था। अपभ्रंशके अधिकाश साहित्यकी रचना इसी प्रदेशमे हुई। इसी कारण यहाँकी अपभ्रंश समस्त देशकी साहित्यिक भाषा थी। जिस प्रकार आजकल व्रज, अवधी, बिहारी, राजस्थानी आदिके बोलनेवाले भी खड़ीबोलीमें ही साहित्य-रचना करते है उसी प्रकार उस कालमें अपभ्रंशके भिन्न-भिन्न रूपोंके बोलनेवाले लोगोंकी साहित्यिक भाषा भी पश्चिमी अपभ्रंश ही थी। इस पश्चिमी अपभ्रंशकी प्रधानताका अेक कारण यह भी था कि वैदिक-मतावलंबी विद्वान अपनी संस्कृत भाषामें ही मग्न थे—उनकी सारी साहित्य-रचना संस्कृतमें ही होती थी—जनताकी बोलचालकी भाषामें साहित्य-रचना करनेकी उनने कोई पर्वाह नहीं की, इसकी ओर ध्यान देनेवाले मुख्यतया जैन विद्वान हुअे और जैनोंका प्रमुत्व विशेष करके पश्चिमी भारतमें ही था।

अपभ्रंशका विकास विक्रमकी प्रारंभिक शताब्दियोंमें आरंभ हुआ। उसके विकासका आरंभिक स्थान भी पश्चिमी भारत ही था। आरंभमे यह साधारण जनताकी बोलचालकी भाषा थी। आगे चलकर उसने साहित्यमें पैर रखा। छठी शताब्दीमे तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी अपभ्रंशमे काव्य-रचना कर सकना अपने लिअे गौरवकी बात समझते थे[१]। काव्यादर्शकार दंडिन् के समयमें उसमें अच्छा साहित्य वर्त्तमान था। दंडिनने समस्त साहित्यके तीन विभाग करके उनमे अपभ्रंश-साहित्यकी भी गणना की है। राजशेखरके जमाने तक तो अपभ्रंश-साहित्यने सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था।

अपभ्रंशके साहित्यमे प्रवेश करनेपर उसमे धीरे-धीरे स्थिरता आने लगी। पर बोलचालकी भाषा स्थिर नहीं रह सकती। विकास—परिवर्त्तन—

---

१ वलभी-नरेश दूसरे धरसेनका लेख देखिये।

उसके लिअे स्वाभाविक है। अतः साहित्यिक भाषा और बोलचालकी भाषामें धीरे-धीरे अन्तर पड़ने लगा।

आरंभमे प्रायः समस्त भारतमें अेक ही भाषा साधारण प्रान्तीय भेदों के साथ बोली जाती थी। परतु हर्षवर्धनके समयके पश्चात् समस्त भारतकी राजनीतिक अेकता छिन्नभिन्न हो गई। देश छोटे-छोटे राज्योंमें बंट गया। प्रान्तोंका पारस्परिक आवागमन धीरे-धीरे कम होता गया जिससे उनका आपसका संबंध विच्छिन्न होने लगा। इससे भाषाकी अेक-रूपता भी नष्ट होने लगी और बोलचालकी भाषाके प्रान्तीय भेदोंका जन्म हुआ। आरंभमें प्रान्तीय भेदोंमें इतनी विभिन्नता न थी कि अेक प्रान्तवाले दूसरे प्रान्तवालों-की बोलीको न समझ सकें परन्तु धीरे-धीरे यह विभिन्नता बढती गई और वर्त्तमान देशभाषाओंका आरंभ हुआ।

इस प्रकार अपभ्रंशके विकासको हम दो भागोंमें बाँट सकते हैं—(१) पूर्वकालीन अपभ्रंश, और (२) उत्तरकालीन अपभ्रंश। इसी उत्तरकालीन अपभ्रंशको विद्वानोंने पुरानी हिंदी[१], जूनी गुजराती, या पुरानी राजस्थानीके नाम दिये है[२]। ये नाम प्रान्तीय वैमनस्यके कारण होने लगे है अतः हमारी समझमें इस भाषाको इनमेसे कोई भी नाम न देकर लोकभाषा या उत्तर-कालीन अपभ्रंश कहकर पुकारना ज्यादा अच्छा है[३]।

---

१ श्रीचद्रधर शर्मा गुलेरीका पुरानी हिंदी नामक निवध (नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, नवीन सस्करण, भाग २)।

२ सच पूछा जाय तो इन तीनोंमें पुरानी राजस्थानी नाम अधिक युक्तिसंगत है क्योंकि हिंदी और गुजरातीकी अपेक्षा राजस्थानी ही उस भाषाके सबसे अधिक निकट है और उसकी विशेषताअे उक्त दोनों भाषाओं की अपेक्षा राजस्थानीमें ही अधिक सुरक्षित है।

३ श्रीयुत गुलेरीजी कहते हैं—पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी पश्चिमी राजस्थानी आदि नाम कृत्रिम हैं और वर्त्तमान भेदको पीछेकी ओर ढकेलकर बनाये गये है, भेदबुद्धिको दृढ करनेके अतिरिक्त इनका कोई भी फल नहीं है।

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि गुलेरीजीने वही काम स्वयं किया जिसके लिये वे दूसरोंको दोष देते है। 'पुरानी हिंदी' यह नया नाम रखकर

इसी उत्तरकालीन अपभ्रंशका विकसित रूप प्राचीन राजस्थानी है। प्राचीन राजस्थानीका क्षेत्र गुजरातसे लेकर प्रयागमंडल तकका विस्तृत भूखंड था। इस समस्त प्रदेशमें अेक ही भापा-साधारण विभिन्नताओंके साथ बोली जाती थी। बोलचालकी भाषामें धीरे-धीरे विभिन्नता बढ़ती गई पर साहित्यिक भाषा तो बहुत दिनों तक यही प्राचीन भापा रही जिसे प्राचीन राजस्थानी कहा जा सकता है। कबीर आदि प्राचीन महाकवियोंकी भापा-को देखनेसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। कबीरकी भापा अन्य भापाओं की अपेक्षा राजस्थानीके अधिक निकट है[1]। इसी प्राचीन राजस्थानीसे व्रजभाषा, गुजराती और आधुनिक राजस्थानीका विकास हुआ है[2]। पँजाबी और खड़ीबोलीके निर्माणमे भी इसका प्रमुख हाथ है।

हिन्दी-साहित्यके आदि-कालमें साहित्यकी मुख्य भापा राजस्थानी थी पर मध्यकालमें यह बात न रही। व्रजभापाके उत्थानने राजस्थानीको उसके पदसे हटा दिया और अब राजस्थानी केवल राजस्थान प्रान्त तक सीमित रहकर प्रान्तीय भाषा बन गई। व्रजभाके इस आकस्मिक उत्थानका श्रेय

उन्होंने नामोंकी सख्याको बढ़ानेमें ही सहायता पहुँचाई। यहांपर हम यह भी कह देना उचित समझते है कि इस लोकभाषाका 'पुरानी गुजराती' नाम गुजरातीके विद्वानोंका ही (जिन्हे राजस्थानी भाषाके अध्ययनका अवसर नहीं मिला) रखा हुआ है और 'पुरानी हिनी' नाम हिदीभाषाके विद्वान् गुलेरीजीका। परन्तु पुरानी राजस्थानी यह नाम किसी राजस्थानीका रखा हुआ नही किंतु निष्पक्ष पश्चिमी भाषावैज्ञानिक विद्वानोंका रखा हुआ है जिन्होंने तीनों भाषाओंके विकासका अध्ययन करनेके बाद अैसा किया है। फिर भी यदि गुजराती और हिंदी विद्वानोंको यह सह्य नही तो हमें कोई आग्रह नही कि उसे पुरानी राजस्थानी ही कहा जाय।

१ देखिये, ढोलामारूरा दूहा, प्रस्तावना (उत्तरार्ध)

२ राजस्थानी भाषाके विकासके विस्तृत विवेचनके लिअे लेखककी लिखी हुई ढोलामारूरा दूहा नामक ग्रथकी प्रस्तावना (उत्तरार्ध) देखिये। यह ग्रंथ काशीकी नागरी-प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

सूरदास आदि वैष्णव महाकवियोंकी भक्ति-भावसे प्रेरित अमर वाणीको है। उनकी अमर वाणीने व्रजभाषाको इतना महत्वशाली बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानपर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा और राजस्थानके कवि भी उसकी ओर झुके और उसमे काव्य-रचना करने लगे[१]।

(३) डिंगळ

राजस्थानीके अेक साहित्यिक रूपका नाम डिंगळ है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंका प्रचुर प्रयोग उसकी अेक मुख्य विशेषता है। कई विद्वानोंने डिंगळको अेक कृत्रिम काव्यभाषा कहा है जिसको चारण-भाटोंने गढ़ लिया था। परन्तु यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है। डिंगळ एक प्राचीन काव्यभाषा है जो आरंभमे बोलचालकी भाषासे भिन्न न थी। आरंभमें पिंगळ प्राचीन राजस्थानीका ही अेक रूप थी। उत्तर अपभ्रंशकालके पश्चात जब राजस्थानीका स्वतंत्र विकास होने लगा तो अपभ्रंशके कज्ज, कम्म आदि शब्द बोलचालकी राजस्थानीमे काज और काम आदि बन गये पर कवितामे कज्ज और कम्म आदिका ही बोलबाल रहा। डिंगळ-कविता प्रधानतया वीर-रसात्मक है। द्वित्त और संयुक्त वर्णोंवाले शब्दोंके प्रयोगसे वीर-रसोपयोगी ओजगुणकी व्यंजनामे बड़ी सहायता मिलती है अतः उनका डिंगळ कवितामें ग्रहण स्वाभाविक ही था। बोलचालकी राजस्थानीमे भी काव्यरचना होती थी। उसमें अैसे शब्दोंका प्रयोग धीरे-धीरे कम होता गया। पर वीर-रसात्मक डिंगळ-कवितामे इनके प्रयोगकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई यहाँ तक कि आगे चलकर तो शब्दोंको द्वित्त अथवा संयुक्त वर्णवाले बनानेके लिअे जान-बूझकर उनकी कपाल-क्रिया की जाने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे यह बोलचालकी राजस्थानीसे दूर पड़ती गई।

---

१ व्रजभाषा या बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रित व्रजभाषा राजस्थानमें आगे चलकर 'पिंगळ' के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी पिंगळके साम्यपर चारणोंकी वीर-रसात्मक काव्यभाषा बादमें डिंगळ कहलाई।

इस भाषाका नाम डिगळ क्यों पडा और कब पडा इसका ठीक पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह नाम विशेष प्राचीन नहीं है । भिन्न-भिन्न विद्वानोंने डिगळ नाम पडनेके जो कारण बताये है उनका उल्लेख हम यहाँ संक्षिपमें किये देते है—

ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णव महाकवियोंकी अमर वाणीने व्रजको इतना महत्त्वशाळी बना दिया और वह इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजस्थानके कवि भी उसकी ओर आकृष्ट हुअे और उसमे काव्यरचना करने लगे। अब राजस्थानमे दो मुख्य काव्य-भाषाअें हो गई—(१) प्राचीन काव्यभाषा, और (२) व्रजभाषा। व्रजकी कविता आगे चलकर पिगळ कहलाई और धीरे-धीरे व्रजभाषा (तथा बोलचालकी राजस्थानीसे मिश्रत व्रजभाषाका) पिगळ नाम पड गया। इसी पिगळ शब्दके साम्यपर प्राचीन काव्य-भाषाको डिंगळ कहने लगे।

(१) डाक्टर टेसीटरीका कहना है कि डिगळ शब्दका असली अर्थ अनियनित अथवा गॅवारू था। व्रजभाषा परिष्कृत और साहित्यशास्त्रके नियमोंका अनुसरण करती थी पर डिगळ इस विपयमे अनियमित थी अतः उसका यह नाम पड़ा।[१]

(२) डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री कहते है कि आरंभमे इस भाषाका नाम डगळ था पर बादमे पिगळ शब्दके साथ तुक मिलानेके लिअे उसका डिगळ कर दिया गया।[२]

(३) श्रीयुत गजराज ओझाके अनुसार ड अक्षर डिंगळमें बहुत प्रयुक्त होता है यहाँतक कि वह डिगळकी अेक विशेषता कहा जा सकता है। ड अक्षर की इस प्रधानताको ध्यानमे रखकर ही पिगळके साम्यपर इस

---

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol X, no 10, page 376

२ Preliminary Report on the operation in search of MSS of Bardic Chronicles (Asiatic Society of Bengal), Page 15.

भाषाका नाम डिंगळ रखा गया। वे लिखते है कि जैसे बिहारी ल-कार-प्रधान भाषा है उसी प्रकार डिंगळ ड-कार-प्राधानभापा है।[१]

(४) श्रीयुत पुरुषोत्तमदास स्वामीका मत है कि डिंगळ शब्द डिम् और गळ इन शब्दोंके मिलनेसे बना है। डिम्का अर्थ है डमरू और गळका अर्थ है गला। डमरूकी आवाज वीरोंके लिअे उत्साहवर्धक होती है और वह वीर रसके देवता महादेव (प्रमथ) का बाजा है। अतः डिमगळ या डिंगळ का लक्षणिक अर्थ हुआ डमरूकी ध्वनिकी भाँति उत्साहवर्धक, गलेसे निकली हुई, कविता। डिंगळ भापामें अैसो कविताकी प्रधानता है अतः वह भी डिंगळ नामसे प्रसिद्ध हुई। [२]

(५) राजस्थानमें प्रसिद्ध अेक अन्य मत यह भी है कि डिंगळका मूल डिभ और गळ शब्द है। डिभका अर्थ है बालक और गळका अर्थ है गला। डिभगळ (जो बादमे जाकर डिंगळ बन गया) का अर्थ हुआ बालककी भाषा। जैसे प्राकृत बालभाषा कहलाती थी उसी प्रकार राजस्थान-की यह काव्यभापा भी डिभगळ या डिंगळ कहलाई।

इन मतोमें टैसीटरीके मतको छोड़कर बाकी सबको विचित्रतापूर्ण कल्पनाअें कहना ही अधिक समुचित है। डाक्टर हरप्रसाद शास्त्रीने अपने मतके समर्थनमे चौदहवीं शताब्दीका अेक दूहा उपस्थित किया है पर उनकी प्रामाणिकतामे पूरा संदेह है—कम-से-कम उसकी भाषा और लेखनशैलीका रूप तो चौदहवीं शताब्दीका नही। फिर उसका अर्थ भी हमे वह नहीं जान पड़ता जो डाक्टर महोदयने बतलाया है।

टैसीटरोके कथनमे संभव है कि सत्यता हो पर असल बात तो यह है कि जिस समय व्रजभाषाने यहाँ राजस्थानमे प्रवेश किया उस समय डिंगळ गँवारू भाषा नहीं थीं। वह व्रजभापाके समान ही राज-दरबारोंके बड़े-बड़े कवियोंको समादृत काव्यभापा थी और उसमें अपना निजका साहित्यशास्त्र वर्त्तमान था।

१ नागरी-प्रचारणी-पत्रिका, भाग १४, अंक १, पृष्ठ १२१-१२४
२ वही, भाग १४, अंक २, पृष्ठ २२५

हमारी समझमें डिंगळ शब्द पिंगळ के साम्यपर अवश्य बना है पर उसका कोई विशेष अर्थ नहीं था जिसको ध्यानमे रखकर यह शब्द गढ़ा गया। भाषाविज्ञानके सुप्रसिद्ध प्रकांड विद्वान् श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरीकी भी यही सम्मति है[१]। वे लिखते है—"मेरे मतमें डिंगळ केवल अनुकरण-शब्द है, 'काफिया न मिलेगा तो बोझों तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगळसे भेद दिखानेके लिअे बना लिया है। जैसे वासवदत्ताके विषयमें (अधिकृत्य) बनाई गई कहानी वासवदत्ता कहलाती है वसे ही लक्षण शास्त्र और लक्ष्य रचनाके अभेदोपचारसे हिंदी-कविता[२] पिंगळ कहलाई। उससे भेद करनेके लिअे श्रुतिकटु टवर्ग-बहुल भाषाकी कविताके लिअे डिंगळ अेक यदृच्छा शब्द[३] है, डित्थ[४] आदिकी तरह इसका कोई अर्थ नहीं है। निश्चित अर्थके वाचक किसी शब्दसे, उससे भेद दिखानेके लिअे, उसीकी छायापर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थके वाचक हो जानेके, कई उदाहरण मिलते है।"

श्रीगुलेरीजीने आगे इस प्रकारके कतिपय उदाहरण भी दिये है, जैसे कर्म (प्रधानकर्म) की छायापर कल्म (अप्रधान कर्म), और कँवर (कुमार, जिसका पिता जीवीत हो) की छायापर भँवर (जिसका दादा जीवित हो)।

उत्तर-कालमें डिंगळने दो रूप धारण किये। प्राचीन डिंगळ भाषाके साथ साधारण बोलचालकी राजस्थानीका मिश्रण होने लगा यहाँ तक कि आगे चलकर दोनोंमे बहुत कम अंतर रह गया। यह अन्तर भी ज्यादातर शब्द-कोष (Vocabulary) सबंधी था। सवत् १८६१ में बना हुआ रघुनाथरूपक इस उत्तरकालीन डिंगळका अच्छा उदाहरण है।

---

१ नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, अंक १, पृष्ठ ६८।

२ हिंदीसे यहाँ ब्रजभाषाका अभिप्राय है।

३ व्यक्तिवाचक शब्द Proper Name

४ डित्थ अेक व्यक्तिवाचक नाम है जिसका प्रयोग न्याय आदि शास्त्रोंमे पाया जाता है।

गयण-मग्ग-सलग्ग लोल-कल्लोल-परंपरु
णिवकरुणुक्कड-नक्क-चक्क-चकमण दुहकरु
उच्छलत-गुरु-पुच्छ-मच्छ-रिंछोळि-निरंतरु
विळसमाण-जाळा-जडाळ-वडवानळ-दुत्तरु
आवत्त-सयायलु जलहि लहु गोपहि जिव ते नित्थरहि
नीसेस-वसन-गण-निट्ठवणु पासनाहु जे सभरहि

(२) निम्नलिखित उदाहरण श्रीधर कवि रचित रणमल्ल-छंद नामक ग्रंथसे लिये हुओ है। इस काव्यका समय १४५४ निश्चित किया गया है। इसमें ईडरके राठोड राणा रणमल्लकी वीरता और विजयका वर्णन है जो उसने पाटणके सूबेदार जफरखांपर प्राप्त की थी—

(क) कडक्कि भूछ भीछ मेच्छ मल्ल मोल्लि मुग्गरि
चमक्कि चरिल रणमल्ल भल्ल फेरि सगरि
धमक्कि धार छोडि धान छडि धाडि धग्गडा
पडक्कि वाटि पक्कडत मारि मीर मक्कडा

(ख) रउद्द सद्द आसमुद्द साहसिक्क सूरइ
कठोर थोर घोर छोर पारमिक्क पूरइ
अहग्ग गाह अग्ग गाहि गालि वाल किज्जइ
विछोहि जोइ तेह नेहि मेच्छ लोडि लिज्जइ

(ग) गुहु उच्छळि मुच्छ मुहच्छवि कच्छवि भूमइ भूछ समुच्छलिया
उल्लाळवि खग्ग करग्गि निरग्गळ गणइ तिणइ दल अग्गळया
प्रल्लय करि लमकारि लोहि छवच्छव छट करइ छत्तीस छळि
रणमल्ल रणगणि गाजत विळसइ रवि-तळि सिन्निय रोसवळि

(घ) जि मद्दा समुद्दा सदा रुद्द-सद्दा
जि बुबाळ चुचाळ बगाळ वदा
जि जुज्झार तुक्खार कम्माल मुक्कि
रणमल्ल दिट्ठेण ते ठाम चुक्कि
जि रुक्का मलिक्का बलक्का क पाडि
जि रुद्धा मुरुद्धा मनद्धा भजाडि

तिभू आखडी आग्रडी दड किज्जि
रणमल्ल दिठ्ठी मुही घास लिज्जि

(३) ये दो दूहे 'खीची अचळदासरी वृचनका' से लिये गये है जिसका समय सम्वत् १४७० के लगभग है—

अेक्कइ वन्न वसतडा अेव्वड अन्तर काइ
सिघ कवड्डी ना लहइ गयवर लक्ख विकाइ
गयवर गळइ गळथ्यियउ जहँ खचइ तहँ जाइ
सिघ गळथ्थण जइ सहइ तउ दह लक्ख विकाइ

(४) नीचे लिखा गीत बारठ चारण चोहथकी कृति है। इस गीतमे वीकानेर राज्यके संस्थापक राव वीकोकी प्रशंसा की गई है। उक्त चारण राव वीकोका समकालीन था जिसका समय १४९५ से १५६१ तक है—

वीकउ वाखाणि जेणि वडराया मोटागढ राखइ मडळि
अपणउँ गोकल-तणु उवारियइ कान्ह प्रवाडउ किस्यउ कळि
काठळिअे उग्रहिअे कमधज नरिंद वखाणइ घणा नरिंद
तइँ आगुळी अनड तू ऊपरि गिडे कियउ पडते गोविद
ऊपरि गोप कियइ गिरि ओळइ अँजसइ आदि वराह उरु
वीग्रहिया ऊग्रहिया वोकइ पूगळ नइ वडरसल्लपुरु
अपूरब दे वर दाखि अतिग्गह कोट वि राखिय ठेलि कँधार
पर उपगार भला पुरखोतम अपणा जगत करइ उपगार

(५) यह अंश वीट्ठू खाँपके चारण सूजो नगराजोत कृत राउ जइतसी-रउ छन्द नामक काव्यसे लिगा गया है जिसका समय सवत् १६५१ के लगभग है—

(क) किय हकल चचळ कळळ, गइ त्रावक्क गडक्क
दरस्यउ सरि सुरिताण-दळ, चळ-चळ च्यारे चक्क

(ख) पाअे हसम्मि हालइ पयाळ, फडफडइ नाग फाटइ फुणाळ
राया-राउ ऊपरि असुर-राइ जळराण जाण मेल्ही म्रजाइ
पुड सातइ धूजिय पवँग-पाइ नागीद नाचि नोबति निहाइ
झूझारा आगी झिखइ झाळ मुस्साहल जाणे नखत-माळ

पतिसाह-सेन दीवी परिख्ख उडियण किरि आवइ अतरिख्ख
रेवत खेडि चउ पहर राति पतिसाह-सेन ढूका प्रभाति

(६) नीचेका अंश उसी कालके आसपास लिखे हुए अेक अज्ञात कविके 'छन्द राउ जइतसीरउ' नामक ग्रन्थसे लिया गया है—

मग्रामि भिडइ हीदू सखेध वाजइ गुरज्ज थिड वाणवेध
पिडि भोमि निहट्टइ खेडपत्ति धड पडइ हेक घूमइ धरत्ति
विरदइतु जइतु रण-वट्ट वधि सत्रु घाइ निजोडइ गडा सधि
ऊच दइ असुर-हरि धार ईम भारथ्यि पईठउ जाण भीम
केविया निवहि कडडति कध वडडति हाड ऊजिडइ बध
पूरति रुहिर योगिणी पत्त रडवडइ रुँड दडवडइ रत्त

(७) निम्नलिखित उदाहरण महाराज पृथ्वीराज कृत कृष्ण-रुक्मणीरी वेलि नामक काव्यका है जो डिंगलका भाषाकी दृष्टिसे सबसे प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल संवत् १६३७ है।

(क) वळि-वधण मूझ सियाळ मिघ-वळि प्रासइ जउ वीजउ परणइ
कपिळ धेन दिन पात्र कसाई, तुळसी करि चडाळ-तणइ
हरि हुअे वराह हअे हरिणाकस हूँ ऊधरी पताळ-हूँ
कहउ तई करणा-मइ केसव सीख दीध किणि तुम्हासू
रामा-अवतार वहे रिणि रामण किसी सीख करणा-करण
हूँ ऊधरी त्रिकुटगढ-हूँती हरि वधे वेळाहरण

(ख) काळी करि काठळि ऊजळि कोरण धारे स्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळग्रभ थभि न विरहिणि-नइण थिया
वरसतइ दडड नइ अनड वाजिया सघण गाजियउ गुहिर सदि
जळनिधि ही सामाइ नही जळ, जळवाळा न समाइ जळदि
धर स्यामा सरिस स्यामतर जळधर गेघूचे गळिबाहा घाति
भ्रमि तिणि सन्ध्यावदण भूला रिखय न लखे सकइ दिनराति

(८) उक्त महाराज पृथ्वीराजके कुछ दूहे यहाँ लिखे जाते हैं—

तूवी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण
ताहि तारियइ जगतरण तइ केहा वाखाण

पातळ जउ पतिसाह् बोलइ मुख-हूँता वइण
मिह्र पिछम दिस माह् ऊगइ कासपराव-उत

(९) ये दूहे आढा दुरसा-कृत विड़द-छिहत्तरीसे उद्धृत है जो महाराणा प्रताप (१५९७-१६५३) का समकालीन था ।

थिर-नृप हींदुस्थान लातरग्या मग लोभ लग
माता भूमी मान पूजइ राण प्रतापसी
उडइ रीठ अणपार पीठ लगा लाखा पिसण
वेढीगार वकार पइठउ उदियाचळ पतउ

(१०) यह उदाहरण महाराज रायसिंह (सत्रहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध) बीकानेर-नरेशकी प्रशंसामें लिखित अेक समसामयिक गीतका अंश है—

पाताळ तठइ बळि, रहण न पाऊँ, रिध माडे स्रगि करण रहइ
मो म्रितलोक राइस्यघ मारइ, कठइ रहूँ हरि,—दळिद्र कहइ
रयण-दियण पाताळि न राखइ, कनक-स्रवण रूधउ कविळास
महि-पुडि गज-दातार ज मारइ, विसन, किसइ पुडि माडउँ वास ?

(११) नीचेका उदाहरण खिडिया खाँपके चारण जगो कृत राव रतन महेसदासोतरी वचनिकासे लिया गया है । इसका समय १६५७ के लगभग है—

(क) हिन्दुआण तुरकाण करण घमसाण कडक्खै
सझि कबाण गुण बाण दळा प्रारँभ वळ दक्खै
भड भिडज्ज गज धज्ज घडा चतुरग कसस्सै
सिंधू सद्द रवद्द नद्द नीसाण निहस्सै
चत्रवाह् साहि दोइ राह चढि सझि फौजा दौवै समथ
विचि झड थड मडै वडा करिवा भारथ अेम कथ

(ख) खगा चढि धार हुवै वि-वि खड पडै धर हिंदु मळेच्छ प्रचड
रळत्तळि नीर जिही रुहिराळ खलाहळ जाणि कि भाद्रव-खाळ

(ग) कसै हाथळां टोप मोजा क्रिगल्ल जमद्दाढ वामै जिके खाग ढल्ल
गुपत्ती कती सगि गद्दा गुरज्ज कसै आवधा त्रीसछै जुज्झ कज्ज

भुथाण कबाण जुआण सभल्ल मिळै मीरजादा इसा जुझ्झमल्ल
विन्हे फौज फौजा घणी चत्रवाह सझै सार आबध्ध लीधा सनाह[1]

(१२) गाडण गोपीनाथ कृत गजरूपक (संवत १८१० के आसपास) से—

ॠँनराव वहे मुहमद कठीर नरनाह चडावे व स नीर
जैतसी भजि कम्मरै जडागि धूधहर राइ लागे धियागि
माळदे-तणो भजियौ माण कलियाण पाण झल्ले केवाण
वाधियो उलक रासै दुबाह मारुवै राव गुजरात माह

(१३) प्रथम नेह भीनौ महाक्रोध भीनौ पछै लाभ चँमरी सँमर झोक लागै
रायकँवरी वरी जेण वागै रसिक वरी घड कँवारी तेण वागै
करण अखियात चढियो भला काळमी निवाहण वँ ण भुज वाधिया नेत
पँवारा-सदन वरमाळमू पूजियो खळा किरमाळसू पूजियो खेत
नेह निज रीझरी वात चित्त ना धरी प्रेम गवरी-तणो नाहि पायो
राजकँवरी जिका चढी चँवरी रही आप भँवरी-तणी गीठ आयो
—पाबूजीरो गीत

(१४) मिळता मिलै न मुजरो मानै आया करै न आदर ऊठ
आसण माड चोफळा अैठै परगहने वैठै दे पूठ

---

१ इस अ शमे कृत्रिम डिंगळका आभास मिलता है जिसमे आगे चलकर बहुत-सी रचनाऍं लिखी गईं। भाषा-विकासके नियमोंके विरुद्ध अक्षरोंको द्वित्त बनाना और अनावश्यक अनुस्वारको प्रयोग करना दोनों बातें इस उदाहरणमे मिलती है जिनका बादमें बहुत प्रयोग होने लगा। अैसा प्रतीत होता है कि इस प्रकारकी रचनाओंका आरम्भ इसी कालके लगभग हुआ। पृथ्वीराजरासोमें ये बातें प्रचुर परिणाममें मिलती है। उसके वर्त्तमान रूपका रचनाकाल इसी समयके आसपास आ सकता है। रासोकी सबसे प्राचीन प्रति १६४७ की बताई जाती है जो नागरीप्रचारिणी-सभामे सुरक्षित है। पर उसका सम्वत् हमारी समझमें गलत पढा गया है। वह १६४७ न होकर १७४७ प्रतीत होता है। सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्धकी दो प्रतियाँ बीकानेर-राज्यके पुस्तकालयमें है। इससे पूर्वकी कोई प्रति उपलब्ध नही होती। अत उसके वर्त्तमान-रूपका रचनाकाल १६०० से पूर्व होना सम्भव नहीं जान पडता।

नरपत जरा सिकार नीसरै हळवळ हुवै नकीवा हाथ
आगे लिया तासळो अंठो वैठो रहै फाड़िया बाक
आगे गया सिकार ऊछरै ओ भी नाखै तुरँग उपाड
ऊठी वाग पागडो उचकै नीचो पडै तुडावै नाड
इसड़ी भात हाजरी आवै पछे करावै जपत पटो
पाछो जाय घरा पिसतावै सझियो नह बापरो सटो

(१५) सुभा-निसुभा-भजणी तू घटा दे रोर आदेसरी
अभा तोर दुलभा थटा दे दधा पाज
विलवा न कीजे जठी तठीसूँ खटा दे वीत
अबा मूझ चीतको मिटादे सोच आज

(१६) उडै पग-हाथ, किरका हुवै अगरा, वहै रत जेम सावण-वहाळा
आप-आपोपरी जोयने आडिया लडै रिण भला भला निराताळा
तहक नीसाण हरखाण गिरवाण तन चित्त सरसाण रभ गाण चालै
निडर रिख-राण गह पाण वीणा नचै भाण रथ-ताण घमसाण भाळै
—रघुनाथरूपक (स० १८६१) ।

(४) राजस्थानी भाषाका साहित्य

राजस्थानीका प्राचीन साहित्य बहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। पद्य ही नहीं किंतु गद्य भी उसमें प्रचुर परिमाणमें मिलता है। भारतीय भाषा-विज्ञान और मध्यकालीन भारतीय इतिहासके सुचारु अध्ययनके लिअे राजस्थानी साहित्यका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। खेद है कि विद्वानोंका ध्यान अभीतक इस ओर नहीं गया और यह बहूमूल्य साहित्य प्रायः सब-का-सब अज्ञानांधकारके गहरे गर्त्तमे छिपा पड़ा है। यदि शीघ्र ही इसके उद्धारकी ओर ध्यान नहीं दिया गया तो यह बहुमूल्य निधि कीड़ोंका ग्रास बनकर या मटकों और बोरियोंमे सडकर नष्ट हो जायगी।

राजस्थानी साहित्यको हम दो भागोंमे बाँटेंगे—(१) डिंगळ साहित्य, और (२) साधारण बोलचालकी राजस्थानीका साहित्य।

(५) डिंगल साहित्य

डिंगळका साहित्यभंडार बहुत विस्तृत है। वह प्रधानतया वीर और श्रृंगार रसात्मक है। डिंगळका अपना अलग साहित्य-शास्त्र वर्त्तमान है जिसके नियमोंका निर्वाह डिंगळ-लेखकोंको करना पडता है। इसी प्रकार उसका पिंगळ भी अपना अलग है। डिंगळ कविता मुख्यतया गीतोंमे है। इन गीतोंका विस्तृत विवरण कवि मंछाराम कृत रघुनाथरूपक नामक ग्रथमे किया गया है। गीत-साहित्य डिंगळकी अेक विशेषता है। ये गीत विशेषतया अैतिहासिक व्यक्तियोंके संबंधके है और उनमें इन लोगोंकी वीरता तथा उदारतापूर्ण पराक्रमोंका वर्णन है। देवताओंकी स्तुतियोके धार्मिक गीत भी बहुत बडी संख्यामे मिलते है। इन सब प्रकारके गीतोंका यदि संग्रह किया जाय तो उनकी सख्या लाखों तक पहुचेगी। छन्दोंमे दूहा और कवित्त (छप्पय) डिंगळके प्रमुख छंद है। अन्य छंदोंमे पाघड़ी (पद्धरी), भुजंगप्रयात, मोतियदाम, हनूफाल तथा बिअक्खरी उल्लेखनीय है।

डिंगळ कविताकी अेक प्रमुख विशेषता वैंणसगाई अलंकारका प्रयोग है। वैंणसगाई अेक प्रकारका अनुप्रास होता है। इसके लिअे यह आवश्यक है कि छन्दके प्रत्येक चरणमे पहले शब्दका आरंभ जिस वर्ण से हो उसके अंतिम शब्दका आरंभ भी उसी वर्णसे होना चाहिअे[१]। यहाँपर अेक उदाहरण दिया जाता है—

> गगाजळ गुटकीह, निरणे ही लीधी नही।
> भव-भवमे भटकीह, भूत हुवा, भागीरथी॥

डिंगळकी कुछ कृतियोंका उल्लेख यहाँपर किया जाता है—

(१) श्रीधर कृत रणमल्ल-छंद। इसका रचनाकाल संवत १४५४ के लगभग है। इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। यह वीर-रसकी अेक बहुत सुंदर रचना है।

---

१ नही तो वह वर्ण अंतिम शब्दमें कही-न-कहीं अवश्य आना चाहिअे। वैणासगाईके लिअे च-छ, ज झ, ग-घ, प-फ, त-ट, द-ड, ध-ढ, न-ण, और ब-व में तथा इ-उ-अे-ओ-य-व में अन्तर नही गिना जाता।

(२) वीठू चारण सूजो नगराजोत कृत राउ जाइतसी-रउ छन्द—रचनाकाल संवत् १५९० के आसपास। इसमें कामरांके वीकानेरपर आक्रमण करने तथा राव जैतसी द्वारा उसके पराजित होनेकी कथा है। इसकी भाषा बड़ी प्रौढ़ और प्राजल है।

(३) किसी अज्ञात चारण-कवि कृत राउ जइतसी-रउ छंद—इसमें भी वही कथा है तथा इसका रचनाकाल भी करीब-करीब वही है। विस्तारमें यह सूजोके छंदसे बडा है।

(४) राठोड पृथ्वीराज कृत कृष्ण-रुकमणीरी वेल—इसका रचनाकाल संवत १६३७ है। ये पृथ्वीराज वीकानेर-नरेश महाराज रायसिहजीके अनुज तथा अकबरके दरबारी थे। यह ग्रंथ डिगळका सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रंथ समझा जाता है।

(५) आढा चारण दुरसो कृत विड़द-छिहत्तरी—यह कवि महाराणा प्रताप तथा अकबरका समकालीन था। इस रचनामें महाराणा प्रतापके स्वातंत्र्यप्रेमकी प्रशंसाके ७६ दूहे है।

(६) वरसळपुरगढ-विजय या सुजाणसिहरासो—इसमें वीकानेर-नरेश सुजाणसिहकी वरसळपुर-विजयका वर्णन है। इसका समय संवत १७६९ के लगभग है।

(७) बारठ नरहरिदास कृत अवतार चरित्र-इसमें भगवान्के अवतारोंका चरित्र लिखा गया है।

(९) कविया चारण करणीदान कृत सूरजप्रकाश—इसमें जोधपुर-नरेश अभयसिहकी विजयोंका वर्णन है। इसका रचना काल संवत १७८७ के लगभग है।

(१०) उक्त चारण कृत विडद-सिणगार—इसका विषय तथा रचना-काल ऊपर लिखे अनुसार ही है।

(११) गाडण चारण गोपीनाथ कृत ग्रंथराज या गजसिह-रूपक—इसमें वीकानेर-नरेश गजसिहजीका चरित्र वर्णित है। इसका समय संवत १८०० के आसपास है।

(१२) आढो चारण किशन कृत भीम-विलास—इसमें मेवाड़के महाराणा भीमसिंहका चरित्र लिखा गया है।

(१३) जस-रत्नाकर।

(१४) वीठू चारण भोमो कृत रतनविलास।

(१५) कविया चारण सागरदान कृत रतन-रूपग।

(१६) रतनविलास ग्रंथ।

ये बीकानेर-नरेश महाराज रतनसिंहजीके विषयमे बने हुअे है। इनका समय १९वीं शताब्दीका अंतिम भाग है।

(१७) मीसण चारण सूर्यमल्ल कृत वंशभास्कर—यह डिंगळका सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथकी भाषामें ब्रजभाषाका मिश्रण बहुत अधिक है। कृत्रिम डिंगळका यह चरम उदाहरण है। पृथ्वीराजरासोको छोडकर यह राजस्थानी और हिंदीसाहित्यका सबसे मोटा महाकाव्य है। इसका समय संवत् १८९७ है।

(१८) सेवग मंछाराम कृत रघुनाथ-रूपक—इसमे डिंगळ कवितामे प्रयुक्त गीतोंके लक्षण और उदाहरण दिये गये है। साहित्यशास्त्र तथा पिंगळकी कुछ बातोंका भी संक्षेपमें वर्णन किया गया है। उदाहरणोंमें रामायणकी कथा क्रमसे वर्णित की गई है।

गीतोंके लेखकोंमे कुछ महत्वपूर्ण नाम ये हैं—(१) गाडण पसाइत (२) आढो दुरसो (३) खिड़ियो जगो (४) गाडण ऊगो (५) भूलो सांइयो (६) बारठ अखो (७) बारठ हरसूर (८) वीठू मेहो (९) सांदू मालो (१०) बारठ ईसर (११) चारणी पदमा (१३) रतनू ईसर (१४) महाराज पृथ्वीराज राठोड़ इत्यादि-इत्यादि।

डिंगळमे गद्य भी लिखा गया है। वह भी अनेक-रूपात्मक है। डिंगळ गद्यका अेक भेद वचनिका है। वचनिका उस गद्यको कहते हैं जिसमें वाक्योंकी तुक मिलती जाय।[1] वचनिकाओंमे दो बहुत प्रसिद्ध हैं—(१) खीची

---

१ तुकवाला गद्य लिखनेकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। पद्रहवी शताब्दीमें लिखी हुई कई राजस्थानी भाषाकी कथाअे इस प्रकारके गद्यमें लिखी हुई मिली

अचळदासरी वचनिका—इसमें गागरोनगढ़के चोहाण राजा अचळदास और मांडवगढ़के सुलतानके युद्धका वर्णन है जिसमें अचळदास वीरगति को प्राप्त हुआ। इसका कर्त्ता सिवदास नामक चारण था जो उक्त राजाका समकालीन था। यह रचना संवत् १४७० के आसपासकी है।

(२) राव रतन महेसदासोतरी वचनिका—औरंगजेब और महाराज जसवंतसिहके बीच उज्जैनमे जो युद्ध हुआ उसमें रतनसिहने वीरगति प्राप्त की। उसका वर्णन इस ग्रंथमें है। इसका लेखक खिड़िया चारण जगो था जिसने स्वयं उक्त युद्धमें भाग लिया था। इसका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दीका द्वितीय दशक है।

इनमे पहली प्राचीनताकी दृष्टिसे और दूसरी प्रौढ़शैलीकी दृष्टिसें महत्वपूर्ण है ।

(६) साधारण बोलचालकी राजस्थानीका साहित्य

साधारण राजस्थानी साहित्यके तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) लौकिक रचनाऐं (२) जैन रचनाऐं, और (३) जैनेतर रचनाऐं।

लौकिक साहित्यके निर्माता ढाढी, ढोली, भाट आदि जातियाँ है जिनका व्यवसाय गा-बजाकर अथवा कथा-कहानी सुनाकर जनताको रिझानेका होता है। ऐसे साहित्यकी रचना प्रधानतया मौखिक रूपमे ही होती है और वह बहुत काल तक मौखिक रूपमें ही रहता है। समयके साथ-साथ उसकी भाषा तथा ढाँचा आदि बदलते रहते है। नये-नये गायक (या पाठक) अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अथवा परिस्थितिको देखकर परिवर्त्तन ऐवं परिवर्धन करते रहते है। आगे चलकर कोई उत्साही व्यक्ति उसे लेखबद्ध कर देता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह साहित्य हमें अपने आरंभिक असली रूप मे प्राप्त नहीं हो सकता। राजस्थानीमे ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाणमे है, केवल संग्रह करके लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता है (समय-समयपर कुछ-कुछ लिपिबद्ध किया भी गया है)।

है। हिंदीमे लल्लूलाल और इशाअल्लाहखाँने इस प्राचीन परिपाटीका अनुसरण कहीं-कहीं किया है।

जैन रचनाओंके लेखक जैन साधु अथवा जैन गृहस्थ है। यह साहित्य तुरंत ही लिपिबद्ध हो जानेके कारण बहुत-कुछ अपने असली रूपमें सुरक्षित है। भाषाविज्ञानके लिअे इसका बड़ा भारी महत्त्व है। प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा प्राचीन हिंदी आदि भाषाओंके क्रमिक विकासके अध्ययनके लिअे इसका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। प्राचीनता-प्रेमके कारण इस साहित्यकी भाषापर प्राकृत और अपभ्रंशका प्रभाव पाया जाता है फिर भी बोलचालकी भाषाके वह अधिक सन्निकट है। यह साहित्य प्रधानतया धार्मिक या कथात्मक है।

जैनेतर लेखकोंकी कृतियोंको हम तीसरे विभागमें रखेंगे। अत्यन्त प्राचीनकालकी अैसी कृतियाँ बहुत कम उपलब्ध होती है। इनमेसे कुछ आगे चलकर बहुत लोकप्रिय हुईं और लौकिक साहित्यकी भाँति जनताकी वस्तु बन गईं। इस कारण उनमें समय-समयपर बहुत परिवर्त्तन और परिवर्धन होते रहे और उनको अपने असली रूपमें प्राप्त करना कठिन है। इस विभागमें धर्म, नीति, तथा कथात्मक रचनाओंकी प्रधानता है। खड़ीबोली-मिश्रित राजस्थानी अथवा व्रज-मिश्रित राजस्थानीकी रचनाअें भी इस विभागके अन्तर्गत आवेंगी।

राजस्थानीका सन्त-साहित्य भी बहुत बड़ा है। इस साहित्यकी भाषा विशुद्ध राजस्थानी नही किन्तु उसमे व्रज, खड़ीबोली, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओंका मेल पाया जाता है। सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि अनेक संतोंके भजन भी राजस्थानी रूप धारण करके राजस्थानी जीवन और राजस्थानी साहित्यके अग बन गये हैं।

राजस्थानीका गद्य-साहित्य बहुत विस्तृत और महत्वपूर्ण है। हिंदीमे प्राचीन गद्य-साहित्यका प्रायः अभाव है पर राजस्थानीमे गद्य-लेखनकी परंपरा अपभ्रंशकालसे वर्तमान शताब्दीके प्रारंभ तक अनवच्छिन्न रूपसे जारी रही है। प्राचीन कालके अधिकाश गद्य-लेखक जैन लोग ही है। सत्रहवीं शताब्दीके प्रथमार्धसे राजस्थानके विभिन्न राज्योंकी ख्यातें (इतिहास) बराबर लिखी जाने लगीं। अैतिहासिक, अर्धैतिहासिक और काल्पनिक

कथा-साहित्यका तो प्रवाह-सा बह चला[१]। अभाग्यवश राजकीय परिवर्त्तनों के कारण तथा अन्यान्य कारणोंसे बहुत-कुछ प्राचीन गद्य-साहित्य नष्ट हो गया या बिखर गया। बहुत-सी राजकीय ख्याते लेखकों या उस विभागके अधिकारियोंकी निजी संपत्ति बनकर विस्मृतिके गर्त्तमें जा पड़ीं। राजस्थानीका अधिकाश गद्य-साहित्य ख्यातों या वातोंके रूपमे है। इसके बाद धार्मिक गद्यका नम्बर आता है। संस्कृत और प्राकृतके धार्मिक तथा लौकिक कथाग्रंथोंके अनुवाद भी राजस्थानीमे हुअे और उन्होंने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। राजस्थानमे गद्य साहित्य-लेखनकी यह परंपरा बीसवीं शताब्दीके आरंभतक बराबर चलती रही। इस समयके आसपास खडीबोलीका उत्थान हुआ और राजस्थानकी शिक्षा-संस्थाओंमे राजस्थानीकी जगह उसको स्थान मिला। अब खड़ीबोली पढ़े-लिखे शिष्ट-समाज द्वारा समादृत हुई और राजस्थानी धीरे-धीरे गवारू बोली समझी जाने लगी। फल यह हुआ कि राजस्थानीमें साहित्य-रचना बंद हो गई और राजस्थानी लेखक खड़ीबोलीमें लिखने लगे। बीसवी शताब्दीमे राजस्थानने खड़ीबोली-गद्यकी महान् सेवाअें कीं और इस विषयमें वह किसी प्रातसे पीछे नहीं रहा। कविराज श्यामळदास, महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा, मुंशी देवीप्रसाद, पुरोहित हरिनारायण, विश्वेश्वरनाथ रेउ, हरिभाऊ उपाध्याय, डाक्टर निहालकरण सेठी आदि लेखकोंने तथा सौरभ, त्यागभूमि आदि पत्रिकाओंने जो सेवाअे की है वे हिन्दीमे अपने ढंगकी अद्वितीय है।

राजस्थानी साहित्यके कुछ साहित्यकारों और रचनाओंका यहाँपर संक्षेपमे उल्लेख किया जाता है[२]—

---

१ वात राजस्थानीमें कहानीको कहते हैं। राजस्थानी वातोंके सग्रह राजस्थानके ग्रथभडारोंमे यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। इन सबका सग्रह किया जाय तो न जाने कितने कथासरित्सागर यह सहस्ररजनीचरित्र तय्यार हो जायँ।

२ यह निबध अैसे स्थानमें लिखा जा रहा है जहाँ इस विषयकी सामग्री तथा सहायक साहित्य (Reference-ग्रथ आदि) प्राप्य नहीं। इस कारणसे अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकों और कृतियोंके नाम छूट गये हैं। इस दृष्टिसे यह

(क) लौकिक रचनाअें—

(१) ढोला-मारूरा दूहा—यह राजस्थानका अेक अत्यन्त लोक-प्रिय काव्य था। इसमें नरवरके कछवाहा राजकुमार ढोला और पूगळके पँवार राजा पिंगळकी राजकुमारी मारवणी या मारूकी प्रेम-कथा है। आरंभमें किसी ढाढी-ढोलीने इसकी रचना की होगी और बादमें यह लोक-प्रचलित काव्य बन गया। समय-समयपर परिवर्त्तन और परिवर्धन भी इसमे होते रहे। जैन-कवि कुशळलाभ (संवत् १६१५ के लगभग) के समय-में इस काव्यके बहुत-से दूहे लुप्तप्राय हो गये और कथासूत्र छिन्न-भिन्न हो गया। उक्त कविने कथासूत्रको मिलानेके लिअे बीच-बीचमे चौपाइयाँ बनाकर जोड दीं। कुशळलाभके इस रूपमें भी समय-समयपर परिवर्तन होता गया। सौभाग्यवश प्राचीन दूहोंवाला रूप सर्वथा विनष्ट नहीं हुआ और उसकी कुछ लिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई है। यह काव्य इतना लोक-प्रिय था कि इसके अनेक दूहे अब भी लोगोंकी जबान मिलते है। इसे राजस्थानका जातीय काव्य National Poetry कहा जा सकता है। मानव-हृदय के कोमल भावोंका इसमे बडा सुन्दर चित्रण हुआ है।

(२) डूँगजी-जवारजीरो गीत—डूँगजी और जवारजी शेखा-वाटी (राजस्थान) के सुप्रसिद्ध डाकू थे। इनका यह गीत राजस्थानमें लोकप्रिय है और अब भी अनेक थोरी जातिके गायक स्थान-स्थानपर इसे सुनाकर लोगोंका मनोरंजन करते है। यह वीर-रसका अेक फड़कता हुआ गीत है।

(३) हेड़ाऊ-महरीरो गीत—होलीके अवसरपर हेडाऊ और महरीका साँग निकलता है। इस गीतका संबंध इसी साँगसे है।

इसी प्रकार तेजोजी, रामदेवजी आदि अनेक वीरोंके गीत प्रचलित है।

विवेचन अधूरा समझा जा सकता है। इस प्रयासका उद्देश्य संपूर्णता नही किंतु केवल कुछ उदाहरण उपस्थित करना ही है।

(ख) जैन रचनाअें—

राजस्थानीमें लिखित जैन रचनाओंका विस्तार बहुत बड़ा है। उसके लिअे अेक स्वतंत्र निबन्धकी आवश्यकता है। कुछके नाम यहाँपर दिये जाते हैं—

(१) देवसेन कृत सावयधम्म-दोहा—यह दसवीं शताब्दीके उत्तर भाग की रचना है।

(२) किसी अज्ञात कवि कृत वसंत-विलास—यह पंद्रहवीं शताब्दीकी रचना है। शृङ्गार-रसका यह अेक छोटा-सा किन्तु बडा ही सुन्दर काव्य है। भाषाका सौंदर्य भी अनुपम है।

(३) कुशळलाभ कृत माधवानल-कामकंळदा चोपई—इसका रचना-काल सत्रहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध है।

(४) कुशळलाभ कृत ढोला-मारू-चोपई—प्राचीन ढोला-मारू नामक दूहात्मक गीतकाव्यके प्राप्य दूहोंको लेकर कविने यह रचना की है।

(५) गोरा-बादळ-चउपई—वाचक हेमरतन कृत। इसका रचनाकाल संवत् १६४५ है। इसी प्रकार जंबूस्वामी-रास, रेवंत-गिरि-रास, श्रीपाळ-रास, गोतम-रास, ज्ञानपंचमी चउपई, शीळ-रास, देवराज-वछराज-चउपई, आदि सैंकड़ों धार्मिक कथाग्रन्थ जैन विद्वानोंके लिखे मिलते हैं।

(ग) जैनेतर रचनाअें—

(१) रुकमणी-मंगळ—यह अेक महाकाव्य है जो विभिन्न राग-रागि-नियोंमें लिखा गया है। इसका कर्त्ता पदमभक्त नामक कोई वैश्य था (कुछ लोग तेली भी कहते हैं)। इसका रचनाकाल विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दी है। इसमें रुक्मिणीके जन्म तथा हरणकी कथा है। यह काव्य बहुत लोकप्रिय हुआ और अब भी राजस्थानमें रात्रिमें गायक लोग इसे गाते हैं और जनता अेकत्र होकर सुनती है।

(२) नरसी-मूँहतेरो मायेरो—इसमें भक्त नरसी और उनके माहेरा भरनेकी कथा है। रुकमणी-मंगळ भी भाँति यह भी बहुत लोकप्रिय है और

इसी प्रकार रातके समय गाया जाता है। इसका रचयिता कोई लकडहारा बताया आता है।

(३) वीसळदे-रासो—इसका कर्त्ता नरपति नाल्ह है और यह तेरहवीं शताब्दीके अन्तिम भागकी रचना है। यह काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा छप चुका है।

(४) वीरमायण—ढाढी बहादरकी बनाई हुई। इसमें मारवाड़के राठोड राव वीरमके पराक्रमोंका वर्णत है।

(५) लक्ष्मणसेन-पद्मावती चउपई—दामो कृत। इसका समय संवत् १५१६ बताया गया है।

(६) गोरा-बादळरी बात—जटमल नाहर कृत। यह खडीबोली-मिश्रित राजस्थानी-पद्यकी रचना है। इसका समय संवत् १६८० है।

(घ) संत-साहित्य—राजस्थानीके संत-कवियोंमें कबीर, दादूदयाल, हरिदास दयालजी, रजबजी और रामचरणदासके नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियोंकी रचनाओंको वाणियाँ कहते हैं। कबीरकी वाणीके तीन भाग हैं—(१) साखी, (२) सबद या पद, और (३) रमैणी। अन्य कवियोंने प्रायः साखी और सबद ही लिखे हैं।

भक्त-कवियोंमें मीरांबाई, चंद्रसखी, बखतावर, ब्रजनिधि आदि प्रमुख हैं। मीरांका समय १५५५ और १६०३ के बीचमें है। चंद्रसखी और बखतावरकी कविताका माधुर्य अनुपम है। ब्रजनिधि जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंहका कविताका नाम था। राजस्थानमें भाषाके जो नरेश-कवि हुअे उनमें ब्रजनिधिका स्थान सबसे ऊँचा है।

(ङ) गद्य साहित्य—गद्य की दो-चार महत्त्वपूर्ण रचनाओंके नाम यहाँ दिये जाते हैं—

(१) पृथ्वीचंद्रचरित्र—यह पंद्रहवीं शताब्दीकी अेक जैन रचना है।

(२) राठोड़ांरी ख्यात ने वंसावळी—यह सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्धकी रचना है इसमे राठोड़ राव सीहोसे राव कल्याणमल तककी वंशावलियाँ

तथा संक्षिप्त अैतिहासिक वर्णन दिया हुआ है। यह वीकानेर-राज्यके पुस्तकालयमें वर्त्तमान है।

(३) मुहणोत नैणसीरी ख्यात—राजस्थानकी ख्यातोंमें यह ग्रंथ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका रचयिता जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह-जीका मंत्री मुहणोत नैणसी था। इसमें उस समय तकके राजस्थानके राज्यों और राजवंशोंका विस्तृत इतिहास संकलित किया गया है। इसकी लेखन-शैली बड़ी ही प्रौढ़ और प्राजल है। इसका रचनाकाल संवत् १७२० के लगभग है। राजस्थानी भाषाशैलीके लिअे यह अेक अत्यन्त प्रामाणिक रचना है।

(४) जोधपुररा राठोड़ाँरी ख्यात—यह अठारहवीं शताब्दीके पूर्व-भागकी रचना है।

(५) आसिया चारण वाँकीदासरी अैतिहासिक वार्ता—वाँकीदास राजस्थानके सुप्रसिद्ध महाकवि थे। उनका समय १८३८ से १८९० तक है। इस ग्रंथमें अैतिहासिक कथाओं और कहानियोंका बड़ा संग्रह है जो इतिहासकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण है।

(६) वीकानेररे राठोडाँरी ख्यात—सिढायच चारण दयालदास कृत। यह १६×११ इंची आकारके ३९४ पन्नोंका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमे राठोडोंका आरंभसे लेकर महाराज रतनसिंह तकका इतिहास दिया हुआ है। इस लेखकने वीकानेरके राजाओंकी दो और ख्यातें देशदर्पण और आर्य-आख्यान-कल्पद्रुम नामसे लिखी है।

(७) अनुवादोंमे सिंघासण-बत्तीसी, वेताळपचीसी, हितोपदेश, पंचा-ख्यान (पंचतंत्र), दंपतिविनोद आदि उल्लेखनीय है।

(८) धार्मिक अनुवादोंमे भागवत-दशम-स्कंध,अेकादशी-कथा-माहात्म्य, व्रतों और त्योहारोंकी कथाअें आदि प्राप्त हुअे है।

(९) वात-साहित्यकी कुछ महत्त्वपूर्ण और सुप्रसिद्ध वातोंके नाम नीचे लिखे जाते है—

(क) अैतिहासिक—जगदे पँवाररी वात, गोगेजीरी वात, पाबूजीरी वात, नागोररे मामलेरी वात, राजा करणसिंहजीरे कँवरांरी वात, नापे सांखलेरी, जैसे सरवहियेरी, गोहिल अरजन हमीररी, चोहाण सातळसोमरी, राव मंडळीकरी, लाखे फूलाणीरी, राजा भीमरी, चांपे वालेरी, पीरोजसाह पातसाहरी, वीरमदे सोनगरेरी, पमे घोरंधाररी, रिणधवळरी, ऊमादे भटि-याणीरी, राणगदे भाटीरी, जगमाल मालावतरी, रावळदे सांखलेरी, रतना हमीररी, राव अमरसिंघरी, कुँवरसीरी, मोमलरी, कुँवर पृथ्वीराज सूरज-मलरी, हाहुल हमीररी, रायधण भाटीरी, कैवाट सरवहियेरी इत्यादि-इत्यादि।

(ख) प्रेमकथाअें—देवरै नायकरी वात, सदैवछ सावलिगारी, अचळदास खीचीरी, सुपियारदेरी, रिणमल खावडियेरी, वींझरे अहीररी, वींझे-सोरठरी, वीजड विजोगणरी, पना-वीरमदेरी, ढोला-मारूरी, इत्यादि।

(ग) नीति-कथाअें—सांईरी पलकमे खलक वसै, साई कर रह्यो; पलक दरियावरी, दिनमानरे फळरी, बुधिवळकथा (लछिराम कृत) इत्यादि।

(घ) प्रकीर्णक—हरराजरे नैणांरी वात, सेखेने भातो आयो, वीरबलरी वात, राजा भोज खाफरो चोर, राणी चोबोलीरी, च्यार मूरखांरी खुदाय वावळी तेरी, वहलिमारी वात, सात बेटियांवाळे राजारी कथा, सयणी चारणीरी, सच बोले सो मारियो जाय, राजा भोजरी पनरमी विद्या, वगले हंसणीरी, अेकलगिड वराह डाढाळारी, इत्यादि।

(७) राजस्थानीका दूहा-साहित्य

राजस्थानीका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य दूहा-साहित्य है। जो स्थान संस्कृतमे अनुष्टुप् श्लोकका तथा जो स्थान प्राकृतमे गाथाका है वही उत्तरकालीन अपभ्रंश (लोकभाषा), राजस्थानी और गुजरातीमे, तथा हिंदीमे भी, दूहेका है। छोटा होनेके कारण इसे याद रखनेमें सुभीता होता है। यह इसकी लोकप्रियाका अेक मुख्य कारण है। बातको संक्षेपमे और चुभते हुअे ढंगसे कहनेके लिअे दूहा बहुत ही उपयुक्त छंद है। इसी कारण

कबीर आदि सन्त महात्माओंने अपनी साखियाँ इसी छंदमें कहीं। रहीम और वृंद जैसे नीति-कवियोंने भी इसीको पसंद किया और बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदिने अपनी अपूर्व रसधारा भी इसीमे प्रवाहित की। इन लोगोंको जो सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके विपयमें कुछ कहना अनावश्यक है। राजस्थानीका अधिकाश लौकिक साहित्य इसी छंदमें निर्मित हुआ है। प्राचीन कालसे सैकडों दूहे लोगोंकी जवानपर चलते आये हैं जिनका बात-बातमें कहावतोंकी भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनताकी सर्वप्रिय माँड रागका माधुर्य और आकर्पण भी उसके दूहोंपर ही निर्भर है। प्राचीन लौकिक-वीरों (Popular Folk-Heroes) की कीर्त्ति इन्हीं छोटे-छोटे दूहोंकी बदौलत नाम-शेप हो जानेसे वच गई है। आज भी प्राचीन ढंगके राजस्थानी-कहानी कहनेवाले लोग कहानियोंके बीच-बीचमें भावपूर्ण स्थलोंपर दूहोंका प्रयोग करके श्रोता लोगोंको मुग्ध करते है।

दूहा छंद और दूहा-साहित्य राजस्थानको अपभ्रंशसे बपौतीके रूपमें प्राप्त हुअे है। उत्तर-अपभ्रंशकालमें दूहा साधारण जनता अेवं विद्वत्समाज दोनों द्वारा समादृत छंद था। राजस्थानीमे भी उसकी लोकप्रियता और उसका समादर ज्यों-के-त्यों कायम रहे। अपभ्रंशकालके बहुत-से दूहे जो लोगोंमे सर्वप्रिय थे बराबर आगे तक चलते गये। हाँ, समयके साथ-साथ उनकी भाषाका रूप भी बदलता रहा। अैसे कुछ दूहे आज भी लोगोंकी जबानपर मिलेगे। बहुत-से विस्मृति-सागरमें लीन हो गये और कुछ थोड़े-से उत्साही व्यक्तियों द्वारा समय-समयपर लिपि-बद्ध कर लिये जानेसे सुरक्षित भी रह गये हैं। अैसे कुछ दूहे उदाहरण-स्वरूप नीचे दिये जाते है—

(१) हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमे नीचे लिखा दूहा उद्धृत किया है—

वायसु उड्डावतिअे पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥८।४।३५२॥

यह दूहा इस समय इस रूपमें प्रचलित है—

काग उडावण धण खडी, आयो पीव भडक्क ।
आधी चूडी काग-गळ, आधी गई तडक्क ॥

(२) हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत अेक दूसरा दूहा इस प्रकार है—

पुत्ते जाअे कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुअेण ।
जा वप्पीकी भुहडी चपिज्जइ अवरेण ॥ ८।४।३९५ ॥

इसका प्रचलित रूप यह है—

बेटा जाया कवण गुण, अवगुण कवणु धियेण ।
जा ऊभा धर आपणी, गजीजै अवरेण ॥

(३) हेमचंद्र द्वारा उद्धृत अेक और दूहा है—

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मुज्झु पिअेण ।
अह भग्गा अम्हहँतणा तो ते मारिअडेण ॥८।४।३७८ ॥

यह आजकल इस रूपमे प्रचलित है—

जो भग्गा पारक्कडा, तो सखि मुज्झ पियेण ।
जो भग्गा अम्हे-तणा, तो तिह जुञ्झ पडेण ॥

(४) प्रबंध-चिंतामणिमें अपभ्रंशका यह दूहा आया है—

जइ यहु रावणु जाइयउ, दह-मुहु इक्कु सरीरु ।
जणणि वियभी चिंतवइ, कवणु पियावउँ खीरु ॥

इसका आधुनिक राजस्थानीमे यह रूप हो गया है—

राजा रावण जलमियो दस मुख अेक सरीर ।
जननीने सासो भयौ किण मुख घालू खीर ॥

(५) प्रबंध-चिंतामणिमें उद्धृत अेक दूसरा दूहा इस प्रकार है—

नव जल भरिया मग्गडा गयण घडक्कइ मेहु ।
इत्थतरि जइ आविसिइ तइ जाणीसिइ नेहु ॥

इसका आधुनिक रूप यह हो गया है—

आज धरा दिस ऊनम्यो, मोटी छाटा मेह ।
भीजी पाग पधारस्यौ, जद जाणूली नेह ॥

(८) दूहा छंद

दूहा उत्तरकालीन अपभ्रंशका प्रमुख छंद था। उसका प्रयोग समस्त देशके तत्कालीन साहित्यमें पाया जाता है। इस छंदका संबंध आरंभमें लोक-कविता (Folk-Poetry) से था अैसा जान पडता है क्योंकि पुराने अपभ्रंश-साहित्यमें उसका प्रयोग नहीं मिलता। जनतामें प्रचार पानेके बाद इसने साहित्यमें भी प्रवेश किया। विक्रमकी नवी शताब्दीके पूर्वभागमें चौरासी सिद्धोंके आदिसिद्ध सरहपा हुअे। उन्होंने तत्कालीन बोलचालकी भाषामें कविता लिखी है।* जहाँ तक पता चला है लिखित साहित्यमें इस छंदका प्रयोग करनेवाले सबसे प्रथम यही महोदय हुअे। धीरे-धीरे यह छंद बहुत ही लोक-प्रिय हुआ। साहित्यमें भी इसका अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। राजस्थानी, गुजराती और हिंदीने इसे अपभ्रंशसे बपौतीके रूपमें प्राप्त किया और यह इन तीनों भाषाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण छंद सिद्ध हुआ। इन भाषाओंके साहित्यमें जितना प्रयोग इस छंद का हुआ है उतना शायद ही किसी दूसरेका हुआ हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि दूहा छंदका सर्वप्रथम प्रयोग वज्रयानी सिद्ध सुरहपाकी रचनाओंमें मिलता है। उनके पश्चात् कण्हपा आदि अन्यान्य सिद्धोंने भी इसका प्रयोग किया। दसवीं शताब्दीके अंतमें देवसेन सूरिने सावय-धम्म-दोहा नामक ग्रंथ दूहोंमें लिखा। ग्यारहवीं शताब्दीके अंतिम भागमें महेश्वरसूरिने संयम-मंजरी नामक छोटी-सी पुस्तक इसी छंदमें लिखी।

बारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें हेमचन्द्रने अपना सुप्रसिद्ध सिद्ध-हैम-शब्दानुशासन नामक संस्कृत तथा प्राकृतका व्याकरण लिखा। उसके अन्तिम अध्यायके अन्तमें अपभ्रंशका व्याकरण दिया गया है। वहांपर

---

*गंगा मासिक पत्र (सुलतानगंज, भागलपुर), भाग ३, अङ्क १ (पुरातत्त्वांक), में राहुल सांकृत्यायनका मंत्रयान, वज्रयान और चौरासी सिद्ध, तथा हिन्दीके प्राचीनतम कवि और उनकी कविताअें नामक निबन्ध।

नियमोंका स्पष्टीकरण करनेके लिअे लेखकने अपभ्रंशके दूहोंको उदाहरणः रूपमें उद्धृत किया है। ये दूहे उसकी अपनी रचना नहीं। उस समयके प्रचलित दूहोंको लेकर उसने संग्रह मात्र कर दिया है।

उत्तरकालीन लेखकोंने दूहा या दोहा शब्दकी उत्पत्ति संस्कृत दोधकसे मानी है। हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत दूहोंकी अेक संस्कृत टीका दोधकवृत्ति या दोग्धकवृत्ति नामसे मिलती है जिससे भी यही सूचित होता है। पर यह बादकी कल्पना है। प्राकृत-पैंगल नामक ग्रन्थके टीकाकारोंने दोहाका मूल द्विपदा शब्दको बताया है। संस्कृत शब्द द्विधाका प्राकृत रूप दूहा या दोहा होता है और दूहा छन्द भी द्विधा-दो प्रकारसे यानी दो पंक्तियोंमें लिखा जाता है। हमारी समझमें यह द्विधा शब्द ही दूहा या दोहाका मूल है।

(९) दूहा छंद के भेद

हिन्दीमें दूहा छन्द अेक ही प्रकारका है पर राजस्थानीमें (और गुजरातीमें भी) उसके चार भेद है। सोरठेको दूहेका ही अेक भेद माना गया है। राजस्थानी पिंगलमें दूहेके इन चार भेदोंके नाम और लक्षण इस प्रकार है—

१ दूहो—यह हिंदीका दोहा है। राजस्थानीमें भी इसका अलग नाम नहीं है। इसके पहले और तीसरे चरणोंमें तेरह-तेरह, तथा दूसरे और चौथे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राअें होती है।

२ सोरठियो दूहो या सोरठा—इसे हिंदीमें सोरठा कहते है। यह दूहे का उलटा है, यानी इसके पहले और तीसरे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह तथा दूसरे और चोथे चरणोंमे तेरह-तेरह मात्राअें होती हैं।

इस भेदका आरंभ सौराष्ट्र या सोरठ देशमें हुआ तथा वहांके कवि ही पहले उसका विशेष प्रयोग करते थे इसीलिअे इसका यह नाम पड़ा। करुण, वीर और श्रृंगार रसोंके वर्णनके लिअे यह बड़ा ही उपयुक्त छंद है। भावावेश-पूर्ण स्थानोंमें राजस्थानीमें इसीका प्रायः प्रयोग होता है। यह भेद दूहेके सब भेदोंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। कहा भी है कि सोरठियो दूहो भलो*।

* देखो समान्य नीतिमें दूहा १७१, पृष्ठ ४८।

राजस्थानीका नीति-संबंधी दूहा-साहित्य भी अधिकतर इसीमें लिखा गया है। राजिया, किशनिया, वीजरा, नाथिया, मोतिया, नागजी, जेठवा आदिके सोरठिये दूहे राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध है।

३ बडो दूहो (बड़ा दूहा)*—इसके पहले और चौथे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह, तथा दूसरे और तीसरे चरणोंमे तेरह-तेरह मात्राअें होती हैं। युद्ध-वर्णन और वीर-रसमें इसका मुख्यतया प्रयोग होता है।

४ तूंवेरी दूहो†—इसके पहले और चौथे चरणोंमें तेरह-तेरह, तथा दूसरे और तीसरे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राअें होती है। यह बड़े दूहेका उलटा है।

ध्यान रखना चाहिअे कि तुक सदा ग्यारह-ग्यारह मात्राओंवाले चरणों की मिलती है अर्थात् दूहेमें दूसरे और चौथे चरणोंकी, सोरठिये दूहेमें पहले और तीसरेकी, बड़े दूहेमें पहले और चौथेकी, तथा तूंवेरी दूहेमें दूसरे और तीसरेकी तुक मिलेगी।

(१०) दूहा-साहित्यके विभाग

राजस्थानी भाषाके दूहा-साहित्यके चार मोटे विभाग किये जा सकते है—

(१) लौकिक दूहा-साहित्य—अैसे दूहे प्राचीन कालसे चले आये हैं अथवा समय-समय पर जनता द्वारा निर्मित होते रहे है। इसमेंसे कुछ लिपि-बद्ध हो गये, कुछ नष्ट हो गये और कुछ अब भी जनताकी जबान पर है। कबीर, तुलसी आदि संतोंकी साखियाँ भी राजस्थानी रूप धारण करके जनतामे प्रचलित हो गई है। उन्हे भी हम इस विभागके अन्तर्गत कर सकते है।

---

* इसके दोनों छोरवाले (यानी पहले और चौथे) चरणोंकी तुक मिलनेसे इसे अतमेळ दूहा भी कहते हैं।

† इसके दोनों मध्यवाले (यानी दूसरे और तीसरे) चरणोंकी तुक मिलनेसे इसे मध्यमेळ दूहा भी कहते हैं।

इन फुटकर दूहोंका उपयोग समय-समय पर कहावतोंकी भाँति किया जाता है। इसके अतिरिक्त कहानी कहनेवाले प्रभाव-वर्धनके लिअे बीच-बीचमें उपयुक्त दूहोंका प्रयोग करते है।* यह रीति बहुत प्राचीन है। इसी प्रकार लिपि-बद्ध कहानियोंके बीच-बीचमें भी ये दूहे पाये जाते है।

लौकिक दूहा-साहित्यमे केवल फुटकर दूहे ही नही है किन्तु बडी-बडी कहानियाँ तथा कथा-काव्य भी है। ढाढी, ढोली, भाट आदि अब भी गा-गाकर इन्हे सुनाया करते है। इन कहानियोंके फुटकर दूहे जनतामे प्रचलित पाये जाते है—किन्हीं-किन्हीं लोगोंको सारी-की-सारी कहानी भी याद रहती है। अैसे कथा-काव्योंमे कुछ थोड़े-से लिपि-बद्ध भी हो गये है। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न परिवर्त्तन तथा परिवर्धन होते रहनेसे इनके अनेक पाठभेद और रूपातर हो गये है। अैसे कथा-काव्योंमें ढोला-मारूरा दूहा प्रमुख है।†

बड़े दुःखकी बात है कि हमारा यह लौकिक साहित्य धीरे-धीरे नष्ट होता जा रहा है। पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे हम अपनी इन चीजोंको नीची

---

*उदाहरणार्थ जहाँ किसी सुन्दरीका उल्लेख आया वहीं उसकी सुन्दरताके वर्णनमें यह दूहा जोड दिया—

कद था नाग विसासिया, नैण दिया मृग झल्ल।
मान-सरोवर कद गया, हसा सीखण हल्ल॥

जहाँ प्रेम या मित्रता वर्णन आया वहाँ यह दूहा कह दिया—

मो मन लागो तो मना, तो मन मो मन लग्ग।
दूध विलग्गा पाणिया, पाणी दूध विलग्ग॥

दूरस्थित प्रेमियोंका वर्णन आया तो यह दूहा लाया गया—

जळमे वसै कमोदणी, चदो वसै अकास।
जो ज्याहीके मन वसै, सो त्याहीके पास॥

†इसका अेक सुसपादित स स्करण हिंदी अनुवाद, पाठांतर, टिप्पणी, शब्दकोष, विस्तृत अैतिहासिक आलोचनात्मक तथा भाषावैज्ञानिक प्रस्तावना, अेव कई परिशिष्टोंके साथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

दृष्टिसे देखने लगे है। ढाढी-ढोली आदि जो जातियाँ इनका रक्षण करती आई है उनका अब आदर नहीं होता, उन्हे सुननेवाले नहीं मिलते, उन्हे कोई नहीं पूछता। इस प्रकार हमारा यह बहुमूल्य खजाना, जिसमें हमारी जाति और हमारे पूर्वजोंका जीवन भरा है, धीरे-धीरे विस्मृतिके तमोतम गर्त्तमें विलीन होता जा रहा है। राजस्थानी जाति यदि अपने व्यक्तित्वके स्वतंत्र अस्तित्वको लोप नहीं होने देना चाहती तो उसे तुरन्त ही इस उपेक्षित कोषकी रक्षाके लिअे कमर कसकर तय्यार हो जाना चाहिअे।

(२) बोलचालकी राजस्थानीमें लिखित दूहा-साहित्य—अैसा दूहा-साहित्य मुख्यतया तीन प्रकारका है—१ सन्त-साहित्य—कबीर,* दादूदयाल, हरिदास दयालजी, रामचरणदास आदि सन्तोंकी साखियाँ इस विभागके अन्तर्गत आती है। व्रजभाषाके महत्त्व प्राप्त करनेके बाद जो सन्त-कवि हुअे उनकी भाषापर व्रजका भी काफी प्रभाव पाया जाता है। २ नीति-साहित्य—इसके अन्तर्गत राजिया, किशनिया, नाथिया, नोपला, ईलिया, दानिया, भैरिया, मोतिया, उदैराज आदिके नीतिके दूहे आते है। जेठवा, नागजी, वींजरा† आदिके प्रेम तथा करुण रसात्मक दूहोंको भी इनमें परिगणित कर लेते है। ३ कथा-काव्य—विभिन्न कवियोंने समय-समयपर दूहोंमे कथा-कहानियाँ लिखी है उनका समावेश इस विभागमें होगा। अैसी कहानियोंमे माधवानळ-कामकंदळाकी कहानी अधिक प्रसिद्ध है। यह दूहा-साहित्य, विशेषतया सन्त-साहित्य और नीति-साहित्य, राजस्थानमें खूब लोक-प्रिय है।

---

*कबीरकी रचनाओंकी भाषा प्रधानतया राजस्थानी थी इसका विवेचन अेक स्वतंत्र निबन्धमें किया जा रहा है।

†राजिया, किशनिया, जेठवा, वींजरा आदिके दूहे इन लोगोके बनाये हुअे नहीं किन्तु इनको सम्बोधन करके अन्य लोगों द्वारा रचे गये है। उदाहरणार्थ राजियाके दूहे चारण कृपाराम द्वारा अपने चाकर राजियाको सम्बोधन करके कहे गये थे। इसी प्रकार जेठवाके दूहे उजळी नामकी चारणीके बनाये हुअे है जो इस जेठ्वा राजा मेहापर आसक्त हो गई थी।

३) जैन दूहा-साहित्य—जैन लेखकोंने जैनधर्म सम्बन्धी बहुत-सी रचनाओं दूहोंमें की है। इनमें कथा-काव्योंकी अधिकता है।

(४) डिंगळ दूहा-साहित्य—यह साहित्य प्रधानतया नीति-विषयक और वीर-रसात्मक है। ऐतिहासिक वीरों तथा अन्यान्य व्यक्तियोंके सम्बन्धके दूहोंका बहुत बड़ा संग्रह राजस्थानीमें वर्त्तमान है।

राजस्थानी लेखकोंने व्रजभाषामें भी दूहा-साहित्यकी रचनाकी है पर वह हमारे विवेचनके बाहरका विषय है क्योंकि प्रस्तुत संग्रहमे व्रजभाषाके दूहोंको स्थान नहीं दिया गया है।

(११) राजस्थानीका आधुनिक साहित्य

खड़ीबोलीकी प्रधानताने राजस्थानी-साहित्य-निर्माणको बंद-सा कर दिया इसी कारण उसका आधुनिक साहित्य बहुत ही पोच है। राष्ट्रभाषाकी सेवामे राजस्थान सबसे आगे रहा यह हमारे लिओ बड़े हर्ष और गौरवकी बात है परन्तु मातृभाषाकी उपेक्षारूप घोर कलंकका टीका भी हमारे माथेपर लगा हुआ है इस ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिओ। हर्षकी बात है कि इस उपेक्षाके होते हुओ भी अनेक उत्साही मातृभाषा-भक्तोंने मातृभाषाकी सेवासे मुंह नहीं मोड़ा और समय-समयपर इस दिशामे कार्य करते रहे। औसे सज्जनोंमे श्री शिवचद्र भरतिया, गुलाबचद नागोरी, कचरदास कलंत्री, करोडीमल माळू आदिके नाम गिनाये जा सकते है। जो जाति अपनी भाषा से विमुख रहती है वह अपना अस्तित्व, अपना जातीय जीवन, सबकुछ खो बैठती है। वह अपने पैरोंपर आप ही कुल्हाड़ी मारती है। इसीलिओ संसार की प्रत्येक स्वतंत्र जाति अपनी मातृभाषाके उत्थान और अभ्युदयकी ओर सर्वप्रथम ध्यान देती है। जापान, आयर्लैण्ड, पोलेंड, जेकोस्लाविया, हंगरी आदि महान राष्ट्रोंके उदाहरण हमारे सामने उपस्थित हैं।

मातृभाषाके समुद्धारकी आवश्यकताका अनुभव राजस्थानके निवासी भी करने लगे है और कई स्थानोंपर कार्य आरंभ भी हो चुका है। अजमेर, जयपुर, बीकानेर आदिमें इसके लिओ संगठित प्रयत्न आरंभ करनेका उद्योग

(ख) कोपकार—

(१) श्रीयुत मिस्रण मुरारीदानजी (बूँदी)—आप सुप्रसिद्ध वंशभास्करके रचयिता सूर्यमलजीके दत्तक पुत्र हैं। आपने डिंगळ-कोष नामक बड़ा कोष तय्यार किया।

(२) श्रीयुत रामकर्णजी आसोपा (जोधपुर)—आप आजकल डिंगळशब्दोंका अेक विस्तृत कोप तय्यार कर रहे है

(ग) संपादक तथा टीकाकार—

(१) महाराज श्रीजगमालसिहजी (वीकानेर)—आपने महाराज पृथ्वोराजजीकी कृष्ण-रुकमणीरी वेलि नामक सुप्रसिद्ध डिंगळ-काव्य की हिंदी टीका लिखी जिसका प्रकाशन हिंदुस्तानी-अेकेडेमीसे हुआ हैं।

(२) पुरोहित हरिनारायणजी बी० अे० (जयपुर)—आपने वाँकीदास ग्रंथावली, व्रजनिधि-ग्रंथावली आदि कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंका संपादन किया है।

(३) श्रीयुत रामकर्णजी आसोपा (जोधपुर)—आपने वाँकीदास ग्रंथावली (प्रथम भाग) आदि ग्रंथ संपादित किये है।

(४) श्रीयुत जगदीशसिंहजी गहलोत (जोधपुर)—आपने ऊमर-काव्य, मारवाड़के गीत आदि कई अच्छे ग्रंथोंको संपादित किया है।

(५) श्रीयुत ठाकुर रामसिंहजी अेम० अे० (वीकानेर)—आपने श्रीयुत सूर्यकरणजी पारीकके सहयोगमें उक्त 'कृष्ण-रुकमणीरी वेलि' का संपादन किया है जिसकी यूरोपियन विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। डा० ग्रियर्सनने तो उसके विषयमे यहाँ तक लिखा है कि भारतीय भाषाओंमें अभी तक किसी पुस्तकका अैसा अच्छा संपादन नहीं हुआ। ढोला-मारूरा दूहा; जटमल कृत गोरा-वादळरी वात, आदि कई अन्यान्य पुस्तकोंका संपादन भी आपने उक्त पारीकजी तथा इस निवंध-लेखकके सहयोगमे किया है।

(६) श्रीयुत सूर्यकरणजी पारीक अेम० अे० (पिलाणी-जयपुर)—आपने उल्लिखित ग्रंथोंके संपादनमें सहयोग देनेके अतिरिक्त राजस्थानरी

वार्ता नामक प्राचीन राजस्थानी गद्यमें लिखित वीर-कथाओंका संपादन किया है जो इस पिलाणी-राजस्थानी-सीरिजका प्रथम ग्रंथ है।

(७) श्रीयुत मुरलीधर व्यास (बीकानेर)—आपने इस निबंध-लेखकके सहयोगसे राजस्थानी कहावतां नामक बृहत् ग्रंथका संपादन किया है।

बीकानेरकी राजस्थानी-साहित्य-परिषत् निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंके लिअे सामग्री अेकत्र कर रही है—

(१) राजस्थानीका व्याकरण

(२) राजस्थानीकी विभिन्न बोलियोंका तुलनात्मक व्याकरण

(३) राजस्थानी भाषाका इतिहास

(४) राजस्थानी साहित्यकारोंकी डाइरेक्टरी

(५) राजस्थानी साहित्यका इतिहास

(६) राजस्थानी-काव्य-संग्रह (८ भागोंमें)

(७) बृहत् राजस्थानी-हिंदी कोष

राजस्थानी साहित्य और इतिहासके सम्बंधकी गवेषणाओंको प्रकाशित करनेके लिअे अेक त्रैमासिक खोज-पत्रिकाके प्रकाशनका आयोजन भी उक्त परिषत् कर रही है। आशा है कि यह आयोजना शीघ्र ही कार्यरूपमे परिणत होगी।[1]

नरोत्तमदास स्वामी

---

[1] जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस निबंधका उद्देश्य केवल उदाहरण उपस्थित करनेका है अतः यह अनेक दृष्टियोंसे अधूरा है और अज्ञान अेवं भ्रमवश अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकोंके नाम छूट गये हैं। हालमें ही कलकत्तेमें राजस्थान रिसर्च सोसाइटी नामकी संस्था स्थापित हुई है जो प्राचीन राजस्थानी साहित्यके संग्रह तथा प्रकाशनकी आयोजना कर रही है। इस संस्थाकी ओरसे भी अेक त्रैमासिक पत्रिका निकलनेवाली है।

उत्तरार्ध

कर्नल टाड यह लिखते समय कि—There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas इतना और लिखना भूल गये थे कि थर्मापोली-से रणक्षेत्र तैयार करनेवाले वीर, सैनिक कवियोंसे भी राजस्थानका साधारण-से-साधारण गाँव भी खाली नहीं रहा है। यहाँके वीर तथा भावुक-हृदय चारण, भाट, ढाढी, ढोली और ढोलणोंकी कवित्त्वाभाको कालिदास, भवभूति और भारवि तथा शेक्सपियर और मिल्टनके काव्यानन्दसे कम उद्भासित न पायँगे। सब मानते हैं कि वीर राजस्थान भारतकी वीर-बाहु रहा है, अब मानना होगा कि राजस्थान भारतका सबल तथा भावुक हृदय भी रहा है। राजस्थानी नैसर्गिक वीरों की तरह जीवित रहे है और वीरोंकी तरह मिटे है। राजस्थानी साहित्यके विद्वान् श्रीयुत पं० सूर्यकरणजी पारीक अेम० अ० अपनी 'राजस्थानी वार्ता' की भूमिकामे लिखते है—

"सबसे पहली विशेषता जो राजपूतके चरित्रमे देखी जाती है वह है उसकी मन, कर्म और वचनसे दृढ-प्रतिज्ञता। प्रतिज्ञा-पालनसे विमुख होना राजपूत अपनी कायरता समझता है, अतअेव प्राण देकर भी प्रतिज्ञा-पालन करता है।" छल-प्रपंचमय राजनीतिसे यह जाति सदैव घृणा करती रही है। जैसी नैसर्गिक-पवित्रता यहाँकी वीरतामें रही है, वैसी ही प्राकृतिक पावनता यहाँकी साहित्य-धारामे मिलेगी। इस जातिके वीर साहित्यमे तेजोमय वीर बनानेकी शक्ति है, श्रृंगार-साहित्यमे सुरम्य-प्रणय-धारा बहानेकी शक्ति है, करुण-साहित्यमे पत्थर पिघलानेकी शक्ति है और शान्त-साहित्यमे कैवल्यमय करनेकी शक्ति है। आचार्य चतुरसेन शास्त्रीने लिखा है—मारवाडका अबसे सौ वर्ष पूर्वतकका साहित्य महाजातियोंके सजने योग्य साहित्य है।

अत्यन्त पुरातन कालके बाद वास्तविक जातीय-साहित्य तैयार करने का गौरव यदि किसी भारतीय प्रान्तको प्राप्त है तो राजस्थानको। वेदोंमें आर्योंने महाशक्तिसे प्रार्थना की थी—'मन्युरसि मन्युम्मयि धेहि।' इस वीर-जातिके वीर-साहित्यमें भी यही वीर-भाव आदिसे अन्त तक भरपूर मिलेगा। भारतके अन्यान्य प्रान्तोंमे गौतम बुद्ध और महावीर स्वामीके अहिंसावाद-जनित-साहित्यने अपना दुर्बल शान्तिमय मोहका पर्दा अैसा डाल दिया कि आक्रमणकारी मुसलमान-जातिने वीर आर्योंकी सन्तानको भेड-बकरियोंकी तरह काट डाला। जब नसें फड़कानेवाले वीर-साहित्यके आवेशके साथ वीर राजस्थान सामने आया तब अेकबार शत्रु प्राण-भयात् कांप उठे। खेद है कि भक्तिकी शीतल धाराके सामने राजस्थानका यह आवेश भारतमें न फल सका और सन्तोष-सम्मोहनकी चादर ओढ़कर भारत अैसा सोया कि आजतक पूर्ण जागृतिमे नहीं आया।

उक्त पारीकजीने उसी पुस्तककी भूमिकामे अन्यत्र लिखा है—राजपूत सभ्यता और पूर्व संस्कृतिका प्रमुख रूप इन कहानियों और इसी प्रकारकी असंख्य आख्यायिकाओंमें देखनेको मिलता है। इसी शैलीपर इतनी-सी बात लिख दूँ तो अयुक्त न होगा कि वीर राजस्थानके हृदयका इतिहास इन कविताओंमे है जो भारतीय आर्य-संस्कृतिका प्रमुख स्तंभ है। इस कविता-शैलीमे पुरातन काव्य-शैली और आधुनिक रहस्यवाद और हृदयवाद काव्य-प्रणालीका अपूर्व संमिश्रण है। यदि यह जीर्णोद्धार थोड़े दिन पहले हुआ होता और हिन्दी-कविता-शैली पाश्चात्य प्रणालीका अनुकरण न करके इस मार्गका अनुसरण करती तो उसकी आधुनिक आभा भी संसारको विशेष आभासित करनेवाली होती।

प्रस्तुत दूहा-संग्रहके कतिपय उदाहरण लेकर हम यहांपर राजस्थानी काव्य-धारा और राजस्थानी साहित्यमे वर्णित राजस्थानी जीवनका संक्षिप्त दिग्दर्शन करावेंगे

राजस्थानी जीवनकी सबसे बडी दो विशेषताएँ उसका वीरत्व और उसका स्वातंत्र्य-प्रेम है जो राजस्थानी साहित्यमें ओतप्रोत भरे हुए है। राजस्थानकी अधिष्ठात्री देवी उसके अनुरूप ही दुर्गा-स्वरूपिणी माता करणी है जिन्हे देवीका अवतार माना जाता है और उसी रूपमे पूजा जाता है। जननीका वीरोचित स्वरूप राजस्थानी भावनाओके अनुकूल कैसा सुन्दर अंकित किया गया है—

वडकै डाढ वराह, कडकै पीठ कमठ्ठरी।
धडकै नाग-धराह, वाघ चढै जद वीसहथ॥

जब बीस-भुजावाली माता सिंहपर सवारी करती है तो पृथ्वीको धारण करनेवाले वराहकी डाढ़ें तडक जाती है, कच्छपकी पीठ कड़क उठती है और शेषनाग तथा पृथ्वी कंपायमान होकर डगमगाने लगते है।

राजस्थानी जीवनका आरंभ किस प्रकार होता है वह भी देखिये—

इळा न देणी आपणी, रण-खेता भिड जाय।
पूत सिखावै पालणे मरण-वडाई माय॥

माता नवजात शिशुको झूलेमे झुला रही है। मरनेकी महिमाकी शिक्षा वह तभीसे देना आरभ कर देती है। माता लोरी देती हुई कहती है कि पुत्र, मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी भूमिको दूसरोंके हाथमे न जाने देना। जो वालक लोरियोंमे ही इस प्रकार 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' और अधिकार-रक्षाका पाठ पढते थे उन्होंने अपने अलौकिक वीरत्व और स्वातंत्र्य-प्रेमसे ससारको चकित कर दिया तो इसमे आश्चर्यकी क्या बात? जातिके गौरवकी रक्षा वीर माताओंके हाथमे होती है इस तथ्यसे कौन इनकार कर सकता है?

राजस्थानी जीवन पुरुषके बाह्य सौंदर्यको कोई महत्त्व नहीं देता। पुरुषका सच्चा सौंदर्य उसका वीर और निर्भीक हृदय है। राजस्थानी जीवन इसीकी कामना करता है—

भूडण तो भूडा जणै, हिरणी जणै सुगट्ठ।
पान खड़क्कै उग चलै, थागड चालै थट्ठ॥

शूकरीके बच्चे कुरूप होते हैं और हिरणी सुन्दर बच्चोंको जन्म देती है। पर यह सौंदर्य किस कामका जब उनका जीवन ही सदा संशयमे रहता है। अेक साधारण पत्तेकी आवाज होते ही बेचारे भयके मारे कांप उठते हैं और जीव लेकर ही भागते बनता है। उधर शूकरीके बच्चोंको देखिये, कैसी निर्भीकतासे शानके साथ चलते हैं।

अेक बालक था। बहुत भोलाभाला और सीधासादा। उसकी चाची तो उसे बिलकुल बोदा और निकम्मा ही समझती थी। पर युद्धका अवसर आया। उसकी चाचीने देखा कि आज उसका वही जेठूत (जेठका लडका) सबसे बढ़-बढकर शत्रुके हाथियोंपर आक्रमण कर रहा है। जिनके सामने जाने तकका साहस दूसरोंको नहीं होता था उन्हे वह काट-काटकर फेंक रहा है—

दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत ।
काकी कुजर काटता जाणवियो जेठूत ॥

वीरमाताके दूधका असर भला कहाँ जा सकता है ?

जब हम अत्यन्त कष्टकी स्थितिमें होते हैं तो प्रायः माताकी याद आती है। हाय माँ, अरी मावडी—आदि शब्द हठात् मुँहसे निकल पड़ते हैं। वीर राजस्थानी माता अैसी स्थितिमे भी अैसे शब्दोंका मुंहसे निकलना सहन नहीं कर सकती क्योंकि ये शब्द हृदयकी दुर्बलता प्रकट करते हैं। राणकदेका अबोध पुत्र उसकी आँखोंके सामने मारा जाता है। असहाय बालक माँ-माँ चिल्लाता है पर माता कहती है—

माणेरा, मत रोय, मत कर रत्ती अखिया ।
कुळमै लागै खोय, मरता मा न सँभारजे ॥

अरे माणेरा, मत रो, आँखोंको लाल मत कर, मरते समय माँको कभी याद न करना क्योंकि इससे कुलको कलंक लगता है। मरना है तो हँसते-हँसते मरो, दुर्बलता दिखाकर मरणको कटु मत बनाओ।

अेक वीरबाला अपने असहाय और कर्त्तव्य-विमूढ देवरको कैसे ओजस्वी और प्रभावशाली शब्दोंमे कर्त्तव्य-मार्ग दिखाती है—

राहव, उठ्ठ कमाणगर, मूछ मरोड, म रोय।
मरदा मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय ।।

देवर राहव, रोते क्या हो ? उठो, मोछोंपर ताव दो । मर्दके लिअे मरना हक है, रोना नहीं । रोना तो निराधार अबलाओंका काम है ।

इन माताओंके वीर-पुत्रोंका भी कुछ वर्णन सुन लीजिये । बारह बरसका बादळ अलाउद्दीनसे लोहा लेनेको चला । माता कहती है—अरे बादळ, तू यह क्या कर रहा है ? तू तो अभी बालक है । बालक शब्द सुनते ही बादळ क्षुब्ध हो उठता है । इस शब्दको वह अपने लिअे अपमानजनक समझता है । कहता है—

माता, बाळक क्यो कहो ?, रोइ न माग्यौ गास ।
जे खग मारूँ साह-सिर तो कहियौ सावास ।।

माता, मुझे बालक क्यों कहती है ? क्या मैंने कभी रोकर तुझसे खानेको भी मांगा है ? अवस्थामे छोटा होनेसे ही कोई छोटा नहीं हो जाता—

सिंघ सिंचाणो सापुरुष, अै लहुरा न कहाइ ।
वडो जिनावर मारिकै छिनमे लेयँ उठाइ ।।

सिंह, बाज और वीरपुरुष ये कभी छोटे—बालक—नहीं होते । बड़े-से-बड़े जानवरको मार करके क्षण भरमें उसे उठा लेनेकी सामर्थ्य रखते है । मुझे तो तुम तभी कहना जब मै बादशाहके सिरपर खड्ग मारूं ।

इन राजस्थानी वीर-बालकोंका प्रतिदिन पढ़नेका मंत्र होता था—"बारह बरसां बापरो लहै बैर लंकाळ" ।

वीरमाता और वीरपुत्रको हमने देखा अब वीरपत्नीको देखिये । वीर-माताकी कोखसे जनमी हुई वीर-बालिका उसी वीरता-मय आवरणमे पलती है । उसका वीरत्व, उसका त्याग, उसके भाई के वीरत्व और त्यागसे किसी कदर कम नहीं । विवाहके समय उसका दूल्हा आता है । विवाहमंडपमें भी वह स्वामीके वीरत्वमय रूपको ही देखती है ।

ढोल सुणता मगळी मूछा भूह चढत ।
चँवरीमे पीछाणियो कँवरी मरणो कत ।।

ग्रीव नमाडे देखणो, करणो सत्रु सराह ।
परणती घण परखियो ओछी ऊमर नाह ।।
मै परणती परखियो वागा माहि सनाह ।
लायो साथ लिखायकर ओछी ऊमर नाह ।।

पतिकी यह 'ओछी ऊमर' उसके लिअे दु.खका कारण होनेके स्थान-पर गौरवका विषय होती है क्योंकि वह यह भी देख लेती है कि—

मै परणती परखियो तोरणरी तणियाह ।
धर-धण लावी पहरता पहरै घण जणियाह ।।

स्वामीको युद्धके वीरवेशसे सजाना यह वीरनारी अपना कर्त्तव्य, अपना अधिकार, समझती है । प्राणप्रिय पतिको यमराजके सामने भेजते हुअे वह कभी विचलित नहीं होती । वह तो सोल्लास उसे प्रोत्साहित करती है—

पाछा फिर मत झाकज्यो, पग मत दीज्यो टार ।
कट भल जाज्यो खेत मे, पर मत आज्यो हार ।।
भाग्ये मत तू, कथडा, तो भाग्ये मुझ खोड ।
मोरी सग-सहेलिया ताळी दे मुख मोड ।।

प्राणोपमा प्रियतमाके मधुर अनुरोधका पालन करनेको किसका जी न करेगा ? उसकी अवहेलना करनेका साहस किसको हो सकता है ? कौन पति सहन कर सकता है कि उसकी प्राणवल्लभा अपनी सहेलियोंमे उसके कारण उपहासका पात्र बने ? अैसी वीरपत्नियोंका पति यदि हँसते-हसते आत्मोसर्ग करदे तो इसमे क्या आश्चर्य ? पर क्या इससे यह सूचित होता है कि उनके हृदयमें कोमल भाव नामको भी नहीं है ? कठोर वातावरणमें पलते-पलते क्या उनका जीवन भी इतना कठोर बन गया कि शुष्क कर्तव्य-परायणताके सिवा उसमें कुछ रही नहीं गया ? नहीं, उन हृदयोंमें कोमल भावोंकी धारा भी उतने ही प्रबल वेगसे प्रवाहमान है जितनी वे ऊपरसे नीरस प्रतीत होती हैं । 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' का वे ज्वलंत उदाहरण थीं । इसीलिअे तो धधकती हुई चिताओंपर हँसती-हँसती अपने पतियोंके (मृत शरीरोंके) साथ चढ़ जाती थीं ।

अेक वीरनारी युद्धमें जाते हुअे पतिसे कहती है—

> नाथ, लखीजै उभय कुळ, नाह फिरती छाह।
> गुडिया गिळसी गीदवो, मिळै न धणरी बाह॥

हे पति, अपने और मेरे, दोनों, कुलोंकी ओर देखना, सांसारिक सुख तो छायाके समान आता-जाता रहता है, उसके लिअे युद्धसे विमुख होकर दोनों कुलोंको कलंकित न करना। यदि अैसा किया तो तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण होनेकी नहीं। लौटनेपर अपना सिर तकियेपर रखकर ही सोना, तुम्हारी प्रियतमाकी बाँह सिर रखनेको नहीं मिलेगी यह निश्चित समझ रखना।

यह वीरपत्नी जिस समय सुन लेती है कि उसका पति युद्धसे विमुख हुआ उसी समयसे अपनेको विधवा समझ लेती है। कायरकी अंकशायिनी होनेकी अपेक्षा चिताकी अंकशायिनी होना वह अधिक पसन्द करती है।

उसे विश्वास है कि जब तक उसका पति जीवित है तब तक उसकी सेना कभी भाग नहीं सकती। युद्धमे देवरको अकेला देखकर उसके लिअे आशंकित होनेवाली अपनी जेठानीको वह वीर नारी किस निश्चिन्तता के साथ उत्तर देती है—

> भाभी देवर अेकलो, सोचीजै न लगार।
> मूझ भरोसो नाहरो, फोजा ढाहणहार॥

हे भाभी, तुम्हारा देवर अकेला है यह जानकर सोच न करो। मुझे अपने पतिका पूरा भरोसा है। उस अकेलेको तुम कम न समझना। वह अकेला ही समस्त सेनाको विध्वस्त करनेके लिअे पर्याप्त है।

पति युद्धमें मारा जाता है। पतिको अपने हाथोंसे यमराजको सौंपनेवाली वीर नारी उसे अकेला कैसे सौंप सकती है? उसके बिना, उसके वियोगमे, अकेली वह कैसे जियेगी? वह अपनेको भी साथ ही सौंपती है। न पतिको मृत्यु-मुखमे भेजते समय वह अधीर होती है, न स्वयं उसका सहगमन करते। पति ढोल बजाते हुअे उसे लेने आया था और ढोल बजाती हुई ही वह उसके साथ जाती है।

चाहती है—

पथी, अेक सँदेसडो वावलने कहियाह ।
जाया थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥

हे पथिक, मेरे पिताको अेक संदेश कह देना। जन्मके समय तो मेरे लिअे थाली भी नहीं बजाई गई पर आज मेरे लिअे बड़े-बड़े नगाड़े बज रहे है। आज मैंने तुम्हारे नामको भी समुज्ज्वल बना दिया है।

कन्याको हीन समझकर उसके जन्म-समय थाली न बजानेकी प्रथा पर कितना तीव्र कटाक्ष है!

अैसे गौरवशाली राजस्थानका आज जो महान् अधःपात हुआ है वह किसके हृदयको दुखी नहीं कर देगा? अपनी भीषण ललकारसे ससारको कंपायमान कर देनेवाली वह वीर राजपूत जाति आज घोर विलास और विनाशकारी शराब तथा अफीमके नशेमे सुधबुध खोकर कुत्सित जीवन-यापन कर रही है और मुसकुराता हुआ अतीत आज व्यंगकी भयानक हँसी हंस रहा है। पर राजपूत-बालाका वह तेज अब भी किसी-न-किसी अंशमें बचा हुआ है। मातृभूमिकी दुर्दशा देखकर अेक आधुनिक राजपूत-रमणी अपने कायर पतिको फटकारती है—

पराधीन भारत हुयो प्यालारी मनवार।
मात्रभूम परतत्र हो, वारवार धिरकार॥
दुसमण देसा लूटकर ले ज्यावै परदेस।
राजन, चुडल्या पहर लो, धरो जनानो भेस॥
विस खावो, कै सरण लो सरवरियेरी थाह।
कै कठा विच घाल लो घाघरियारी घाह॥

धिक्कार है तुम्हे, जो प्यालोंके दौरदौरमे मातृभूमिको पराधीन बना दिया। विदेशी प्रतिदिन देशको लूटकर उसका धन सात समुद्र पार ले जा रहे

हैं पर तुम्हारे कानोंपर जूँ भी नहीं रेंगती। शर्म तो नही आती। चुल्लू भर पानीमे डूब क्यों नहीं मरते? अरे, औरत क्यों न हुअे? अब भी हाथोंमे चूड़ियाँ डाल लो और कमरमे घघरी (लहंगा) पहन लो—

> यो सुवाग खारो लगै, जद कायर भरतार।
> रडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार॥

इस सुहागसे तो वैधव्य कितना ही अच्छा। अरे, तुम तो सिंह पद धारण करनेवाले हो। तीतर, लवा, बटेर, खरगोश, सुअरका शिकार करके फूल जाते हो। क्या यही तुम्हारी राजपूती है—

> तीतर लवा वटेर अर सुस्सा सूर शिकार।
> इणहा रजपूती नही, नाम सिंघ रखणार॥

अब भी कुछ हया है तो—

> वस्त्र कसूमल पहर लो कसो कमर तलवार।
> वरछी ओर कटार ले हुवो तुरँग असवार॥
> पाछा फिर मत झाकज्यो पग मत दीज्यो टार।
> कट भल जाज्यो खेतमे पर मत आज्यो हार॥

भीषण पर्देकी कुप्रथासे असहाय बनी हुई इस क्षत्रियबालाको इतनेसे ही संतोष नहीं होता। वह फिर कहती है—

> सीख राजरी होय तो हूँ भी चालू साथ।
> दुसमण भी फिर देखले म्हारा दो-दो हाथ॥

धन्य है तू राजस्थानकी वीर नारी। जो देश अैसी बालाओंको जन्म दे सकता है उसको अपने घोर पतन-कालमे भी निराश होनेकी आवश्यकता नहीं।

राजस्थानका यह साहित्य जीवनसे अलग नहीं किंतु उसके साथ मिला हुआ है। राजस्थानके ये वीर साहित्यकार कलमके ही धनी नहीं होते थे, तलवारके साथ भी खेलते थे। उनके इस सप्राण साहित्यका

चमत्कार इतिहास अनेक बार देख चुका है। अेक उदाहरण देनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। महाराणा प्रताप विपत्तिसे विवश हो अकबरकी अधोनता स्वीकार करनेको तय्यार हो गये। महाराणा राजपूत जातिकी आनकी अंतिम आशा थे। वह टूटना चाहती थी। उस समय अेक वीर कविहृदय, जो परतंत्र होकर भी स्वतंत्रताका उपासक था, पराधीन होनेपर भी जिसका अंतर पराधीन नही हुआ था, इस अंतिम आशातंतुको टूटते देख क्षुब्ध हो गया। बचानेका उसने अेक अंतिम प्रयत्न किया और परिणामसे पाठक अपरिचित नहीं।

राजपूतोंकी उस अमर आनका रक्षक कौन था ? महाराणा प्रताप या महाकवि पृथ्वीराज ?

राजस्थानकी भूमि विविधरूपमयी है। पश्चिमी ओर उत्तरी राजस्थानमें मरुभूमि अपने नित्य नये निकेतन बनानेवाले टीबों, सैकडों हाथ गहरे कुँओं, ग्रीष्मकालीन प्रचंड आँधियों, शिशिरकालीन भयंकर शीत, तथा शमी, वेर, करोल ओर फोगकी झाड़ियों रूप बिन्दुओंसे यत्र-तत्र विमंडित मीलों फैली हुई अनन्त वालुका-राशिके साथ भयंकर अट्टहास करती रहती है तो पूर्वी राजस्थानकी भूमि हरेभरे पेड पौधोंसे, लहलहाते हुअे खेतोंसे, चंद्रिकाके साथ खेलते हुअे जलाशयोंसे दर्शकको मुग्धकर अपने पास आनेके लिअे आमंत्रित करती है। दक्षिणी राजस्थान अपने अगम्य और अविच्छिन्न जंगलोंसे छाई हुई विकट पर्वतमालाओं अेवं उनकी अनेक भूतकालीन वीर-स्मृतियोंसे हृदयमे अेक मधुर भयका संचार-सा करता है। अब इस राजस्थानभूमिका थोडा-सा वणन देखिये।

राजस्थानकी वर्णन-शैलीमे निसर्ग ओर मानव-जीवन दोनोंका मनोरम विवेचन मिलेगा। मारवाडका वर्णन करते हुअे कविने वहांकी प्रकृति तथा मानव-सौंदर्यका सुन्दर चित्र अंकित किया है—

जळ ऊँडा, थळ ऊजळा, नारी नवले वेस ।
पुरख पटाधर नीपजै, अइ हो मुरधर देस ॥
मारू-देस उपन्निया, सर ज्यू पाधरियाह ।
कडवा कदे न वोलही, मीठा वोलणियाह ॥
मारू-देस उपन्निया, त्याका दत सुसेत ।
कूझ-बचा गोरगिया, खजर जेहा नेत ॥
देस सुरगो, जळ सजळ, न दिया दोस थळांह ।
घर-घर चद-वदन्निया नीर चढै कमळाह ॥
लाटा-काठा लीजिये, गेहूँ तीखा खाण ।
भड वाका, तीखो तुरी, अइ हो घर जोधाण ॥

मारवाडके प्राकृतिक दृश्य विशेप अकित करने योग्य नहीं है। जो प्राकृतिक विशेषताअे है उनकी तरफ कविने इंगित किया ही है—

जळ ऊँडा, थळ ऊजळा
देस सुरगो जळ सजळ
लाटा काठा लीजिये

मारवाडके पुरुप जैसे शूर होते है कविने वैसाही उनका वीरोचित वर्णन किया है—

पुरख पटाधर नीपजै
भड वाका

उनकी वोलनेकी शिष्टतापर भी पूरा ध्यान दिया गया है। अेक तो मारवाडी वोली ही मधुर है फिर स्वरमे माधुर्य। कवि मुग्ध हुअे विना रही नहीं सका।

कडवा कदे न वोलही, मीठा वोलणियाह ।

ललनाओंका मारवाडी-सौन्दर्य प्रसिद्ध है—

नारी नवले वेस
मारू देस उपन्निया त्याका दस सुसेत
कूझ वचा गोरगिया, खजर जेहा नेत
घर-घर चद-वदन्निया

कवि इस सौन्दर्यपर मोहित होकर कहता है—

मारू-कामण धर दखण जे हर देय तो होय ।

ढूँढाड़के हरेभरे भू-भागका कविने कितना रोचक वर्णन किया है—

वागा वागा वावड्या, फुलवादा चहुँ फेर ।
कोयल करै टहूकडा, अइ हो धर आवेर ।
आम ज उमदा नीपजै, गेहूँ अर गुड वाड ।

और भी ढूँढाडमें जानने योग्य क्या बात है—

ऊँचा परवत, सेर वन, कारीगर तरवार ।
इतरा वधका नीपजे, रग देस ढूढाड ।
नर नाहर तो नीपजै, सेखा-धर ढूढाड ॥

कवियोंने वातायनसे निकले हुअे चन्द्राननका बड़े चावसे वर्णन किया है—

उदियापुररी कामणी गोखा काढै गात ।
मन तो देवारा डिगै, मिनखा कितीक वात ॥

वातायनसे निकले हुअे शरीर-सौंदर्यपर मनुष्य तो दूर रहे, देवता भी मुग्ध हो जाते है। कालिदासने भी सुनन्दासे कहलाया है—

प्रासाद-वातायन-सश्रिताना नेत्रोत्सव पुष्पपुरागनानाम् ।

पार्वत्य-सौदर्य-वर्णन भी देखिये—

टूके-टूके केतकी, झिरणे-झिरणे जाय ।
अरबुदकी छबि देखता और न सालै दाय ॥
वनसपती पाखर वणी, वणिया टूक विहद्द ।
पटा विछूटै नीझरण, आयो मद अरबुद्द ॥
गह घूमी, लूमी घटा, वोजा सहिरा वद्द ।
वादल माय विराजियो आजूणो अरबुद्द ॥
चपा माणो, गिर चढो, आवा भखो अवल्ल ।
अरबुदसू अलगा रहै, जिणरो कोण हवल्ल ॥

श्रीधर पाठकने हिमालय-वर्णन बडा सुदर किया है पर उसमें उक्ति-वैचित्र्यको जितना महत्व दिया है उतना निसर्ग-सौंदर्यको नहीं—

सोहन त्रिगुन, त्रिदेव, त्रिजग प्रतिभास निरन्तर ।
विलसत सो तिहुँ काल त्रिविध सुठि रेख अनूपम ॥

इससे आगे पाठकजी भूगोल पढाने लग जाते हैं—

हरिद्वार केदार वदरिकाश्रमकी सोभा ।
× × ×
पुनि देखिय कसमीर देस नैपाल तराई ।
सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई ॥

दूहाकारके पास आबू-सौंदर्यपर मुग्ध होनेपर उसकी सीमा बतानेके लिअे अवकाश नहीं रहा, वह तो आनन्द-विभोर होकर बोल उठा—

जमी ओर असमान विच आबू तीजो लोक ।

प्रेम-कहाणी कहत हूँ, सुणो सखी री आय ।
पिव ढूढणको हम गई, आई आप हिराय ॥

कठोर कर्त्तव्य-पथका अनुयायी राजस्थान हृदयके कोमल भावोंसे शून्य नहीं है। उसके हृदयमे सुकमार-भाव-धारा भी उतने ही वेगसे प्रवहमान है जितना कि वह ऊपरसे कठोर दिखाई देता है। राजस्थानी साहित्यमे प्रेम संबंधी उक्तियाँ भावुकता, मर्म स्पर्शिता और मनोहारितामे अन्य किसी भाषाके साहित्यसे उतरती हुई नहीं। प्रेमतत्वका निरूपण देखिये—

प्रणयका सच्चा स्वरूप है ममत्त्वका त्याग। उस संसारमें या तो 'मैं' रह सकता है या 'तू'। वहाँ द्वैतवादका निर्वाह नहीं हो सकता है, अद्वैताकार वनना पडता है—

दोय-दोय गयद न वधसी अेकै कवू ठाण ।

साधक साधनाके लिअे 'तत्त्वमसि' या 'सोऽहम्' में से अेक मार्ग अपना सकता है। कबीरने भी अपनी प्रणय-कहानी इसी तरह कही है—

लाली मेरे लालकी जित देखौ तित लाल।
लाली देखन मै गई, मैं भी हो गई लाल॥

प्रेमी-अन्वेषण ही यही है कि प्रेमोमय हो जाना।

प्रणय साधना ही ईश्वर-साधना है। प्रणय और परमेश्वरमे कुछ भी अन्तर नहीं—परमेश्वरका दूसरा नाम ही प्रणय है—Love is God and God is Love. इसी साधन-सफलताको ही मोक्ष या कैवल्य कहते है, जो सच्चे प्रेमीको सदेह ही प्राप्त हो जाती है। उस अवस्थामे पहुचनेपर हृदय और जिह्वाका सम्बन्ध रही नही जाता। वहाँ प्रणयका "मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्" सम्मोहक स्वरूप मिलता है, जिसमें तल्लीन होकर मनुष्य "अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्" का दर्शन करने पर "मूकास्वादनवत्" उस आनन्दका वर्णन नहीं कर सकता और उसका अन्तर्प्रदेश ही सृष्टि बन जाता है—

जैसे छहिया फूल की माहोमाह समाय

फिर उस मानससे अेक अपूर्व संगीत फूटता है जिसमें ब्रह्माण्ड लय हो जाता है—

Music in the valley,
Music in the hill,
Music in the woodland,
Music in the rill,
Music in the mountain,
Music in the air,
Music in the true breast,
Music everywhere,

इस स्वर्ण-संगीतसे अेक नव-आभा फूटती है जहाँ "बारह मास विलास" और "तेजपंज परगास" अनन्त कालतक उद्भासित होते रहते हैं।

यह पावन-लोक पुस्तकावलोकनसे नहीं मिल सकता—

पोथा तो थोथा भया, पडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेमका, पढै स पडित होय ॥

प्रणय-स्वरूप जितना आनन्ददायक है उतना ही गहन है। प्रणय करनेका बहाना बहुत-से धूर्तजन भी करते है पर उनसे "आदि-अंत निवहै नहीं"। अनन्य उपासिका गोपियाँ भी अेक बार घबराकर कह उठी थीं—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

प्रणय-संसारमे प्रवंचनके लिअे स्थान नहीं। यहाँ मिट जानेपर भी शायद ही सफलता मिले। फिर प्रवंचकोंका यहाँ कैसे गुजारा हो सकता है? उनके लिअे सूचना लगी रहती है—

Go, go, you nothing love a Lover ! No,
The semblence you, and shadow of a Lover

क्षुद्रोंका प्रेम प्रारंभमे ही मादक-सा होता है—

डूगर केरा वाहळा, ओछा-केरा नेह ।
वहता वहै उँतावळा, छिटक दिखावै छेह ॥

आत्म-बलिदान करना सरल है पर प्रणय-तपस्यामे सफल तपस्वी होना कठिन है—

खडग-धार पर काय, चालै तो चलवो सहल ।
मुसकल जगरे माय नेह निभावण, नागजी ॥

सर्वस्व लुटाकर भी वह विभूति नहीं मिलती, साधक साधनामें जीवन मिटाकर भी वह ज्योति नहीं लख सकता, उसका मूल्य सिरमात्र ही होगा? प्रणय-मार्ग बड़ा विकट है—प्रणय-स्वरूप भगवान कहते हैं—

यततामपि, सिद्धाना, कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वत ।

अतः कहना होगा—

जाणै सोई जाणसी प्रीत-रीतको भेद ।

प्रणय-मार्ग सर्वस्वत्याग है। सच्चा प्रेमी परवाह नहीं करेगा कि दूसरी तरफ भी चाह है या नहीं। यदि तुम प्रेमके बदले प्रेम चाहते हो तो वह

प्रेम नहीं स्वार्थ है। आदर्श-प्रेमी पतंग मर मिटता है पर कभी परवाह नही करता कि दीपक चाहता है या नही—

हाय दई, कैसी भई, अणचाहतको सग।
दीपकके भावै नही, जळ-जळ मरै पतग।

पतंगने जलने-जलते दीपकका स्वरूप पहचान ही लिया—

पहले तो दीपक जळे, पीछे जळै पतग।

प्रेमीका सत्य-स्वरूप जानने पर यह कहनेकी आवश्यता न होगी-—

उन्हे भी जोशे उल्फत हो तो लुत्फ उट्ठे मुहब्बत का।
हमी दिन रात अगर तडपे तो फिर इसमे मजा क्या है ?

यह प्रेम नही माया है। प्रेमाग्निमें तपने पर ही कोई सच्चा प्रेमी हो सकता है। बिना तपाये स्वर्ण और प्रेमी दोनों खरे नही हो सकते। यहाँ अेक बार मिट जाना होगा फिर प्रणय-सोम-रससे नव-जीवन मिलेगा। प्रियतमके रंगमे रॅग जानेके लिअे अपना रंग छोड़ना होगा।

आत्मा और परमात्माका अनन्त मिलन ही रहस्यवाद है तथा मिलन-मार्गकी वेदना हृदयवाद है। हृदयमे ममत्वका भार सौंपनेकी अेक आकाक्षा है। जब वह आकाक्षा किंचित् परिवर्द्धित होती है तो अपना सर्वस्व समर्पण करनेको व्याकुल हो उठती है और वह मिलन-मार्ग खोजने लगती है अेवं अनन्त प्रियवस्तुको प्रेमिका रूपमें या प्रियतम रूपमें पुकार उठती है—पिव-पिव लागी प्यास।

श्रीयुत प्रसाद भी अकुलाते-से कहते हैं--आ मिलो, प्राणधन।

श्रीनिरालाने प्रेमिकाके दृग खुलवाने आरंभ किये और श्रीयुत पन्तने तुतलाना—

प्रिय मुद्रित दृग खोलो।—निराला

वैसे ही तेरा ससार
अति अपार यह पारावार
नही खोलता है मा!
अपने अद्भुत रत्नोका भण्डार।—पन्त

फिर प्रेमीके लिअे प्रियतम ही सर्वस्व वन जाता है। वह उसके बिना रही नहीं सकता। वह उस जीवनको विरहाग्निमे तपाना प्रारंभ करता है। उसके लिअे संसार शून्य हो जाता है—नव कोटी नगरी वसै, म्हांरे भांव उजाड। विरह-तपस्याका प्रेमी जब सफल तपस्वी हो जाता है तब प्रणयके दर्शन होते है। बीच-बीचमे प्रणय परीक्षा लेता है कि इतने कष्ट-साध्य कठिन मार्ग पर क्यों चलते हो, पथिक ? याद रखना Love is a blind guide. पर प्रेमी क्या उत्तर देता है कि तमसाकार इस तुम्हारे काले रंग पर दूसरा रंग चढ ही नहीं सकता—

जैसो काळो रग।
मेलो हुवै न मॅद पडै, धोयो धुपै न अग॥

तुम्हारा प्रेमी दूसरी तरफ कैसे देख ले—

'सूरदास' प्रभु कारी कामरी चढत न दूजो रग।

इसीलिअे पन्तने भी 'माँ' से काला दुकूल माँगना प्रारंभ किया—

मा! काले रँगका दुकूल नव
मुझको वनवा दो सुन्दर

क्योंकि यह काला रंग, जो जीवन विशुद्ध करनेका साधन है,—

ज्यो ज्यो डूवे स्याम रँग, त्यो त्यो उज्ज्वल होय।

इस परीक्षामे उत्तीर्ण होने पर साधक अन्तर्जगतमे देखते ही मुसकाने लगता है—

जव नयणासू वीछड्या, तब उर माझ पइट्ठ।

अपूर्णताका स्थान पूर्णताने ले लिया। जीवन अलौकिकानन्दसे मत्त हो उठा—

हूँ वळिहारी सज्जणा, सज्जण मो वळिहार।

फिर सन्देश भेजनेका स्मरण आते ही प्रेमी मुसकाता हुआ कहता है—

पाती तहा पठाइये, जो साजन परदेस।
निज मनमे साजन वसै, ताकू का सदेस॥

अपने प्रियतममें अेकाकार हो जाने पर आदर्श प्रेमी कवीर कहते है—

हम सब माहि सकल हम माही, हममे और दूसरा नाही,
तीन लोकमे हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ।
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नही रेखा,
हमहीं आप कबीरा कहावा, हमही अपना आप लखावा ।

सूरकी गोपियाँ भी विरहाग्निमे तपकर कहती हैं—

पूरनता इन नयनन पूरी ।

उनके मानसमे भी वह ज्योति जग गई—

चन्द्रकोटि प्रकास मुख, अवतस कोटिक भान ।

श्रीप्रसाद भी आनन्द-विह्वल हो उठते हैं—

तुम्हे अर्पण औ' वस्तु त्वदीय,

श्रीपन्त भी प्राणोंको लययोग-साधनाके साधक बना चुके हैं—

बन्धु ! गीतोके पख पसार
प्राण मेरे स्वरमे लयमान,
हो गये तुमसे अेकाकार
प्राणमे तुम औ' तुममे प्राण ।

श्रीमती महादेवी वर्मा भी 'मैं' और 'तू' को अेकाकार करती हुई कहती हैं—

तुम अनन्त जलराशि उर्मि मै चचल-सी अदात,
+ + +
मै तुमसे हूँ अेक, अेक हैं जेसे रश्मि प्रकाश ।

प्रेमी-जन सासारिकतासे ऊपर अपना अेक नव-लोक बना लिया करते है । वहाँ, उस आनन्द-लोकमे प्रियतमके साथ जानेका इरादा कर लेते हैं या विरहावस्थामें प्रियतमका वास ही उस लोकमें होता है । पवित्र प्रणयके लिअे विकारमय संसारसे ऊपर ही कोई आलोकित संसार चाहिअे—

साझ पडी दिन आथव्यो, चकवी दीनी रोय ।
चल, चकवा, वा देशमे, साझ कदे नहि होय ॥

जहाँ हम अनन्तकालके लिअे मिल जायँ और सतत प्रणयालोक आलोकित होता रहे । कबीरके शब्दोंमें—

· ·· ···जहँ वारह मास विलास।
प्रेम झरै विगसै कमल, तेज-पुज-परगास ॥

श्रीनिरालाने भी उसी संसारमें जानेका इरादा कर लिया है—

जहा नयनोसे नयन मिले,
ज्योतिके रूप सहस्र खिले,
सदा ही वहती नव-रस-धार—
वही जाना, इस जगके पार ।

भावुक कवि श्रीयुत भरतप्रसाद व्यासने भी उस संसारका कितना सम्मोहक चित्र चित्रित किया है—

चलो चले उस मधुममय जगमे प्रियतमकी हो छाह जहा ।
अलि-बाला स्वच्छन्द डोलती प्रिय-गल डाले बाह जहा ॥
पुतलीमे पुतलीका नर्तन, नयन नयनमे मिले जहा ।
हृदय-वीणके मृदुल तारपर प्रणयीका हो गान जहा ॥
× × × ×
प्रेयमिका उर वन जाता है प्रियतमका उर-हार जहा ॥

राजस्थानी साहित्यमें नायिकाका आदर्श कैसा मनोहर और पवित्र-भाव-पूर्ण है—

गति गगा, मति सरसती , सीता सीळ-सुभाय

चालमें (शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में) पवित्र गंगाके समान बुद्धिमें वीणापाणि भारतीके समान और शील तथा स्वभावमें सती-शिरोमणि सीताके समान।

स्त्री-सौंदर्यका राजस्थानी आदर्श नीचे लिखे दूहोंमें मिलेगा—

मारू-देस उपन्निया सर ज्यू पध्धरियाह
कडवा कदे न बोलही मीठी बोलणियाह
मारू-देस उपन्निया त्याका दत सुसेत
कूझ-बचा गोरगिया, खजर जेहा नेत

उर चवडी, कड पातळी, झीणी पासळियाह
थळ भूरा, वन झखरा, नही स चापो जाय
गुणे सुगधी मारवी महकी सब वणराय

मारवाडकी स्त्रियाँ तीरकी तरह सीधी (ऊंचे कदकी) होती है, सदा मीठी बोलनेवाली होती है, उनके दाँत मोतीकी तरह शुभ्र होते है, शरीर क्रौंच-शावकके समान सुकुमार और गौरवर्ण होता है, नेत्र खंजनकी तरह विशाल और चंचल होते है, छाती चौड़ी होती है, कमर पतली होती है और पॅसुलियाँ सुकुमार होती है। उनकी सौंदर्य-सुरभिसे शुष्क मरुभूमि भी सोल्लास सुरभित हो उठती है।

इस काव्य-वाटिकामें थोडा और विहार कीजिये। यहाँ आपको प्रणय-का सत्य स्वरूप दृष्टिगोचर होगा—नायिकाओंका नग्न रूप देखनेको नहीं मिलेगा। जीवनमय वह काव्यधारा मिलेगी कि जीवन-ज्योति जागृत हो उठेगी।

प्रियतमके प्रेममें मग्न अेक नायिका कहती है—

साजन-साजन हू करू, साजन जीव-जडी।
साजन फूल गुलाबरो निरखू घडी-घडी॥

वह तो समस्त लोकको साजन-मय ही देखना चाहती है—

साजन-साजन हूँ करूँ साजन जीव-जडी
सजन लिखा लू चूडले वाचू घडी-घडी।
साजन, तुम मुख जोय जग सारो ही जोइयो।
अैसो मिल्यो न कोय ज्या देख्या तुम वीसरूँ॥

जब तुम्हारा सौन्दर्य मानसमें विकसित है तब दूसरी वस्तुकी तरफ हृदय कैसे आकर्पित हो सकता है। यहाँ प्रेमी परमेश्वरके रूपमे देखा गया है। प्रेमीको जब प्रणयका मोहक सत्य-स्वरूप मिल सकता है तब सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तन बिनु लिखा चितेरे—इस आराधनाकी कोई आवश्यकता नहीं होती। कविवर टेनिसनने कहा है—

Where God in man is one with man in God.

प्रेमीकी कसौटी

साजन अैसा कीजिये, जामे लखण बतीस ।
भीड पडया विरचै नही, सीस करै बगसीस ॥
साजन अैसा कीजिये, जैसा रेसम रग ।
सिर सूळी धड कागरे, तोइ न छूटै सग ॥

यहाँ "सीस उतारैं भुई धरै" इतनेसे ही प्रणय-संसारमें पैठनेकी इजाजत नहीं मिलती लेकिन "सिर सूळी धड काँगरे" रहनेपर भी प्रियतमका संग न छोडनेपर प्रवेश-आज्ञा मिलती है। जीवनको अैसा मिटाना होगा कि न जीवनका अस्तित्व रहे और न मृत्युका। इस भावनाका आत्मसमर्पण ही अमरत्व है। फिर सत्यमार्ग जीवनके सामने चमक उठेगा—

अमरता है जीवनका ह्रास,
मृत्यु जीवनका चरम-विकास ॥

प्रियतमके मिलनमें साँसारिक बाधाअे बाधक नहीं हो सकती—

जलहर वसै कमोदणी, चदो वसै अकास ।
जो ज्याहीके मन वसै, सो त्याहीके पास ॥

जिसके हृदयासन पर जिसने स्थान पा लिया है, वह फिर अलग कैसे हो सकता है। कबीरने भी कहा है—

कबीर गुर वसै बनारसी, सिष समदा तीर ।

प्रेमिका प्रियतमसे सदा मिली रहना चाहती है। उसे किसी भी ॠतु-में विरह पसन्द नहीं। इसीलिअे वह तीनों ही ॠतुओंमे दोष दिखाकर उनको चलनेके अयोग्य बतलाती है—

सीयाळे तो सी पडै, ऊनाळे लू बाय ।
वरसाले भुय चीकणी, चालण रुत्त न काय ॥

प्रियतमके चलनेके समय उसे रोकनेके लिअे पागडेसे झूमती हुई नायिकाका चित्र कितना स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है—

सायधण हल्लण साभळै ऊभी आगण छेह ।
काजळ जळ भेळा करी नाखीनाख भरेह ॥

ढोलो हल्लाणो करै धण हल्लवा न देय ।
झबझब झूबै पागडे डवडव नयण भरेय ॥

विरहाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंके दो-चार मनोहर चित्र और लीजिये—

सजण सिधाया, हे सखी, ऊभी आगण दीच ।
नैणा चाल्या चोसरा, काजळ माच्यो कीच ॥

बिहारी कहते है—नाहक मन बंध जाय। पर केवल मनही बंधनमें नहीं आता, नयनोंके लिअे भी घोर संकट आ जाता है—जिव्हा वंद हो जाती है।

वैणा हुयो न दोलणो, नैणा चाली धार ।
सजण सिधाया, हे सखी, पाछा फिर मत झाख ।
जोय-जोय ऊठी जावता, रोय-रोय फूटी आख ॥
सजन सिधाया, हे सखी, झीणी ऊडै खेह ।
हियडो वादळ छाइयो नयण टबूकै मेह ॥
साजणिया ववलाइकै गोखे चढी लहक्क ।
भरिया नैण कटोर ज्यू मूधा हुई डहक्क ॥
ऊभी थी रायगणे सायव साभरियाह ।
च्यारुँइ पल्ला चूनडी आसू जळ भरियाह ॥

नयनोंकी घोर-साधनाका कविने क्या ही कारुणिक चित्र खींचा है। कबीरने भी इनकी साधनाके फल-स्वरूप इनको वैरागीकी उपाधि दी है—

विरह कमण्डळ कर लिये, वैरागी दो नैण ।

सूरने भी आसुओंकी बाढका अच्छा वर्णन किया है पर उनके वर्णनमे शायरीपनकी बू अधिक आगई है, जिससे स्वाभाविकता अलग होगई है—

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।

\+ \+ \+ \+

सूरदास प्रभु अब बढ्यो है गोकुल लेहु उबारे ।
कहँ लौ कहौ स्यामघन सुन्दर बिकल होत अति भारे ॥

प्रियतमके जानेपर हृदय तो उनके साथ चला गया पर नेत्रोंको बड़ी मुश्किलसे रखा है—

साल्ह चलता हे सखी, गोख चढ मै दीठ ।
हियडो वाहीसू गयो, नैण वहोड्या नीठ ॥

मनके चले जानेपर वहीं पहुचनेको नेत्र भी वैराग्य धारण कर लेते हैं। प्रणय-संसारमे आँख और मनका ही तो शासन है। मानस-समर्पण बिना तो उधर झाकना भी कठिन है।

प्रियके प्रवासमे रहनेपर विरहिणीको उसकी स्मृति करानेवाले प्राणी अच्छे नहीं लगते—

बाबहिया, तू चोर, थारी चाच कटावसू ।

रात सखी, इण तालमे काइज कुरळी पखि ।
वा सर, हूँ घर आपणे, वेहुँ न मेल्ही अखि ॥

पक्षी तालपर करुणामय रोना रोता हुआ जागता रहा और मैं पीडित मानस लेकर अपने घरमें सच्चे प्रेमीके लिअे प्रियतम-प्राप्ति बिना आनन्द मोह है। संसार जब आनन्द-विहारमे विचरता है तब सन्त साधना करते हैं—

सब जग सोवै नीद भरि, सत न आवै नीद ।

प्रसादने भी कहा है—

लोग जब हँसने लगते हैं,
तभी हम रोने लगते हैं।

\+ + +

कृपक जब हँसने लगते हैं,
तभी हम रोने लगते हैं।

संसार जब आनन्द करता है तब विरही-मानस तपस्या करता है—

सावण आयो, सायबा, हरिया हरिया वन्न ।
हरियो हुयो न अेकलो, प्यारी थणरो मन्न ॥
नाळा नदियासू मिलै, नदिया सरवर जाय ।
विरछासू वेला मिलै, अैसी सही न जाय ॥

The fountain mingles with the river
And the river with the ocean,
The winds of Heaven mix for ever
With a sweet devotion,
Nothing in the world is single,
All things by law divine
In one spirit meet and mingle,
Why not I, with thine ?

अेक ही शक्ति प्रणयमें सब मिलते है और दूसरोंको मिलते हुअे देखकर विरहीके हृदयमें पीड़ा उठती हैं कि प्रेम-स्वरूप प्रियतमसे मैं ही क्यों नहीं मिलता । शैलीने व्यापक रूपमें जो वस्तु रखी है वह दूहेमें संक्षेपमें कही गई है। अन्तिम कथन Why not I with thine की अपेक्षा "अैसी सही न जाय" में ज्यादा उक्ति-वैचित्र्य तथा कसक है—

सावण आयो, सायबा, सब वन पागरियाह ।
आव, विदेसी पावणा, अै दिन दूभरियाह ।।

प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हुई नायिकाका कैसा मूर्तिमान चित्र खींचा गया है—

दिस चाहती सज्जणा नेहाळती मग्ग ।
साधण कुझ-बचाह ज्यू लाबा हूया पग्ग ।।
दिस चाहदी सज्जणा नेहाळदी मुध ।
साधण कुझ-बचाह ज्यू लाबी थई तु कध ।।

देखनेके लिअे बारबार उभकती हुई नायिकाकी गर्दन और पैर क्रौंच-शावकोंकी गर्दन और पैरोंकी भाँति लंबे हो गये ।

अन्तमे प्रियतमके न आनेसे विरहिणी क्रौंच पक्षीसे पाँख माँगती है—

कूजा, द्यौ ने पाखडी, थाको विनो वहेस ।
सायर लघी पिव मिलू, पिव मिलि पाछी देम ।।

उनके पाँख न देनेपर उनसे सन्देश पहुँचानेके लिये आग्रह करती है।

उत्तर दिसि उपराठिया दख्खण सामहियाह ।
कुरझा, अेक सदेसड़ो, ढोलाने कहियाह ।।

यह स्थल मेघदूतसे किसी तरह कम रोचक नहीं है। विरहिणी और क्रौंच वार्तालापका-सा रोचक और करुण स्थल अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हम अपने पाठकोंसे उसे मूलमें पढ़नेकी प्रार्थना करेंगे।

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो प्राय कौवेको उड़ाया जाता है। यह प्रथा प्रायः समस्त भारतमें प्रचलित है। साहित्यमें भी स्थान-स्थानपर इसका वर्णन हुआ है। अेक नायिका अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामे कौवेको उड़ा रही थी। इतनेमे ही अचानक उसका पति आ गया। उस समय नायिकाको जो हर्ष हुआ उसका कैसा मूर्त्तिमान चित्र कविने खींचा है—

काग उडावण धण खडी, आयो पीव भडक्क
आधी चूडी काग-गळ, आधी गई तडक्क

प्रियतमके विरहमें नायिका इतनी दुबली हो गई कि जब उसने कौवेको उडानेके लिअे हाथ फेंका तो हाथकी चूड़ियाँ उछलकर कौवेके गलेमें जा गिरीं। पर ज्योंही उसने प्रियतमका आगमन देखा त्योंही हर्षके मारे उसका दुबलापन काफूर हो गया, वह अेक दम इतनी मोटी हो गई कि जो चूडियाँ अभी निकली नहीं थीं वे तडककर टूट गई और नीचे गिर पडीं। हेमचन्द्रके 'अध्धा वलया महिहि गय' के भाव की मनोहारिता 'आधी चूडी काग-गळ' के रूपमे कितनी वढ गई है।

प्रियके आगमनसे सजात हर्ष और उल्लासका कैसा रोचक और जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है—

साजन आया, हे सखी, हुता मूझ हियाह
सूका था मू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह
साजन आया, हे सखी, ज्याकी हूँती चाय
हियडो हेमागर भयो, तन-पजरे न माय
आजे रळी-वधावणा, आजे नवला नेह।
[illegible] अम्हीणी गोठमे दूधा वूठा मेह॥

नायिकाका हृदय आनन्दमें विभोर होकर नाच रहा है। यही नहीं वह सारे घरको, समस्त वातावरणको, विश्वके प्रत्येक पदार्थको, समस्त विश्वको, उसी आनन्दमें नाचता हुआ देख रही है—

साजन आया, हे सखी, ज्याकी जोती वाट
थाभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट

बहुत दिनोंके बाद प्रेमातिथि आया है। उसे कुछ भेंट देनी चाहिअे। पर भेंटका पदार्थ होना चाहिअे कोई अपूर्व वस्तु। और इससे बढकर अपूर्व भेंट भला क्या होगी—

साजन आया हे सखी, काई भेट कराह
गज-मोतियनको थाळ ले ऊपर नैण धराह

दम्पतिके मिलनका वर्णन स्पष्ट होता हुआ भी कितना पवित्रता-पूर्ण और अश्लीलतासे दूर है—

आसालूध उतारियउ धण कचुवो गळाह
घूमै पडिया हसडा भूला मानसराह
कठ विलग्गी मारवी करि कचूवौ दूर
चकवी मन आणँद भयो किरण पसारया सूर
मन मिलिया, तन गड्डिया, दोहग दूर गयाह
सज्जन पाणी-खीर ज्यू खिल्लोखिल्ल थयाह

खुले हुअे कुचों के लिअे मानसरोवर भूले हुअे हंसोंकी उपमा कितनी भावपूर्ण और मधुरिमामय तथा साथ ही पवित्रता-व्यंजक है।

दम्पतिके मधुर विनोदको जरा देखिये। नायिका कहती है—

म्हेने ढोलो झूबियो लूगे-लक्कडियेह
म्हाने प्रिउजी मारिया चपारे कळियेह
म्हाने प्रिउजी मारिया म्हानू आवी रीस
चोवा-केरी कूपळी ढोळी मायत्र-सीम

प्रियतम मुझे लौंगकी लकडियाँ (जरा लकडी शब्द पर गौर फरमाइये) लेकर झूम गया। उन्होंने मुझे चम्पाकी कलियोंसे मारा। जब उन्होंने मारा तो हमें भी रोष आ गया और हमने चोवेका पात्र लेकर उनपर उँडेल दिया।

राजस्थानकी सर्वश्रेष्ठ ऋतु वर्षा ऋतु है—जे भर वूठो भादवो मारू देस अमूल। यदि गहरो वर्षा हो जाय तो फिर मरुदेशका क्या कहना। राजस्थानीका वर्षा-सम्बन्धी काव्य बड़ा ही सरस और हृदयहारी है। विविध प्राकृतिक दृश्यों, लोगोंकी उमंगों, प्रेमियोंके नाना मनोभावों आदिके चित्र वड़े ही मनोमुग्धकारो और सजीव हैं। कुछ चित्र लीजिये—

घटा और बिजलीका चमकना—

आई घटा उतरादरी भँज सो कोसा वीच
सहरो सहरो सचरी वादोवाद खिवत

प्राकृतिक दृश्य—

लूमा झड, नदिया लहर, वग-पगत भर वाथ
मोरा सोर ममोलिया, सावण लायो साथ

पशु और मानव सृष्टिकी उमंगे—

हरणी-मन हरियाळिया, उर हाळिया उमग
तीज परव, रँग त्यारिया, सावण लायो सग
वाजरिया हरियाळिया, विच-विच वेला फूल
जे भर वूठो भादवो मारू देस असूल
धर नीळी, धण पुडरी, धर गहगहइ गमार
मारू देस सुहावणो, सावण साझी वार

इसी वर्षाऋतुमें अत्यन्त लोकप्रिय तीजोंका त्योहार पड़ता है जो राजस्थानका जातीय त्यौहार है। राजस्थानी स्त्रीको यह त्यौहार बहुत प्यारा है क्योंकि उसे विश्वास होता है कि इस अवसरपर तो उसका प्रियतम अवश्य ही उसके पास रहेगा—यदि वह प्रवासी है तो अवश्य आ पहुंचेगा। पतिको बिदा करते समय पत्नी अवश्य ही कहेगी—

कथा, मती चुकावज्यो, तीजा-तणो तिव्हार।

विरहिणी सन्देश भेजती है—

जे तू प्रीतम नावियो काजळियारी तीज
चमक मरेसी मारवी देख खिवती वीज

संयोगिनी पतिसे कहती है—

धन धोरा, जोरा घटा, लोरा बरसत लाय
बीज न मावै वादळा, रसिया, तीज रमाव
मोर सिखर ऊँचा मिले, नाचै हुवा निहाल
पिक ठहकै, झरणा पडै, हरिये डूगर हाल

टीबोंवाले खेत धन (अनाज) से भर गये है, घटा जोरोंसे उमड आई है और लोर ला-लाकर बरस रही है, बादलोंमें बिजली नहीं समाती, मोर शिखरोंपर निहाल बने हुअे नाच रहे है, पिक टहूक रही है, झरने शब्दायमान होते हुअे प्रचंड वेगसे गिर रहे है। अैसे समयमे, हे रसिक, हरी पहाडी पर चलो और मुझे तीजे रमाओ।

राजस्थानी जीवनने प्राकृतिक सौंदर्यसे मुख नहीं मोड़ लिया है।

कुसुमोंके सौन्दर्यमय जीवनमें मुस्कानका जो स्थान है, वही स्थान हमारे जीवनमे हास्यका है। प्रकृतिके कण-कणमे हास्य बिखरा पडा है—उषा अपनी आकर्षक मोहिनी शक्तिके साथ मुसकाती है, सरिताअे सतत मन्द-हासके साथ जीवन-पथ पर चलती है, और पिकके मस्तानी अदाके साथ कूक उठने पर निसर्गका कण-कण मौन हासमे व्यङ्गाभा बोलकर निखर पढ़ता है। हास्य हीन जीवन शून्य है। हास्य शृंगारका प्रबल पोषक है।

हमारे पुराने नाटककारोंने हास्यका प्रशंसनीय सम्मान किया है, उनके नाटकोंमे विदूषकका अेक विशेष स्थान है। धीरे-धीरे हमारे साहित्य-से हास्यका वह रूप उठ गया। हिंदीके पुरातन और नवीन कवियोंने हास्यरसमयी कविताअे कम ही लिखी हैं और जो लिखी हैं उनको घटनात्मक स्वरूप दे दिया है, जिससे इस रसका निसर्गसे सम्बन्ध उठ-सा गया। हास्य का घटनात्मक-विकास अश्लाध्य नहीं है पर निसर्गसे काव्य-जीवनमे भिन्नता लाना श्लाघ्य कार्य भी नहीं है।

धीर वीर गंभीर होनेपर भी राजस्थान हास्यसे अछूता नहीं। यहाँ-के हास्य-रसमे निसर्ग और मानव-जीवनका अपूर्व संमिश्रण मिलेगा—

वाळू वावा, देसडो पाणी ज्या कूवाह ।
आधी रात कुहक्कडा, ज्यू माणस मूवाह ।।

वाळू, वावा, देसडो पाणी-सदी तात ।
पाणी-केरे कारणे प्रिय छडै अधरात ।।

वावा, मत देइ मारुवा, वर कूवारि रहेस ।
हाथ कचोळो, सिर घडो, सीचती य मरेस ।।

जहाँ पानी गहरे कुवोंमे मिलता है और पानी निकालनेके लिअे आधीरातसे मरसिया गाया जाने लगता है तथा प्रियतम पानीके लिअे अर्धरात्रिमे छोडकर चला जाता है अैसी जगह व्याही जानेकी अपेक्षा लडकी कुमारी ही रहना चाहती है। वहाँ तो बेचारीको सारी उम्र ही सिर पर पानी ढोते-ढोते बितानी पड़ेगी। मारवाड़की पनिहारियोंके 'पणिहारी' गीतका रसास्वादन करनेवाले महाशयोंने इन पनिहारियोंके हृदयकी बातको समझनेका भी कभी कष्ट उठाया है। आगे वह मारवाडकी थोड़ी तारीफ और करती है—

जिण भुय पन्नग पीवणा, केर-कँटाला रूँख ।
आके-फोगे छाहडी, हूँछा भाजै भूख ।।

ढूंढाड कुछ विशेष हरा भरा देश है न अतः वहाँ होनेवाले मेवोंके नाम सुन लीजिये और स्त्री-पुरुषोंका सौदर्य भी देख लीजिये—

गाजर मेवो कास खड, पुरख ज पून-उघाड ।
ऊँधा ओझर अस्तरी, अइ हो धर ढूढाड ।।

मारवाडकी रेल प्रसिद्ध है। महात्मा गाँधी तक उसकी खूबियो (?) का वर्णन कर चुके है। उसी पर अेक नवीन कविजी कहते है—

नही तार, नहि टैम है, नही वतीमे तेल ।
आ चालै मनरे मते मारवाडरी रेल ।।

न तो तारका पता है न टाइमका ख्याल। और तो और, वत्तीमे तेल भी नही। फिर चाल। उसकी तो बात ही मत पूछिये। मौज आ गई

तो नौ दिनमें अढ़ाई कोस तो अवश्य ही चल लेती है। भला रेल भी तो मारवाड़की ठहरी, जहाँ रेल क्या, सभी कामोंकी प्रगति इसी द्रुत गतिके साथ होती है। बड़े बाबा कही गये है—मारवाड़ मनसूबे डूबी।

क्या आपको मालूम है कि अकालका निवासस्थान कहाँ है? अजी, यों तो इतने बड़े देशमें कहीं-न कही उसके दर्शन हो ही जाते है, पर आइये हम आपको उसका निश्चिम पता बतलावे—

पग पूगळ, धड कोटडे, बाहू बायडमेर।
फिरतो-घिरतो बीकपुर, ठावो जेसळमेर॥

उसके परोंसे पूगल पवित्र होता है, कोटड़ा धड़को सम्हालता है, और भुजाअें बाड़मेर तक पहुँच जाती है। सैर-सपाटा करनेके लिअे अकसर बीकानेर पर आपकी कृपा-दृष्टि हो जाती है, पर जेसळमेरमें तो आप निश्चितरूपसे बारहकी जगह तेरहों महीने विराजमान रहते है।

जनरल सर प्रतापसिहका नाम आपने सुना ही होगा। आप ब्रिटिश साम्राज्यके अेक महान सिह थे। पर कवियोंने उन्हे भी न छोड़ा।

महाराज डाढ़ी-मूछ मुँड़ाये रखते थे और टोप लगाते थे अेक दिन उनको देखकर कवि महोदय कही उठे—

दाडी-मूछ मुडाय कै सिर पर धरियो टोप।
प्रतापसी तखतेसरा, थारे बाकी घटै लँगोट॥

डाढ़ी और मोंछे मुँडा ही ली हैं, टोपी भी धारण कर ली है, अब कमी केवल अेक लंगोटकी है। वह भी धारण कर लिया जाय तो फिर दंडी स्वामिन् बननेमे क्या कसर रही।

सखियोंकी अेक मण्डली जुटी थी। स्त्रियोंके पास और विषय ही क्या? अपने-अपने पतियोंके विषयमे बातचीत होने लगी। अेकने कहा—

मै परणती परखियो, नाह भरै वळ नाड।
पडै न रण मे अेकलो, पडसी केता पाड॥

दूसरी बोली—

मैं परणती परखियो, मूछा भिडियो मोड ।
जासी स्वर्ग न अेकलो, जासी दळ सजोड ॥

तीसरीने तारीफ की—

मैं परणती परखियो, तोरणरी तणियाह ।
घर-धण लावी पहरता पहरै घण जणियाह ॥

अब चौथीकी बारी आई। चुप कैसे रहती ? बोली—

मैं परणती परखियो, लाबो घणो लडाक ।
आलेडारी भीत ज्यूं, पडै दडाक दडाक ॥

[मैंने विवाहके समय पतिको देखा कि वह बहुत ही लम्बा-लड़ाक (लम्बे मनुष्यके लिअे हास्यपूर्ण शब्द) है और गीली भींतकी भाँति तड-तड करता हुआ गिरता है ।]

अब राजस्थानकी जातियोंका वर्णन भी थोडा सुन लीजिये—

अग्गमबुद्धी वाणियो, पिच्छमबुद्धी जाट ।
तुर्तबुद्धी तुरकडो, बामण मप्पमपाट ॥

बनिया पहले सोचकर काम करता है, जाटको अक्किल बादमें आती है, वह काम करके सोचता है, मुसलमानकी बुद्धि मौके पर काम देती है, और ब्राह्मण ? उनको तो क्या आगे और क्या पीछे, बुद्धि कभी होती ही नहीं—वे तो बुद्धिके नाम सफाचट होते हैं।

आधुनिक राजपूत सरदारोंकी गिरी हुई दशा देखकर कवि आवेशमें आ जाता है—

वै घोडा, वै गाम, रिजक वही, राजा वही ।
राजपूतारो राम नीसरग्यो क्यूं, नोपला ॥
ठाकर गेया, ठग रह्या, रह्या मुलकरा चोर ।
वैं ठकराण्या मर गई, ठाकर जिणती ओर ॥

घोड़े वही, गाँव वही, जागीर-पट्टा आमदनी सब कुछ वही, राज्य भी वही; पर फिर भी राजपूतोंका 'राम' न जाने क्यों निकल गया ? सच्चे

ठाकुर तो सब चले गये, अेक भी बाकी नहीं रह गया, बाकी रह गये ठग और मुल्क-भरके चोर, जिन्होंने प्रजाको लूटने-खोसनेका ही धंधा बना रक्खा है। जो ठकुरानियाँ सच्चे ठाकुरोंको जन्म देती थीं वे अब पृथ्वी-तल पर नहीं रह गईं।

आजकलके राजपूत सरदारोंका बखान एक दूसरा कवि करता है—

घोचो लागा घाव, घी-गेहूँ भावै घणा।
अहडा तो अमराव, मोत्या मूघा 'राजिया'॥

घोचे (तिनके) का घाव लग जाने पर ही—और घाव तो दूर रहे—उन सरदारोंको गेहूँ और घीके बने तर माल खानेकी जरूरत पड जाती है। कवि कहता है अैसे सरदार तो हमारे लिअे मोतियोंसे भी महँगे (बहुमूल्य) हैं।

जब अैसे सरदार रह गये कि जिन्हे घोचेका घाव भी भारी हो जाता है तो फिर युद्धके लिअे प्रेरित करनेवाली वाणीके धनी कविराजोंकी क्या आवश्यकता? इसलिअे हमारे कविजी उन कविराजोंको सलाह देते हैं—

कविराजा, खेती करो, हळसू राखो हेत।
गीत जमीमे गाड दो, ऊपर राळो रेत॥

हे कविराजाजी, अब कविता करनेकी आवश्यकता नहीं। यदि पेट भरना है तो हलसे प्रेम करो और खेती करना शुरू कर दो। अपनी कविता-को जमीनमें खूब गहरी गाड़ दो और ऊपर तक अच्छी तरहसे रेत चुन दो ताकि, बकौल पातसाह औरंगजेब, वह कभी बाहर न आने पावे।

अब शाहजीसे भी जै-गोपाल कर लीजिये—

जळ नदियाँ मिळिया जिके, मिळिया समँद मँझार।
वित कर चढिया वाणिया पूगा समँदा पार॥

जो जल नदीमें मिल गये वे फिर गहरे समुद्रमें ही जाकर ठहरे और जो धन बनियोंके हाथ पड़ गये वे तो समुद्रके भी उस पार जा

पहुँचे। वह जल समुद्रमें फिर हाथ आ सकता है पर इसकी संभावना नहीं कि शाहजीके पास गया हुआ धन फिर कभी वापिस मिल जायगा।

दरसावै जगने दया, पाप उठावै पोट।
हितमे, चितमे, हातमे, खतमे, मतमे, खोट॥

ऊपरसे जगतको बडी दया दिखलाते है—तिलक लगाते है, धर्मशालाअें और मन्दिर बनवाते है, कुवे खुदवाते है—पर पापोंकी बडी भारी गाँठ लादनेसे नहीं चूकते। उनके प्रेममें, चित्तमें, कागजोंमें, विचारोंमें, कोई अेक-दोमे हो तो गिनाया भी जाय यहाँ तो सभी बातोंमें, कपट-ही-कपट भरा रहता है।

औरोंकी तो औकात ही कितनी, यमराज भी इनसे पार न पा सके। बिचारेको अपनी गद्दी छोडकर भागना पडा। कविजी आँखों-देखी कहते है–

दी सुरही हाजर हुई, विनय सुणावै वात।
गादी-हूँत भजावियो जमराजा इण जात॥*

लगे हाथों महन्तजीके दर्शनोंका सौभाग्य भी प्राप्त कर लीजिये। कहीं दर्शनसे ही भवसागरसे मुक्ति हो जाय।

चेला लावै मॉगकर, वैठा खावै मथ।
राम-भजन तो नॉव है, पेट भरणरो पथ॥

चेले माँगकर लाते है, महंतजी वैठे-वैठे मौज उडाते है। काम करना नहीं पड़ता, आसानीसे पेट भर जाता है—तर माल चाबनेको मिलते हैं। वैकुंठका सुख इससे बढकर क्या होगा। बाबाजीको तो इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त है—जीवन्मुक्त भला और कैसे होते होंगे?

मूँड मुँडायाँ तीन गुण,—मिटी टाटकी खाज।
वावा वाज्या जगतमे, मिल्या पेट भर नाज॥

मूँड मुँडानेसे 'हरि चाहे न मिलें' पर यही तीन लाभ क्या थोड़े है? सिर पर वाल नहीं रहे—टाटकी खुजली मिट गई। दूसरे, सारा जगत

---

*कहानी टिप्पणीमें देखिये।

बाबाजी-बाबाजी कहने लगा * (यों कोई टके सेर तो दूर, टके मनको भी न पूछता)। और तीसरे बिना परिश्रमके बैठे-बिठाये पेट भर अनाज मिल जाता है। फिर हरिसे मिलकर क्या घास छीलते !

जहाँ राजस्थानी जीवन स्वातंत्र्य-मय है वहाँ उसके कविलोग भी उद्दंड और स्वतंत्र प्रकृतिके पाये जाते हैं। सच्ची बातको स्पष्ट मुँहपर कह देनेमें वे कभी नहीं हिचकते।

किसी समय जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजी और जोधपुर-नरेश अभयसिंहजी साथ-साथ बैठे हुअे थे। अेक कविराज भी वहाँ बैठे थे। फरमायश हुई कि कविराजाजी दोनों नरेशोंके विषयमें कुछ सुनावें। पहले तो कविराजाजीने टालना चाहा पर जब बहुत आग्रह किया गया तो बोले—

पत-जैपुर, जोधाण-पत, दोनू थाप-उथाप।
कूरम मारचो डीकरो, कमधज मारचो बाप॥

जयपुर-पति और जोधपुर-पति दोनों ही अेक अेकसे बढकर हैं। कछवाहे (जयपुर-नरेश) ने बेटेको मारा तो कबंधज (जोधपुर-नरेश) ने भाईके द्वारा बापपर हाथ साफ किया।

उक्त पितृहंता बखतसिंहजी अेकबार अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर बिडदा रहे थे। अेक चारण वहींपर खड़ा था। उससे नहीं रहा गया। बोल पड़ा—

बापो मत कह, बखतसी, कापत है केकाण।
अेकण बापो फिर कह्या तुरग तजैलो प्राण॥

---

* पाठक ध्यान रखें कि बाबाजी केशवदासकी तरह चन्द्रवदनियों और मृगलोचनियों द्वारा 'बाबा' कहे जानेसे अप्रसन्न होनेवाले व्यक्ति नहीं, वे तो इसे अपना महान सौभाग्य समझते हैं।

हे वखतसिंह, घोड़ेको वापा करकर मत पुकार, यदि अेक बार और वापा कह दिया तो वेचारा प्राणोंसे हाथ धो वैठेगा।

वीकानेर-नरेश दलपतसिंहजीको वादशाहने कैद कर लिया। पर वीकानेरके सरदारोंने उन्हे छुडाने तकका प्रयत्न नहीं किया। जला हुआ चारण उन्हे किस तरह फटकारता है—

फिट वीदा, फिट काधळाँ, जगळधर लेडाह।
दळपत हुड ज्यू पकडियो, भाज गई भेडाह॥

जोधपुर-महाराज विजयसिंहजोको मराठोंके साथ लड़ाई हुई जिसमे महेसदास वडी वीरताके साथ काम आया। उसीकी वीरतासे महाराजको विजय हुई। पर उसकी कदर न करके जगरामसिंह नामक अेक दूसरे सरदारको जो युद्धसे भाग आया था महाराजने आसोपका पट्टा देनेका विचार किया। कोई चारण भी वहीं खड़ा था। तुरन्त वोल उठा—

मरज्यो मती महेस ज्यू राड विचे पग रोप।
झगडामे भागो जगो, उण पाई आसोप॥

कविके कथनका यह प्रभाव हुआ कि महाराजने अपना विचार वदल दिया।

अेक ताजा उदाहरण लीजिये। मेवाडके महाराणा सज्जनसिंहजीको सरकारकी ओरसे G C. S I की उपाधि मिली। वड़ा भारी उत्सव मनाया गया। अेक कविराज मन मलीन किये अेक ओर चुपचाप वैठे थे। पूछा गया—कविराजाजी, मन मारे कैसे वैठे है, कुछ सुनाइये, आज तो आनन्दका दिन है। आग्रह किये जानेपर चारण बोला—

आगे आगे वाजता हिंद-हद्दरा सूर।
अव देखो मेवाडपत तारा हुया हजूर॥

कहाँ हिन्दुआ-सूरज और कहाँ हिन्दके सितारे। पतनकी भी कोई सीमा है।

भक्ति-काव्यमे भी वही स्वातंत्र्य-प्रियता दृग्गोचर होती है । भक्तोंके उपालंभ कैसे वीरोचित है—

आयो महिमा आण त्हारी, रघुकुळका तिलक ।
पोत भयो पाखाण दीखे, दसरथराव-उत ।।
तूबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण ।
ताहि तारियै, जगतरण, तइ केहा वाखाण ।।

अेक वीर-जातिका हृदय अपने महापुरुषको विनयोपालंभ भी शक्तिकी ही तरफ इशारा करके देगा कि आपकी सामर्थ्यसे पाषाण नाव बनके तैर गये पर यह जीवन-नैया न जाने आपके पास आकर क्यों पाषाण बन गई। आखिर उद्धत हृदय शक्ति-परीक्षा लेनेको तैयार हो ही तो गया कि पाषाण तैराकर कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य कर डाला ? मुझे तारोगे तो समर्थ समझूँगा ।

अेक दूसरे भक्तका उपालंभ लीजिये—

पहली केस खिचाविया, पछे वधायो चीर ।।
आयो लाज गमायकर, आखर जात अहीर ।।

जब कभी तू आया है लाज गँवानेके बाद ही आया है । आखिर तो जातिका अहीर ही ठहरा न । जाति-स्वभाव भी कहीं छूटता है—चाहे कोई कितना ही ऊँचा क्यों न चढ़ जाय ।

संसारका व्यावहारिक ज्ञान नीतिशास्त्रका जन्मदाता है। वे अनुभव 'सौ सयाने अेकमत' के अनुसार समान-भाववाले भी हैं और असमान भाव-वाले भी । किसीने नम्रता प्रशंसनीय बतलाई है तो किसीने अैंठको, और कहीं-कहीं तो अेक ही व्यक्तिने दो विरोधी बातें कह दी हैं। नीति-काव्योंका यह अनोखा रूप सभी भाषाओंमें "भिन्नरुचिर्हि लोकः" के सिद्धान्तानुसार मिलता है। राजस्थानी दूहा-साहित्यकी नीति-वाटिकाकी भी जरा सैर कर लीजिये—

डाक्टर रवीद्रनाथ ठाकुरकी निम्नलिखित उक्ति अंग्रेजी विद्वानोंकी जिह्वा पर पाई जाती है । उसको सुनाते समय वे अेक प्रकारके गर्वका अनुभव करते है ।

Saith the false diamond, What a gem am I.
I doubt its value from that boastful cry.

इसी भावका यह प्राचीन राजस्थानी दूहा है—

वडा वडाई ना करै, वडा न बोलै बोल ।
हीरा मुखसे ना कहे, लाख महारा मोल ।।

सिहोंके बहाने वीर मनस्वी पुरुषोंकी तेजस्विता, प्रताप और पराक्रमके क्या ही सुन्दर चित्र इन दूहोंमे खींचे गये है—

जिण माण केहर वुवो, लागी वास तिणाह ।
ते खड ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह ।।
घाल घणा घर पातळा, आयो थहमे आप ।
सूतो नाहर नीद सुख, पोहरो दियो प्रताप ।।
हाथळ वळ निरभे हियो, सरभर नको समथ्थ ।
सीह अकेला सचरै, सीहा केहा सथ्थ ।।
सिघा देस विदेस सम, सिघा किसा वतन्न ।
सिघ जका वन सचरै, वै सिघारा वन्न ।।

जिस मार्गसे सिह अेकवार भी होकर निकल गया है उस मार्गके खेतोका घास चरनेको हिम्मत हिरनोंको स्वप्नमे भी नही हो सकती । वे खेत तो खड़े-खड़े ही सूखेंगे । सिह अनेकोंको मारकर आया है पर निश्शंक सो रहा है , सोते हुअे कोई शत्रु उसपर आक्रमण कर देगा इसकी तो संभावना भी नहीं हो सकती । सिह किसीको अपना सहायक नहीं वनाता, उसका सहायक उसका 'हाथळका बळ' है जिसके भरोसे वह निर्भय घूमता है। उसकी तेजस्विताका कारण कोई अेक स्थान नहीं है, वह तो जहाँ जाता है वहीं अपनी तेजस्विताके वलपर शासन करने लगता है ।

सिह और हाथी अेक ही वनमे रहते है फिर भी क्या कारण है कि हाथी लाखोंमें विकता है पर सिहका कौडी मूल्य भी नहीं आता—

अेक्कइ वन्न वसतडा अेवड अतर काय ।
सिंघ कवड्डी ना लहै गयवर लख्ख विकाय ।।

कवि इसका क्या ही सुन्दर उत्तर देता है—

गयवर गळे गळथ्थियो जहँ खचै तहँ जाय ।
सिघ गळथ्थण जे सहै तो दह लाख विकाय ।।

हाथीके गलेमें लोग बंधन डालकर अपनी इच्छानुसार उसे चलाते है। हाथी चुपचाप सहन कर लेता है। यदि सिह भी गलेका बंधन स्वीकार कर ले तो वह अेक क्या दसों लाखमें बिके। पर यह असंभव है। वह तो स्वातंत्र्यका पुजारी है। उसके गलेमें बंधन डालनेकी किसकी हिम्मत हो सकती है?

स्वाधीनता बेचकर पाँचों सवारोंमे नाम लिखानेवालोंकी कैसी कटीली चुटकी ली गई है।

संस्कृत-साहित्यकी यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि—

क्रियासिद्धि सत्त्वे भवति महता, नोपकरणे

इसी बातका स्पष्टीकरण पतिपत्नीके संवाद द्वारा किया गया है—

कळह करचे मत कामणी घोडा घी देताह ।
आडा कदयक आवसी वारडली वहताह ।।

हे कामिनी, घोड़ोंको घी खिलाते समय तू कलह न करना। यह घी खिलाना व्यर्थ नहीं जायगा। जब कभी वार चढ़नेका मौका आयगा तो उस समय ये ही घोड़े काम देगे।

पत्नी इस कथनका कैसा मुँहतोड़ उत्तर देती है—

आक वटूकै पवन भख, घोडा आगळ जाय ।
हूँ तने पूछू, सायबा, हिरण किसा घी खाय ।।

हे पति, बेचारे हरिण कौन-सा घी खाते है, वे तो आकके पत्तों और हवा पर ही गुजारा करते है पर जब दौड़ते है तो तुम्हारे घी खानेवाले घोड़ोंके फरिश्ते भी उन्हे नहीं पा सकते।

रोज तर माल उडानेवाले सेठों और बाजरी पर गुजारा करनेवाले देहाती जाटोंको तुलना कर सकते हैं।

सत्संगतिको महिमा विषयक दो-चार सुभाषित कितने भावपूर्ण हैं—

पुत्र गया परवार सज्जन साथ छुट्या जदे ।
दुर्जण जणरी लार रोता फिरवै, राजिया ॥
ओछेको सँग साथ, अहमद, तजो अँगार ज्यू ।
तातो जारै हाथ, सीरो कर कारो करै ॥

पिछले दूहेके भावको रहीमने इस प्रकार प्रकट किया है—

रहिमन ओछे नरनसो तजहु वैर अरु प्रीत ।
काटे चाटे स्वानके, दुहूँ भाति विपरीत ॥

सच्चे मित्रका लक्षण देखिये—

मित ज ओगण मितके अनत नही भाखत ।
कूप छाह ज्यू आपणी हीयेमे राखत ॥

'गुह्य च गूहति' के भावको उदाहरण देकर कैसा स्पष्ट किया है।

आदर्श मित्रका चित्र हंस और वृक्षके संवादमे अंकित किया गया है—

आग लगी वनखडमे, दाझ्या चदण व स ।
हम तो दाझ्या पख विन तू क्यो दाझै हस ?

किसी जंगलमे अेक पेड पर अेक हंस रहता था। अेक बार जंगलमे आग लगी। पेड़ जलने लगे। जिस पेड पर हंस रहता था वह भी जल उठा। पर हंस वहाँसे नही हटा। पेड़ कहने लगा—मित्र, हमारे तो पंख नहीं इससे लाचार है। पर तू क्यों हमारे साथ जलता है ? हंस उत्तर देता है—

पान मरोड्या, रस पिया, वैठ्या अेकण जळ ।
तूम जळो, हम उठ चलै, जीणो कितोक काळ ?

आनन्द मनाते समय तो साथ रहे, अब विपत्तिके समय तुम्हे छोड़ दूँ ? भला, संसारमे जीवन ही कितना है कि उसके लिअे मित्रको जलता छोडकर अपनी जान बचाऊँ ?

राजस्थानी साहित्यमे प्रेमका आदर्श हंस है।

दूसरा उदाहरण लीजिये—

डीघी पाळ तळावरी हसा बेठ्या आय ।
प्रीत पुराणी कारणे चुग-चुग काकर खाय ।।

दुनियादारीकी दो-चार बातें लीजिये। संसारमे सीधे आदमीके लिअे कोई स्थान नहीं होता। सभी उसको सताया करते है। राजस्थानी कहावत भी है कि सीधे ऊंटपर दो सवारियाँ बैठती है, दुष्ट ऊंटपर चढते हुअे सभी डरते हैं। इसीलिअे अेक पत्नी अपने पतिसे कहती है—

वाका रहज्यो, वालमा, वाका आदर होय ।
वाका वनका लाकडा, काट न सक्कै कोय ।।

जंगलमें जो लकडी सीधी होती है वही काटी जाती है।

संसारमें प्रायः उसीका आदर होता है जो ऊपरी आडंबर रखना जानता है, भीतर चाहे कुछ भी न हो। जो आडंबर नहीं रखता उसकी कोई बात भी नहीं पूछता। उसी भावको इस दूहेमे उदाहरण देकर समझाया गया है—

लछमी कर हरि लार, हरने दध दीधो जहर ।
आडवर डधकार राखै सारा, राजिया ।।

देखो, समुद्रने आडंबरी विष्णुके पीछे तो चुपचाप लक्ष्मीको कर दिया पर सीधेसादे भोलानाथ बाबाको, जानते है क्या दिया, जहर, हलाहल जहर।

धनमहिमा अनन्त कालसे गाई जाती रही है। सर्वे गुणाः काचनमाश्रयंति, न वंधु-मध्ये धनहीनजीवनम्, धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वं,दारिद्र्य-दोषो गुणराशिनाशी, आदि संस्कृत कवियोंकी उक्तियाँ रोजानाकी कहावतें बन गई है। राजस्थानीका अेक उद्दण्ड कवि अपनी शैलीमे धनमहिमाका गान करते हुअे कहता है—

दाळद घर्‍ दोळो हुवै, परणी नावै पास ।
रुपिया होवै रोकडा, मोरा आवै सास ।।

रुपिया विन रागा करै, हाजर जोडै हाथ ।
अेक अधेली आडमे, वोळो सुण लै वात ॥

यदि पैसा पास नहीं है तो चाहे जितनी हाजिरी भरो, हाथ जोडो और मीठी-मीठी रागे गाओ, कोई बात भी नहीं सुनेगा। पर यदि आपके पास ज्यादा नहीं अेक अधेली ही है तो बहरा भी आपकी बातको सुन लेगा, दूसरोंका कहना ही क्या !

गोडो पूछै, गोडिया, किसो भलेरो देस ?
सपत होय तो घर भलो, नही भलो परदेस ॥

'न वंधुमध्ये धनहीन-जीवनम्' की बातको संवादात्मक रूप देनेसे उसमें नवीनता आ गई है।

भाग्यके खेलका वर्णन कैसा रोचक उदाहरण देकर किया गया है—

परालवधका पावणा, देख दईका खेल ।
भम्भीखणने लक, अर हड्मानने तेल ॥

कहाँ विभीषण और कहाँ हनुमानजी। पर विभीषणको मिली लंका और हनुमानजीको ? तेल और सिन्दूर।

अवसर बीत जानेपर कार्यसिद्धि हो जाय तो भी उससे क्या लाभ ? इसी भावको कवि कैसा सजीव बनाकर उपस्थित करता है—

आधो रहग्यो ऊँखळी, आधो रहग्यो छाज ।
सागर सट्टे धण गई, (अब) मधरो-मधरो गाज ॥

मेघ आवश्यकताके समय तो वरसा नहीं, अब अवसर नाश हो जाने-पर चाहे मीठे स्वरसे गरज। इसमे अन्तर्वेदनाके सिवाय अकालका भी सजीव रूप खडा कर दिया है—"साँगर सट्टे धण गई"। तुलसीने इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया है—"का वरखा जब कृषी सुखाने" और "अवसर कौडी जो चुके, बहुरि दिये का लाख"। पर दोनों कथनोंमे वह बात नहीं जो दूहेमें है। "साँगर सट्टे धण गई मधरो-मधरो गाज।" वेदना-को साकार बना दिया है और साथही व्यवहारिक-कथन-संसर्गने और भी सजीवता भर दी है—"आधो रहग्यो ऊँखळी,आधो रहग्यो छाज"। महाकवि

भारविने भी "किमसामयिकं वितन्वता" आदि वचनोंसे असामयिकताकी निन्दा की है पर अैसा हृदय पिघलानेवाला कथन खोजनेसे भी नहीं मिलेगा।

गृहस्थ-जीवनके सुख-दुःखोंका वर्णन नीचेके दूहोंमें किया गया है—

साठी चावळ, भैंस-दुध, घर शिळवती नार ।
चौथी पीठ तुरगरी, सुरग-निसाणी च्यार ।।
नाज पुराणो, घी नयो, आग्याकारी नार ।
पथ तुरी चढ चालणो, पुत्र-तणा फळ च्यार ।।
विद्या, अर वर नार, सपत गेह, सरीर-सुख ।
माग्या मिलै न च्यार, पूरब पूरा दत्त विन ।।

खानेको उत्तम चावल मिले, भैंसका दूध हो, नया घी हो, घरमें संपत्ति हो, शरीर नीरोग हो, विद्या प्राप्त हो, पतिव्रता सुशीला स्त्री हो और सवारीको घोडा हो तो फिर क्या कहना। यदि ये प्राप्त है तो घाघके शब्दोंमे—उहाँ छाडि इहँवै वैकूंठा।

लूखो भोजन, भू सुवण, घर कळखारी नार।
चौथा फाटचा कापडा, नरक-निसाणी च्यार ।।
कालर खेत, कसूत हळ, घर कळखारी नार ।
मैला जिणरा कापडा, नरक-निसाणी च्यार ।।
लोक चुगल काना लग्या, घूघू बोल्यो गेह ।
भायासू भेळप नही, विपत लिखी विध तेह ।।

रूखा भोजन मिले, जमीनपर सोना पड़े, कपड़े फटे और मैले हों, खेत ऊसर हो, हल सीधा चलनेवाला न हो, चुगलखोर कानोंसे लगे रहें, घर पर उल्लू बोले, भाइयोंसे मेल न हो और सबसे बढ़कर स्त्री कर्कशा और रातदिन कलह करनेवाली हो तो गृहस्थ-जीवन नरकके जीवनसे किस कदर कम है।

जीवन-साफल्यके विषयमे राजस्थानी भावना क्या है यह इस दूहेसे मालूम होगा—

जलम अकारथ ही गयो, भड-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गळे न लग्ग ।।

अेक संस्कृत कवि कहता है—

न ध्यान पदमीश्वरस्य विधिवत्ससार-विच्छित्तये ।
स्वर्ग-द्वार-कपाट-पाटन-पटुर्धर्मोऽपि नोपार्जित ।।
नारी-पीन-पयोधरोरु-युगल स्वप्नेऽपि नालिगितम् ।
मातु केवलमेव यौवन-वनच्छेदे कुठारा हि ते ।।

दोनों भावनाओंका अंतर स्पष्ट है। संसार में आने पर भक्तिभाव और भोग-विलास ही जीवनका उद्देश्य नही है। भोग-विलास भी जीवनकी अेक नैसर्गिक आवश्यकता है पर जीवन इतने ही उद्देश्यमे केन्द्रित नहीं किया जा सकता है। देशके लिअे सैनिक-वेषमें तैयार रहना भी हमारा कर्तव्य है अतः अेक वीरका हृदय भोगाकाक्षामे भी "तीखा तुरी न माणिया" की याद किये बिना नही रह सकता । श्लोकमें ईश्वर-ध्यान और रमणी-भोगसे वंचित जीवनको व्यर्थ जीवन बताया है पर यहाँ तो पहली असफलता "भड सिर खग्ग न भग्ग", दूसरी असफलता "तीखा तुरी न माणिया", और तीसरी "गोरी गळे न लग्ग" बताई गई है तथा ईश्वर-भजनका नाम तक नहीं लिया गया है। वीर राजस्थानके लिअे वीरता ही भक्ति रही है। "भड सिर खग्ग न भग्ग" मे राजस्थानकी सारी भावनाअे केन्द्रित है। इन वीरोंके लिअे युद्ध ही स्वर्ग-द्वार है—

यदृच्छया चोपपन्न स्वर्ग-द्वारमपावृतम् ।
सुखिन क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" भारतका मूलमन्त्र-सा रहा है। परिवार-के शिशु, तरुण और वृद्ध सबके मुँह पर अेक ही बात मिलेगी—"जग

झूठा सारा सांइया" और शास्त्रोंमें संसारमें "पद्मपत्रमिवाम्भसा" रहने-का ही आदेश मिलेगा। राजस्थानी काव्यधारामें भी यह शान्ति मिलेगी। राजस्थानी-काव्योंमें शान्त रस भी अन्य रसोंको तरह लालित्यपूर्ण मिलेगा। अेक दो उदाहरण ही आपके सामने रखे जाते है—ये ही माधुर्य-परिचय देनेमें पर्याप्त होंगे—

पान झडता देखकर, हँसी ज कूपलियाह ।
मो वीती तुझ वीतसी धीरी बापडियाह ॥

वृक्षके पत्तोंका पतन देखकर कोंपलें हंस पड़ीं। उन्हे हंसते देखकर पत्ते कहते है—अरी अबोध कोंपलों, क्या हॅसती हो, जरा ठहर जाओ, जो हम-पर बीत रही है वही तुमपर भी शीघ्र ही बीतनेवाली है। दूसरोंकी विपत्तिमें सांसारिक जनोंको प्रसन्नता होती है। उस समय उन्हे यह ध्यान नहीं रहता कि कभी हम भी इस विपत्तिमें फॅस सकते है।

वर्त्तमानकालीन क्षणिक वैभवमें फूलकर मनुष्य जानते हुअ भी वास्त-विकताको भूल जाता है। इस बातको अन्योक्ति-रूपमें कैसे सुंदर ढंगसे समझाया है—

गहरी लाली देखकर फूल गुमान भयाह ।
कितरा वाग जहानमे लग-लग सूख गयाह ॥

समयके फेरसे मनुष्यकी अवस्थामे जो परिवर्त्तन हो जाता है उसका कैसा सजीव और करुणापूर्ण चित्र इन दूहोंमे अंकित किया गया है—

तन भर सोनो पहरती मोत्या मरती भार ।
अेक दिन अैसो आयग्यो घर-घररी पिणियार ॥
महिपत देता मोज घर बैठा घोडा घणा ।
रोटचा-केरो रोज निजरा देख्यो, नोपला ॥
भावै नही ज भात लागै विजण विडावणा ।
रीरावै दिन रात रोटचा कारण, राजिया ॥

जो सोने और मोतियोंके आभूषणोंसे लदी रहती थी वह आज घर-घर भटकनेवाली पनिहारी है। जिनको राजा लोग घर बैठे रीझ

बख्शते थे उनके यहाँ आज रोटियाँ तकके लाले पड़े है। जिनको स्वादिष्ट व्यंजन भी अच्छे नहीं लगते थे वे आज सूखो रोटियोंके लिअे आजिजी करते फिरते है।

संसारके अस्थायी नश्वर जीवनका रूपक कितना स्पष्ट चित्रित किया गया है—

नदी-किनारे देखिये, सम्मन, सब समार।
कइ उतरे, कइ ऊतरै, (कइ) बुगचा बाध तयार॥

सारा संसार नदी-किनारेका यात्री-समाज है जिसमेसे कुछ नदीका पार कर चुके है, कुछ कर रहे है और कुछ अपने-अपने बुगचे बाँधकर पार जानेको तय्यार खड़े है—नावकी बाट जोह रहे है।

योवनापगम पर वृद्धावस्थाका भयंकर रूप देखकर प्राणी पुकार उठता है—

हा! हा! जोबन! जाय मत, मै बरजत हूँ तोय।

जब यौवनरत्न चला गया तो फिर कोई बात भी नहीं पूछता। उस समय सहारा देनेवाली केवल लकडी ही रह जाती है—

आव, सुहागण लाकडी, तेरा पडिया काज।
माता दी आसीसडी, सो दिन आया आज॥

माता पर झुँझलाहट आती है। न जाने क्या जानकर उसने दीर्घायु की आशीष दी थी।

अेक बुढ़िया अपनी कथा कहती है—

यहि अँगना, यहि देहरी, यही ससुरको गाव।
दुलहिन दुलहिन टेरता, बुढिया पडग्यो नाव॥

यही आँगन है, यही देहली है, यही वह ससुरका गाँव है जिसमें मैंने नव-वधूके रूपमे प्रवेश किया था और जहां मैं दुलहिन कहकर पुकारी गई थी। दुलहिनके नामसे पुकारते-पुकारते आज मै बुढ़ियाके नामसे पुकारी जाने लगी हूं। कितनी करुण कथा है!

बचपनके साथियोंसे वियुक्त अेक भावुक हृदय उनकी स्मृतिसे ही करुणा-विह्वल हो उठता है—

> आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वळे ।
> साईनारो साथ वळे न आसी, वीझरा ॥

यह सावनका महीना फिर लौट आयगा, वर्षा भी फिर आ जायगी, पर जिन साथियोंके संग बचपनमे खेलेकूदे है उनका संग जीवनमें फिर नहीं आयगा ।

दूहेमें कितनी वेदना, कितनी करुणा, कितनी विह्वलता और कितनी हृदय वेधकता भरी है इसे भुक्तभोगीके सिवाय कौन जान सकता है ।

—रामनिवास शर्मा हारीत
नरोत्तमदास स्वामी

संशाधन

विशेष—यहाँपर केवल बहुत आवश्यक संशोधन ही दिये गये है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानोंपर अक्षर, विरामचिह्न, मात्राअें आदि टूट गये है तथा ल-ळ, व व्-व, आदि कई-अेक वर्णोंका परस्पर विपर्यय हो गया है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	सशोधन
१५	२	रचियता	रचयिता
१७	२०	इसवे	इसने
१९	३ (नीचेसे)	थे	ये
३१	११	मुस्य	मुख्य
३१	१४	व्रजभाके	व्रजभाषाके
३२	११	पिंगळ	डिंगळ
३४	७	लक्षणिक	लाक्षणिक
४०	३ (नीचेसे)	खलाहल	खळाहळ
४३	१ (")	-इ-उ	अ-इ-उ
४३	३ (")	वैणा	वँ ण
४८	६ (")	वात राजस्थानीमे कहानीको	कहानीको राज-स्थानीमे वात
		काम-कळदा	काम-कदळा
५०	१०	वर्णत	वर्णन
५१	७	मूरखारी	मूरखारी,
५३	१६	लोकप्रियाका	लोकप्रियताका
५३	२ (नीचेसे)	श्राता	श्रोता
५४	१२	कवणू	कवण
५५	८	तणा	तणा
५५	१२	जुञ्झ	जुज्झ
५५	१५	भजरी	मजरी
५६	१८		

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
५७	१ (नीचेसे)	दूहा १७१	दूहा न० ११६ और ११७
५९	९ (”)	मित्रता	मित्रताका
६०	४	तमोतम	तमोमय
६१	५ (नीचेसे)	जेकोस्लाविया	जेकोस्लावकिया
६२	अंतिम	अपा	आप
८५	१०	मधुममय	मधुमय
८८	८	दोलणो	वोलणो
८९	१२	घरमे	घरमे ।
१०८	१३	वोडा	घोडा
१०९	४	मीश्वरस्य	योर् हरस्य

मूल-ग्रंथ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१२	१२	वडा	वडा
१४	४	दोनोमे	दोनामे
१७	९	रजिया	राजिया
१८	८	जानत	लानत
३१	१८	आजा	अजा
३२	१	धर	घर
३२	१६	वूढा	वूठा
४८	१।२	जाण	जाणै
४८	१४	गग-लल	गग-जळ
४९	७-३ (नीचेसे)	१२४·१२५ १२६ १२७ १२८	१२५ १२६·१२७ १२८ १२९
५१	१	सण	सैण
५४	९	दुरजसा	दुरजण
५७	६	हू, रणिया	हूँ, राणिया
५९	२	मरण	मरणा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
५९	५	विलग्गियर्यै	विलग्गियै
६२	५	परणती	परणती
६२	६	लिवाय	लिखाय
६४	१	आया	आयो
६५	९	या	यो
६९	९	तुरकसँ	तुरकसूँ
७६	१०	हीद	हीदू
७८	१०	वनचर	(म्हे) वनचर
८०	५-६	वलू	वलू
८५	३	राणगदे चोहाण-यह शीर्षक छूट गया है	
८५	१३	देता नित	देतो दत
८८	१	जाण	जाणै
९२	७	माणेरा	माणेरो
९२	१०	ताडा	तोडा
९२	११	दाख	दाखै
९५	११	चाटीआला	चोटीआला
९५	१५	व के ीकानेर	वीके वीकानेर
९५	१८	फाग	फोग
९५	१९	अछ	अव
९५	३ (नीचेसे)	सन्यासी—	सन्यासी ।
९७	३	सूरो	सूरो,
९८	६ (नीचेसे)	वडा	छोटा
१०८	१८	सिरसर	सिरपर
१०९	१३	चळणो	चलणो
११३	२ (नीचेसे)	पीछे	आगे
११४	१० (नीचेसे)	महिव	महिष
११७	५ (”)	वावडै	वावडै
११७	१ (”)	करये	करने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१२६	१५	पैर मारकर	×
१२७	८	शाट	घाट
१३०	५	गावर	गँवार
१३०	२ (नीचेसे)	अम्नकण	अन्नकरण
१३१	१ (")	पिछले	छिछले
१३५	७	गोखे	गोखे
१३८	१२	मेले	मेळो
१४०	१३	ताल	ताल
१४०	१९-२०	वरजियो-मना किया। (यह इबारत अगली पंक्तिमें होनी चाहिये)	
१४२	१३	विछावा	विछोवा
१४४	५	चुण	चुणै
१४५	२२	जायगा	हो जायगा
१४५	२४	हो हुई	हुई
१४६	५	उतर	उतार
१४६	६	मभर्‍या, वूठा	मभर्‍यो, वूठो
१४७	१०		[illegible] आवै
१४८	१	बिजली, बरस	बिजळी, [illegible]
१४८	१६	हाडाहोडी	[illegible]
१४९	१३	छागी	छाटा
१५१	१०	आप	आम
१५२	३	पगरे	पगरे पग
१५३	१२	हुई	हूई
१६०	१५	वाया	वादा
१६०	२४-२५	हाथ ऊँचा [illegible] । × (मूल अर्थ [illegible] पृष्ठ [illegible] देखिये)	
१६[illegible]	१[illegible]	माधिको	मापको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	संशोधन
१६७	६ (नीचेसे)	डुवो	हुई
१७२	१५	सरवर	तरवर
१७२	१६	हात	हात
१७८	१६	वरी	वँरी
१७९	२ (नीचेसे)	खिजाता	खीझता
१८१	५ (नीचेसे)	लैलडी	कोयल अथवा लैलडी
१८३	६	उठती	उडती
१८७	१७	ठढी	ठढी हवा
१८९	१२	वँचो	वेंचो
१९१	१३	कँवलकँ	कँवलकूँ
१९१	१७	हँस	हस
१९५	३	सुवस	सुवेस
२००	१६	भवद्धाम	भगवद्धाम
२०४	२	ध्राम	ध्राम्म
२१३	१२	रतनसेन	रतनसिंह
२१४	८	रस्त्रा	रखा
२१४	१८	करना करना	करना
२१६	८	उसने	उनने
२२१	१७	दरवारन	दरबार
२२४	७ (नीचेसे)	मुसलमानोसे	मुसलमानोके
२३७	७	नोगोर	नागोर
२३९	१८	१७१७	१७२७
२४४	९ (नीचेसे)	साजन वडिया	सजन.. कडिया

राजस्थानरा दूहा

(भाग पहलड़ो)

राजस्थानरा दूहा

भाग पहलड़ो
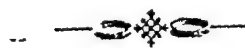
(१) विनय

१—भगवानकी स्तुति

सिल ऊधरती सारि, नाठो फ़ीवर नाव लै।
महिमा चलण मुरारि, देखे, दसरथराव-उत ॥ १ ॥

क्रिरि कूटियै कपाल, त्रीकम, तू विमुखां-तणा।
घड़ी-घडी घडियाल, वाजै, वसदेराव-उत ॥ २ ॥

धायो, धावंतांह गरुडै ही माठो गणै।
ग्रह उग्राहण ग्राह वारण वसदेराव-उत ॥ ३ ॥

१—भगवानकी स्तुति

१—हे राजा दशरथके पुत्र भगवान् श्रीराम, आपके चरणोंकी महिमा देखकर और शिला (शिला बनी हुई अहल्या) के उद्धारकी बात याद करके केवट नाव लेकर भाग खड़ा हुआ (यह सोचकर कि चरणोंको छूकर जब शिला स्त्री बन गई तो काठकी बनी नावके लिए ऐसा होना क्या असंभव है, और यदि मेरी नाव स्त्री बन गई तो फिर मै अपना और अपने परिवारका पेट कैसे पालूंगा)।

२—हे राजा वसुदेवके पुत्र भगवान् त्रिविक्रम, जो तुमसे विमुख है उनका माथा अवश्य ही कूटने योग्य है जैसे घडी-घडीके बाद घडियालका घटा कूटा जाता है (बजाया जाता है)।

३—हे राजा वसुदेवके पुत्र, ग्राहसे ग्रस्त हाथीकी पुकार सुनकर उसे बचानेके

दीनानाथ दयाल, तूं जोइ आधख आपरो ।
कांइ अम्ह समो कृपाल देखै, दसरथराव-उत ? ॥ ४ ॥
आयो महिमा आण त्हारी, रघुकुलका तिलक ।
पोत भयो पाखाण दीखै, दसरथराव-उत ॥ ५ ॥
तूंबी ही तारण समथ जल ऊपर पाखाण ।
ताहि तारियै, जगतरण, तइ केहा वाखाण ? ॥ ६ ॥
जद मैं थाँने जाणिया, राम, गरीबनिवाज ।
मणि-माणक मूंघा किया, सूंघा जल-तृण-नाज ॥ ७ ॥

लिए तुम दौडे और दौडते समय शीघ्रगामी गरुडको भी तुमने मदगामी समझा।

४—हे राजा दशरथके पुत्र, हे दीनोंके नाथ, हे दयालु, तुम अपने प्रभुत्वकी ओर देखो । हे कृपालु, हमारी ओर क्या देखते हो ? (अपनी महानताका ध्यान करके हमारा उद्धार कर दो, हमारे दुर्गुणोंकी ओर मत देखो क्योंकि ऐसा करनेसे हमारा उद्धार असंभव हो जायगा) ।

५—हे रघुकुलके तिलक और राजा दशरथके पुत्र श्रीराम, तुम्हारी महिमासे पत्थर भी नावकी भांति तैर गये थे, इसी तुम्हारी महिमाका ध्यान करके मैं तुम्हारे पास आया था, पर मुझे जान पडता है कि पत्थरका नाव बनना तो दूर रहा, मेरी नाव ही तुम्हारे पास आनेपर पत्थर बन गई है (प्रेमपूर्ण उपालंभ) ।

६—हे श्रीराम, तुमने जलपर पत्थर तैरा दिये तो यह कौन बड़ा काम किया ? तूँबी भी जलपर पत्थर तैरानेकी सामर्थ्य रखती है । हे जगतके तारनेवाले यदि उन्हे तैरा भी दिया तो क्या बडाई ? (बडाई तो तब है जब मुझ जैसे पापीको भी तारो) ।

७—हे राम, तब मैंने तुमको दीनोंका पालन करनेवाला समझा, जब मैंने देखा कि तुमने मणि-माणिक आदि धनवानोंके कामकी चीजोंको महँगा बनाया है और दीनोंके कामकी आवश्यक वस्तुओं जैसे जल, अनाज, घास आदिको सुलभ और सस्ता किया है ।

२—गंगाजीकी स्तुति

काया लाग्यो काट सिकलीगर सुधरे नहीं ।
निरमल होय निराट तव भेट्यॉं, भागीरथी ॥ १ ॥

ताहरउ अद्भुत ताप, मात, संसारे मानियउ ।
पाणी-मुँहड़े पाप जो तूँ जालै, जान्हवी ॥ २ ॥

कीया पाप जकेह जनम-जनममे जूजुआ ।
तैं भाँजिया तकेह भेला ही, भागीरथी ॥ ३ ॥

पुळिये मग पुळियाह दरस हुवाँ अदरस हुवा ।
जळ पैठाँ जळियाह मंदा क्रम, मंदाकिनी ॥ ४ ॥

जव-तिल जितरो जाय हेक कणूको हाडरो ।
मुवाँ पछै ही, माय, मेलै गत, भागीरथी ॥ ५ ॥

गंगा-जल गुटकीह निरणे ही लीधी नहीं ।
भव-भवमे भटकीह भून हुवा, भागीरथी ॥ ६ ॥

२—गंगाजीकी स्तुति

१—हे भागीरथी, शरीरमें लगा हुआ मायाका जंग सिकलीगरसे साफ नहीं हो सकता परन्तु तुझसे भेटनेपर वह जंग बिलकुल साफ हो जाता है।

२—हे माता जाह्नवी, तेरे अद्भुत प्रतापको समस्त संसारने मान लिया है क्योंकि तू केवल पानीके द्वारा पापोंको जलाती है (पानीसे जलाना यह एक अद्भुत बात है)।

३—हे भागीरथी, मैंने जो पाप अलग-अलग जन्मोंमें अलग-अलग किये थे उन सबको तूने एक ही साथ नष्ट कर दिया।

४—हे मंदाकिनी, जब मैं तुम्हारी ओर चला तो मेरे पाप भी अपने रास्ते लगे, जब तुम्हारा दर्शन हुआ तो वे अदृश्य हो गये, और जब मैं तुम्हारे जलमें घुसा तो वे जल गये।

५—हे माता भागीरथी, जौ या तिल जितना एक हड्डीका टुकड़ा भी यदि तुम्हारे पानी में चला जाय तो वह, मरनेके बाद भी, सद्गति दे देता है।

६—हे भागीरथी, गंगा-जलका एक घूँट प्रातःकाल भोजनके पूर्व जिन्होंने नहीं लिया वे जन्म-जन्ममें भटककर अन्तमें भूत होते हैं।

जिण थारे तट आय, उदर भरे पीधो उदक ।
मिनख जिके फिर, माय, आया नह जननी-उदर ॥ ७ ॥
नारायण—पग—नीर, मानूँ किम, मंदायणी ।
सांपड़ जेथ सरीर हर कोइ नारायण हुवै ॥ ८ ॥
दूधाँ वरणाँ पाणियाँ, मंजण करसी देह ।
वाँका उण दिन वरससी, दूधाँ—हंदा मेह ॥ ९ ॥ १६ ॥

३—करणीजीकी स्तुति

बड़कै डाढ वराह, कड़कै पीठ कमट्ठरी ।
धड़कै नाग धराह, बाघ चढै जद वीसहथ ॥ १ ॥
करनल किणियाणीह, धणियाणी जंगल-धरा ।
आलस मत आणीह, वीसहथी, लाजै विड़द ॥ २ ॥
आई विखमी, वार जे ऊपर करसी नहीं ।
सरणाई साधार कुण जग कहसी, करनला ? ॥ ३ ॥

७—हे माता, जिन मनुष्योंने तुम्हारे तटपर आकर पेट भरकर तुम्हारा पानी पी लिया वे मनुष्य फिर माताके उदरमें नहीं आये (उनका ससारमें फिर जन्म नहीं हुआ—वे आवागमनके दुःखसे छूट गये)।

८—हे मदाकिनी, मैं तुम्हे नारायणके चरणोंका जल कैसे मान लूँ, जहाँ शरीरसे स्नान करके हरकोई मनुष्य नारायण हो जाता है ।

९—बाँकीदास कहते हैं कि जिस दिन गगाके दुग्धवर्ण जलमें शरीर स्नान करेगा उस दिन मेरे यहाँ दूधका मेह बरसेगा।

३—करणीजीकी स्तुति

१—जब बीस हाथोंवाली देवी बाघपर चढ़ती है तो वाराहकी डाढें तड़क जाती है, कच्छपकी पीठ कड़कने लगती है और शेषनाग तथा पृथ्वी डगमगाने लगते हैं ।

२—हे जांगल देशकी स्वामिनी देवी करणी, आलस्य मत लाना, नहीं तो हे बीस भुजाओंवाली, तेरा विरद लज्जित होगा ।

३—हे माता करणी, सकट की अवस्था आ गई, उसपर यदि तू सहायता नहीं करेगी तो तेरी शरणको ससारमें कौन साधार (आधारवाली) कहेगा ?

सुणियाँ साद सतेज आई आगल, आवताँ ।
जगदँब, अब क्यों जेज करी इती तैं, करनला ? ४ ॥
देवी देसाणेह, धर बीकाणे तू धणी ।
जोगण जोधाणेह, मानीजै मेहासदू ॥ ५ ॥ २१ ॥

४—हे माता करणी, शब्द (पुकार) को सुननेपर तू पहले तो सदा तुरन्त ही आती थी। हे जगदम्बा, अब तूने इतनी देर क्यों की ?

५—हे माता करणी, तू देशनोकमें देवी के रूपमें, बीकानेरकी भूमिमें स्वामिनीके रूपमें, और जोधपुर-राज्यमें योगिनीके रूपमे मानी जाती है (पूजी जाती है)।

(२) नीति

१—मनस्वी पुरुष

अेकइ वन्न वसंतड़ा, अेवड अंतर काय ।
सिंघ कवड्डी ना लहै, गयवर लाख विकाय ॥ १ ॥
गयवर गळे गळथ्थियो, जहँ खंचै तहँ जाय ।
सिंघ गळथ्थण जे सहै, तो दह लाख विकाय ॥ २ ॥
जिण मारग केहर वुवो, लागी वास तिणाँह ।
ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह ॥ ३ ॥
कंथा, करक न छोडियै, हिरण किसा घी खाय ।
आंक वटूकै, पवन भख, घोड़ाँ आगळ जाय ॥ ४ ॥
भूंडण तो भूंडा जिणै, हिरणी जिणै सुगठ्ठ ।
पान खडक्कै उठ चलै, थागड़ चालै थठ्ठ ॥ ५ ॥

१—मनस्वी पुरुष

१—सिंह और हाथी अेक ही वनके रहनेवाले है, फिर इतना अन्तर क्यों ? सिहका तो एक कौडी भी मोल नही होता और हाथी लाखोंमें बिकता है ?

२—हाथीके गलेमें बधन पडा रहता है जिससे वह जिधर खीचा जाय उधर ही चला जाता है। यदि सिंह अैसे गलेके बधनको सह सके तो वह अेक क्या दस लाखमें बिके !

३—जिस मार्गसे सिंह अेक बार भी गया है और जिस घासको उसकी गन्ध लग गई है, उस मार्गवाले और उस घासवाले खेत खडे-खडे ही सूखेंगे, हिरन उन्हे नहीं चरेंगे (उनको तो उधर देखनेकी भी हिम्मत नहीं होगी)।

४—हे कंत, अपनी कडक मत छोडो। हरिनोंको देखो, वे कौन घी खाते है, आक और वायु ही उनका भोजन है। पर फिर भी जब दौडते हैं तो घी खानेवाले घोडोंसे भी आगे निकल जाते है।

५—भूंडण—शूकरी। भूंडा—कुरूप। जिणै—जनती है। सुगठ्ठ—सुरूप। खड़क्कै—खुडकनेपर ही। थागड इ०—शानके साथ निर्भीक होकर धीरे-धीरे चलते है।

हूँ जाण्यो, धोळो मुयो, खाली हुयग्यो वग्ग।
वाड़े उणहिज वाछड़ू औरूँ तांडण लग्ग ॥ ६ ॥
सिर नह सींगी संचरी, पगाँ न ठेठर बंध।
दूध पिवंते वाछड़ू दियो महाभड़ कंध ॥ ७ ॥
हाथळ-बळ निरभै हियो, सरभर नको समथ्थ।
सींह अकेला संचरै, सींहाँ केहा सथ्थ ॥ ८ ॥
कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै सुपह।
लंक विकट गढ लीध रींछ-वाँनराँ, राजिया ॥ ९ ॥
लावा-तीतर लार कर हाका भागै किता।
सिघाँ-तणी सिकार कोइक आणै, किसनिया ॥ १० ॥

२—महापुरुष

वडा वडाई ना करै, वड़ा न बोलै बोल।
हीरा मुखसे ना कहै, लाख महारा मोल ॥ १ ॥
तन चोखा, मन ऊजळा, भीतर राखै भाव।
किणका बुरा न चींतवै, ताकूँ रंग चढाव ॥ २ ॥

६—धोलो—उत्तम जातिका बैल। वग्ग—वर्ग, बाडा। उणहिज इ०—उसीका बछड़ा। औरूँ—और भी (अधिक)। ताँडण—दहाडने।

७—नह—नहीं। सींगीं—सींग। ठेठरबन्ध—पैरकी ठठरी या हड्डी का बँधना। महाभड़—बडा योद्धा।

८—हाथळ—हथेली। सरभर इ०—बराबरी करनेमें कोई समर्थ नहीं। सचरै—घूमते हैं। केहा—कैसे। सीहाँ—सिहोंके।

९—कारण इ०—सेना (विजयका) कारण नहीं होती, मालिक वीर होने चाहिए। देखो लका जैसे दुर्गम गढ़को साधारण रीछ-बन्दरोंने फतह कर लिया।

१०—हाका—शोर। किता—कितने ही, बहुत-से। तणी—की।

२—महापुरुष

१—महारा—मेरा।

२—भीतर—हृदयमें। भाव—सद्भाव। किणका इ०—किसीका बुरा नहीं सोचते। रग चढाव—धन्य-धन्य कहो।

धनकूं ऊंडा नह धरै, भीतर राखै भाव ।
भागी फौजाँ भेड़वै, तिणकूं रंग चढाव ॥ ३ ॥

रहणा इकरगाह, कहणा नहिं कूडा कथन ।
चित उज्ज्वल चंगाह, भला ज कोइक, भैरिया ॥ ४ ॥

काछ दृढा, कर व्रसणा, मन चंगा, मुख मिट्ठ ।
रण-सूरा, जग व्लभा, सो मैं विरला दिट्ठ ॥ ५ ॥

कतरण, सीवण, केवटण, लै दरजी चित चोर ।
रजधानी तंत्रू रचै, ते नरनायक ओर ॥ ६ ॥

पूरा सहजै गुण करै, गुण ना आवै छेह ।
सायर पोखै, सर भरै, दाण न माँगे मेह ॥ ७ ॥

हाथी हींडत देख, कूकर लव लव कर मरै ।
वडपण-तणे विवेक, क्रोध न आणै, किसनिया ॥ ८ ॥ १८ ॥

३—सज्जन

तरवर, सरवर, संतजन, चोथो व्रसण मेह ।
परमारथरे कारणे च्यारां धारो देह ॥ १ ॥

३—ऊंडा—गहरा (गाडकर)। भागी इ०—भागी हुई सेनाओंको फिर लड़नेके लिअे तैयार करे।

४—इकरंगाह—अेकरस । कूडा—भूठ । भला इ०—अैसे भले पुरुष कोई अेकाध ही होते हैं।

५—काछ दृढा—लगोटके पक्के, पक्के ब्रह्मचारी । कर व्रसणा—दानी । व्लभा—प्यारे । विरला—विरले ।

७—पूरा—पूरे मनुष्य । छेह—अन्त । गुण—उपकार । सायर—सागर । दाण—कर । मेह—मेघ ।

८—हींडत—भूमता हुआ । लव-लव—कुत्तेकी आवाज । वडपण-तणे—वडप्पनके । आणै—हृदयमें लाता है । किसनिया—कविका नाम ।

३—सज्जन

१ व्रसण—वरसने वाला । च्यारां—चारोंने ।

तरवर कदे न फळ भखै, नदी न संचै नीर ।
परमारथरे कारणे साधाँ धरयो सरीर ॥ २ ॥
तखत विराज्या जानरा', संत विराज्या खाट ।
केवळकूबो यूँ कहै, दोनोंमें कुण घाट ॥ ३ ॥
दरसण जातां साधके जेता दीजे पाँव ।
पैंड-पैंड असमेद जिग फळै स मनको भाव ॥ ४ ॥
सज्जण थोड़ा हंस ज्यूँ विरळा कोइ दीसंत ।
दुरजण काळा नाग ज्यूँ महियल घणा भमंत ॥ ५ ॥
निज गुण ढाँकण,नेक नित, परगुण गिण गावंत ।
अैसा जगमें सुजण जण विरळा ही पावंत ॥ ६ ॥
दुरजणरी किरपा बुरी, भली सुजणरी त्रास ।
जद सूरज गरमी करै जद वरसणरी आस ॥ ७ ॥२५॥

४—सच्चा मित्र

साँचो मित्र सचेत, कहो,काम न करै किसो ।
हर अरजनरे हेत रथ कर हाँक्यो, राजिया ॥१॥

---

२ भखै—खाते हैं । सचै—जमा रखती हैं । साधाँ—साधुओंने ।

३ तखत—सिंहासनपर । जानराय—भगवान् । केवलकूबो—कविका नाम । दोनोंमें इ०—दोनोंमें कौन घटकर है ।

४ जाताँ—जाते हुए । पैड-पैड—पग-पगपर । असमेद जिग—अश्वमेध यज्ञ । फळै—फल पाता है ।

५ महियल—पृथ्वीपर । घणा—बहुत । भमत—घूमते हैं ।

६ ढाँकण—ढकनेवाले, छिपानेवाले । गिण—गिन-गिनकरके । अैसा—अैसे । सुजण—सज्जन । पावंत—मिलते हैं ।

७ जद—जब । जद—तब ।

४—सच्चा मित्र

१ किसो—कौनसा । हर—हरि, कृष्ण ।

सगा सनेही ओर नर सुखमें मिलै अनेक ।
विपत पड़्याँ दुख वाँट लै, सो लाखनमें अेक ॥ २ ॥
मिंत ज ओगण मिंतका अनत नहीं भाखंत ।
कूप छाँह ज्यूँ आपणी हीयेमें राखंत ॥ ३ ॥२८॥

५—संगतिका फल

जैसी संगत बैठिये तैसी इज्जत थाय ।
सिरपर मखमल सेहरे पनही मखमल पाँय ॥ १ ॥२९॥

६—सत्संगति

संगत कीजै साधकी, हठ कर कीजै मोह ।
करम कटै, कालू कहै, तिरै काठ सँग लोह ॥ १ ॥
मलयागिर मँझार हर कोइ तरु चंदण हुवै ।
संगत लहै सुधार, रूँखाने ही, राजिया ॥ २ ॥ ३१ ॥

---

२ ओर—और, दूसरे। मिलै—मिलते है। पड्याँ—पडनेपर।

३ मिंत—मित्र। ज—अवधारणसूचक अव्यय। अनत—अन्यत्र। कूप इ०—जैसे कुँआ अपनी छायाको अपने ही भीतर रखता है वैसे ही सच्चे मित्र मित्रके अवगुणोंको हृदयमें ही रखते हैं, किसीके सामने प्रकाशित नहीं करते।

५—संगतिका फल

१—थाय—होती है। सेहरे इ०—मुकुटमें मखमल लगा होता है तो सिरपर रहता है, जूतीमें लगा होता है तो पैरोंमें।

६—सत्संगति

१—मोह—प्रेम। करम—पूर्व-सचित कर्म। कालू—कविका नाम। तिरै—तर जाता है।

२—मलयागिर—मलयाचल, जहाँ चदन बहुत होता है। रूँखाने ही—पेड़ोंको भी।

७—कुसंगति

ओछेको सॅग-साथ, अहमद, तजो अॅगार ज्यूॅ ।
तातो जाळै हाथ सीरो कर काळो करै ॥ १ ॥
पुन्न गया परवार, सज्जन-साथ छुट्या जदै ।
दुरजण-जणरी लार रोता फिरवै, राजिया ॥ २ ॥
कहो, नफो किण काढियो लुच्चो पले लगाय ?
हींग-तणे सॅग हालियो म्रगमद मजो गमाय ॥ ३ ॥
सट्ठ-सभामें बैठताँ पत पंडितरी जाय ।
अेकण वाड़े किम वड़ै रोभ, गधेड़ो, गाय ॥ ४ ॥३५॥

८—दुर्जन

मुख ऊपर मीठास, घट माँही खोटा घड़ै ।
इसड़ाँसूॅ इखलास राखीजै नहिं, राजिया ॥ १ ॥
मिळियाँ अत मनवार, वीछड़ियाँ भाखै वुरी ।
लानत दे ज्याँ लार - रजी -उडावो, राजिया ॥ २ ॥

७—कुसंगति

१—सीरो—ठंडा, बुझा हुआ ।

२—पुन्न इ०—पुण्य नष्ट हो गये । जदै—जब । लार—पीछे । फिरवै—फिरते हैं ।

३—नफो—लाभ । म्रगमद—कस्तूरी, हींगके साथ रहनेसे कस्तूरीकी सुगंध दब जाती है ।

४—पत—प्रतिष्ठा । पडितरी—पंडितकी । अेकण—अेक ही । वड़ै—भीतर जावें, रहे । रोभ—गायकी किस्मका अेक जानवर ।

८—दुर्जन

१—घट इ०—हृदयमें बुरी बाते सोचते रहे। इसडाँसूॅ इ०—अैसोंसे मित्रता का सबध नहीं रखना चाहिए ।

२—मिळियाँ—मिलनेपर । अत मनवार—बहुत-सी मनुहार करते हैं । ज्याँ लार—उनके पीछे । रजी इ०—धूल उछालो ।

मतलबरा पाजी कर जोड्यॉं विनती करै ।
विन मतलब राजी बोलै नहि वै, बाघजी ॥ ३ ॥
रज्जब, पारस परसकै मिटगो लोह विकार ।
तीन वात तो ना मिटी वॉंक, धार अरु मार ॥४॥ ३९ ॥

९—कृतघ्न

कीधोडो उपगार नर कृतघण मानै नहीं ।
लानतियॉं ज्यॉं लार रजी उडावो, राजिया ॥ १ ॥
खोदा, अन-जल खाय खल तिणरी खोटी करै ।
जड़ॉं-मूलसूँ जाय राम न राखै, राजिया ॥ २ ॥
उणही ठाम अरोग भाजणरी मनमे भणै ।
आ तो वात अजोग राम न भावै, राजिया ॥ ३ ॥४२॥

१०—कुमित्र

गिरसूँ पडियै धाय, जाय समंदॉं डूबियै ।
मरियै महुरो खाय, मूरख मित्र न कीजियै ॥ १ ॥

३—कर इ०—हाथ जोडे हुए ।

४—लोह—लोहा, हथियार । वॉंक—टेढ़ापन । मार—मारनेकी शक्ति ।

९—कृतघ्न

१—कीधोडो—किया हुआ ।

२—खोदा—अे खुदा । अन-जल—अन्न-जल । तिणरी—उसीकी । खोटी—बुराई । राखै—रक्षा करता है, बचाता है ।

३—उणही—उसी । ठाम—पात्र, वर्त्तन । अरोग—भोजन करके । भाजणरी—तोड़ डालनेकी । आ—यह । वात—बात । अजोग—अनुचित । भावै—अच्छी लगती है ।

१०—कुमित्र

१— गिरसूँ—पहाड़से । समदॉं—समुद्रोंमें । महुरो—जहर ।

संपतमे संसार, हर-कोई हेतू हुवै ।
विपत पड़्यांरी वार नैण न निरखै, नाथिया ॥ २ ॥
सुधरीमें सो वार मदत करै मन-मोडिया ।
विगड़ीमे इक वार कोइ न रैवै, किसनिया ॥ ३ ॥
पल-पलमे करै प्यार, पल-पलमें पलटै परा ।
अै मुतलबरा यार, रहजे अलगो, राजिया ॥ ४ ॥
पल-पलमें करै प्यार, पल-पलमे पलटै परा ।
लानत दे ज्यां लार रजी उडावो, राजिया ॥ ५ ॥
सुखमें प्रीत सवाय दुखमें मुख टाळा दिवै ।
जे के कहसी जाय राम-कचेड़ी, राजिया ॥ ६ ॥४८॥

११—ओछे पुरुष

मिणधर विख अणमाव, मोटा नह धारै मगज ।
वीछू पूँछ वणाव राखै सिरपर, राजिया ॥ १ ॥
गहवरियो गजराज मद छकियो चालै मते ।
कूकरिया वेकाज रोय भुसै क्यूं, राजिया॥ २ ॥

२—हेतू—हितकारी, प्रेमी, मित्र । वार—समय ।

३—मदत—सहायता । रैवै—(साथ) रहता है ।

४—पलटै परा—बदल जाते हैं । मुतलब—स्वार्थ । अलगो—दूर ।

६—सवाय—सवाई, अधिक । मुख इ०—मुख छिपा लेते हैं । जे इ०—वे ईश्वर-की कचहरीमें जाकर क्या जवाब देंगे ।

११—ओछे पुरुष

१—मिणधर—मणिधर, साँप । विख—जहर । अणमाव—अनमाप, बहुत । नह—नहीं । मिणधर इ०—साँपोंके बहुत विष होता है पर तो भी वे उसे मस्तक पर नही रखते, उधर तुच्छ बिच्छू थोडे-से विषवाली पूँछको सँवारकर सिरपर रखे रहता है ।

२—गहवरियो—मस्त, गभीर । मतै—स्वेच्छापूर्वक । चालै—चलता है । वेकाज—व्यर्थ । भुसै—भौंकते हैं ।

मद विद्या धन मान ओछा से उकलै अवस।
आधणरे उनमान रहै क विरला, राजिया॥ ३ ॥५१॥

१२—अविवेकी पुरुष

कुन्नण पीतल कूंत अेक रीत कर आदरै।
है उण ठाकुर-हूंत भाखर सखरा, भैंरिया॥ १ ॥
खल गुड अणकूंतां अेक भाव कर आदरै।
ते नगरी-हूंतां रोही आछी, राजिया॥ २ ॥
गुण-ओगण जिण गांव सुणै न कोई सांभलै।
मच्छ गलागल मांय रहणो मुसकल, राजिया॥ ३ ॥
सुध-हीणा सिरदार, बुध-हीणा राखै मिनख।
अस आंधो असवार राम रुखालो, राजिया॥ ४ ॥
सतहीणा सिरदार मतहीणा राखै मिनख।
अंध घोड़ी असवार राम रुखालो, राजिया॥ ५ ॥
नान्हा मिनख नजीक, उमरावां आदर नहीं।
ठाकर जिणने ठीक रणमें पडसी, राजिया॥ ६ ॥५७॥

३—से—वे। उकलै—उबल पडते है। आधण इ०—अदहन के अनुसार।

१२—अविवेकी पुरुष

१—कुन्नण इ०—सोने और पीतल (के मोल) को आंककर जो दोनोंकी अेकही-सी कदर करता है उस ठाकुरसे पत्थर ही अच्छे।

२—खल-गुल—खली और गुड। अणकूतां—विना जांचे हुअे ही। हूंतां—अपेक्षा। रोही—जगल।

३—सुणै, सांभलै—सुनता है। मच्छ गलागल—जहाँ बलवान दुर्वलोंको सताते हैं। रहणो—निवास। मुसकल—मुश्किल।

४—हीणा—हीन। मिनख—मनुष्य, सेवक। अस०—अैसे अंधे असवार-का रक्षक राम ही है।

६—नान्हा—छोटे। नजीक—पास (रहते हैं)। उमरावां—उमरावोंका, सच्चे सरदारों का। जिणने—उसको। ठीक पडसी—पता लगेगा, मालूम होगा।

१३—मूर्ख

पाणीमे पाखाण भीजै पर छीजे नहीं।
मूरख आगे ग्यान रीझै पर बूझै नहीं ॥ १ ॥

मूरखकूं पोथी दिवी वांचणकूं गुणगाथ।
जैसें निरमळ आरसी दी आंधेके हाथ ॥ २ ॥

मूरखने समझावतां ग्यान गांठरो जाय।
कोयलो होय न ऊजळो, सो मण साबण लाय ॥ ३ ॥

काग पढायो पींजरे, पढग्यो च्यारूं वेद।
समझायो समझै नहीं, रह्यो ढेढ-रो-ढेढ ॥ ४ ॥

हिये मूढ जो होय, की संगत ज्यांरो करै ?
काळे ऊपर कोय रंग न लागै, राजिया ॥ ५ ॥

आवै वुसत अनेक हद नाणो गांठै हुयां।
अकल न आवै अेक क्रोड़ रुपैयां, किसनिया॥ ६ ॥

वडा भया तो क्या भया, जे बुध उपजी नांय।
सुसै सिंघ, काळू कहै, डार्‌या कूवै मांय ॥ ७ ॥६४॥

१३—मूर्ख

१—पाणी—पानी। छीजै—घटता है। बूझै—समझता है।

२—दिवी—दी। आरसी—दर्पण।

३—गांठको—अपना। सो मण इ०—सौ मन साबुन लगानेसे भी।

४—ढेढ—एक जाति जो प्रायः भोलेपन अेव मूर्खता के लिअे प्रसिद्ध है, अतः मूर्ख।

५—की—क्या। ज्यांरो—उसका।

६—वुसत—वस्तुएँ। नाणो—पैसा, धन। गांठे हुयां—पासमें होनेसे। क्रोड़—करोड़।

७—बुध—बुद्धि। सुसै—खरगोशने सिंहको भी कुएँमें डाल दिया (हितोपदेश की प्रसिद्ध कथाकी ओर संकेत)।

१४—उदारता

कहा लंकपत ले गयो, करण गयो कहा खोय ?
जस जीवण अपजस मरण कर देखो सब कोय ॥ १ ॥
नाम रहंदा, ठाकरां, नाणा नहीं रहंद ।
कीरत-हंदा कोटडा पाड्या नांय पडंद ॥ २ ॥
दीया वुसत्र अनूप है, दिया करो सब कोय ।
घरमे धरा न पाइये, जे कर दिया न होय ॥ ३ ॥६७॥

१५—कंजूस

बावन आखरमें वडो नन्नो आखर सार ।
दद्दो तो जाणूं नहीं, लल्ले आखर प्यार ॥ १ ॥
सूमण पूछै सूमसूँ, काहे मुख्ख मलीन ।
का गांठीसे गिर पड्या, का काहूको दीन ॥ २ ॥
ना गांठीसे गिर पड्या, ना काहूको दीन ।
देवत देख्या ओरकू, ज्यांसूँ मुख्ख मलीन ॥ ३ ॥

१४—उदारता

१—लंकपत—रावण । करण—प्रसिद्ध दानी कर्ण ।

२—रहंदा—रहता है । ठाकरां—हे ठाकुर साहब । हंदा—के । कोटड़ा—किले । पाड्या इ०—गिरानेसे भी नहीं गिरते ।

३—दीया—दिया हुआ, दान । दिया—दान, दीपक ।

१५—कंजूस

१—नन्नो—नकार, याचकको इनकार कर देना । दद्दो—दकार, देना । लल्लो—लकार, लेना ।

२—सूमण—कंजूसकी स्त्री ।

३—देवत इ०—दूसरेको दान करते देखा । ज्यांसूँ—उससे ।

कीड़ी पण पावै नही अ-दतारां घर आय।
ओर घरांसूं आणियो, जिको गमाड़ै जाय ॥ ४ ॥
'दियो' सबद सुणतां दुसह तन-मन लागै लाय।
सूम दियो न करै सदन परब दियाळी पाय ॥ ५ ॥७२॥

१६—परोपकार

घर-कारज सीलावणा, पर-कारज समरथ्थ।
ज्यांने राखै सांइया आडा दे-दे हथ्थ ॥ १ ॥
मर ज्याऊं, मांगूं नहीं, निज स्वारथरे काज।
परमारथरे कारणे, मोय न आवै लाज ॥ २ ॥
पंछिनके पीयेनते, कहा घटत है नीर ?
खरची लछमी ना घटै, सनमुख जो रुघवीर ॥ ३ ॥७५॥

१७—मधुर भाषण

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै।
कड़वो लागै काग, रसनारा गुण, राजिया ॥ १ ॥

४—अदतारां—कजूसोंके। ओर—दूसरोंके। आणियो—लाई। जिको—वह। गमाड़ै—खो बैठती है। जाय—कजूसके यहाँ जाकर।

५—लाय—ज्वाला, आग। सदन—घरमें। परब—त्यौहार। दियाळी—दिवाली।

१६—परोपकार

१—घर इ०—अपने काममें देर करनेवाले। समरथ्थ—(तुरत) करनेवाले।

२—ज्यांने—उनको। साँइया—परमात्मा।

३—पीयेनते—पीनेसे। लछमी—लक्ष्मी। सनमुख—सानुकूल। रुघवीर—श्रीराम।

१७—मधुर भाषण

१—कड़वो—कटु। काग—कौवा। रसना—जिह्वा, बोली।

सुक-पिक लगै सवाद, भल थोड़ो ही भाखणो।
व्रथा करै वकवाद, भेक लवै ज्यूँ भैरिया ॥ २ ॥
कागा किसका धन हरै, कोयल किसकूं देय ।
मीठो वचन सुणायकर जग अपणो कर लेय ॥ ३ ॥
पाटा पीड उपाव तन लागाँ तरवारियाँ।
वहै जीभरा घाव, रती न ओखद, राजिया ॥ ४ ॥७६॥

१८—आदर-भाव

आवत मुख विगसै नहीं, जावत नहि कँमलाइ।
सम्मन, अैसे नीचके नीच हुवै सो जाइ ॥ १ ॥
आवत ही जो हंस मिलै, जावत देवे रोय।
टूटी वाकी भूँपडी सम्मनका घर सोय ॥ २ ॥
आव नहीं, आदर नहीं, नहीं भगति, नहि प्रेम।
हस कुसला पूछै नहीं, खड़ा न रहिये, खेम ॥ ३ ॥
दादू, आदर-भावका मीठा लागै मोठ।
विण आदर व्यंजन बुरा, जीमणवाला ठोठ ॥ ४ ॥
आदर करै अपार, तो भोजन भाजी भली।
आणै मन अहंकार, कड़वा घेवर, किसनिया ॥ ५ ॥

२—सवाद—रुचिकर, स्वादिष्ट। भल—भले ही, चाहे । भेक—मेंढ़क। लवै—बोलते हैं।

४—पाटा इ०—शरीरमे तलवार (का घाव) लगनेपर मलहम पट्टीसे पीड़ाका उपाय हो सकता है, परन्तु वे जो जीभके घाव हैं उनकी रत्तीभर भी दवा नहीं।

१८—आदर-भाव

१—विगसै—खिल जाता है। कँमलाय—कुम्हलाता है।

३—आव—आवभगत। कुसला—कुशलक्षेम। खेम—कविका नाम।

४—मोठ—अेक साधारण अन्न। व्यजन—पकवान। जीमणवाला इ०—उनके जीमनेवाले मूर्ख है।

५—भाजी—मामूली सागपातका भोजन। आणै—मनमें अहकार लावे तो।

हंसा तो तब लग चुगै, जब लग देखै लाग।
लाग-विहूणा जे चुगै, हंस नहीं ते काग ॥ ६ ॥
उठै न आदर-आव, हित चित वात न ह्वै हुलस।
परत न दीजे पाँव, मन तूटाँ-घर, मोतिया ॥ ७ ॥८६॥

१९—धन-महिमा

धनवालाँरे धाम जाँण बिना जावै स जन।
निरधणियाँरो नाम कोइ न पूछै, किसनिया ॥ १ ॥
कोडी विन कीमत नहीं, सगा न राखै साथ ।
हुवै ज नाणो हाथमें, वैरी बूझै वात ॥ २ ॥
दोलतसूँ दोलत बधै, दोलत आवै दोर ।
जस होवै सब जगतमें, जोबन आवै जोर ॥ ३ ॥
दालद घर दोलो हुवै, परणी नावै पास।
रुपिया होवै रोकड़ा, सोरा आवै साँस ॥ ४ ॥
कलजुगमें कलदार विन भायाँ पड़ियो भेव ।
जिण घर माया जोरमें, दरसण आवै देव ॥ ५ ॥
रुपियाँ विन रागाँ करै, हाजर जोड़ै हात ।
अेक अधेली आडमें, बोलो सुण ले वात ॥ ६ ॥

६—लाग—प्रेम। विहूणा—बिना, रहित।

७—हित—प्रेम। हुलस—आनंदित होकर। परत—प्रत्यक्ष, भूलकर भी। मनतूटाँ—जिनके मनमें प्रेम नहीं रह गया है उनके।

१९—धन-महिमा

१—जाँण—जान-पहचान। निरधणियाँरो—निर्धनोंका।

२—कोडी—धन। सगा—संबंधी, भाईबन्धु। हुवै—यदि हो। नाणो—रुपया।

४—दालद—दारिद्र्य। दोलो हुवै—चारों ओरसे घेर लेता है तो। परणी—स्त्री। नावै (न आवै)—नहीं आती है। रोकडा—नकद। सोरा—सुखपूर्वक।

५—कलदार—कलदार, रुपया। भायाँ—भाइयोंमें। भेव—भेद, फर्क।

६—रागाँ करै—दूसरों के सामने गीत गाते हैं तो भी कोई नहीं सुनता। अधेली—अठन्नी। बोलो—बहरा।

घरधारी घबराय ने, भणिया माँगै भीक।
नाणो ले प्रभु-नाँवरो ठरै काळजो ठीक ।। ७ ।।
विविध वणाय-वणाय जुगत घणी रचियो जगत।
कीधी वुसत न काय रुपिया सरसी, राजिया।। ८ ।।
बँध बाँध्या छुडवाय, कारज मनचींता करै।
कहो चीज है काय, रुपिया सरसी, राजिया।। ९ ।।
गोड़ो पूछै, गोडिया, किसो भलेरो देस ।
संपत होय तो घर भलो, नहीं भलो परदेस ।।१०।।९६।।

२०—प्रारब्ध

सुण कूँभा, रावण कहै, आण भराणा अंक ।
पाँवाँ पड़ियाँ ना रहै लाखाँ वाताँ लंक ।। १ ।।
हरी लिखाया वेह लिख्या लिख-लिख घाल्या अंक।
राई घटै न तिल वधै, रह, रे जीव, निसंक ।। २ ।।
नहचै होय निसंक, चित नह कीजै चळ-विचळ।
अै विधनारा अंक राई घटै न, राजिया ।। ३ ।।

७—घरधारी—घरवारी, गृहस्थी। ने—और। भणिया—पढे हुए। भीक—भीख। ठरै—शीतल होता है। कालजो—कलेजा ।

८—जुगत—युक्तियाँ। कीधी—की, बनाई। सरसी—समान।

९—बँध—बधन। मनचींता—मन द्वारा सोचे हुअे। काय—कोई।

१०—किसो—कौन-सा। भलेरो—भला। सपत—धन। नहीं—नही तो।

२०—प्रारब्ध

१—कूँभा—कुभकर्ण, रावणका छोटा भाई। आण इ०—होनहार आ पहुँची है। पाँवाँ पडियाँ—पैरों पडनेसे। लाखाँ वाताँ—निश्चयही, लाख उपाय करने से भी।

२—हरी—भगवान। वेह—विधि, विधाता। घाल्या अक—लेख डाले।

३—नहचे—निश्चय। नह—नहीं। चल विचल—विचलित। अै—ये।

सम्मन, संपत-विपतमे　जे भूरै ते कूर ।
मासा घटै न तिल वधै　जे विध लिख्या अँकूर ॥ ४ ॥

उद्दम करो अनेक,　अथवा अण-उद्दम करो ।
होसी निहचै हेक　राम करै सो, राजिया ॥ ५ ॥

अणहोणी होवै नहीं,　होणी हो सो होय ।
लाख सैंणप अर क्रोड बुध　कर देखो सब कोय ॥ ६ ॥

सो वूँगी कटवण मिलै,　मस्तक लिख्या सो होय ।
लेख लिख्याकू, बालका,　मेट न सकै कोय ॥ ७ ॥

हिकमत करो हजार,　गढपतियाँ जाँचो घणा ।
धीरज, मिलसी, धार　करम-प्रवाणे, किसनिया ॥ ८ ॥

सोनो घड़ै सुनार,　कंदोई खाजा करै ।
भोगै भोगण-हार　करम-प्रवाणे, किसनिया ॥ ९ ॥

दाख भखे मुख पकत है,　होत कागकूं रोग ।
भागहीणकूँ ना मिलै　भली वसतको भोग ॥१०॥

कठै कासी, कठै कासमिर,　कठै जिला गुजरात ।
दाणो-पाणी परसरा,　बाँह पकड़ ले जात ॥११॥

परालबधका पावणा,　देख दईका खेल ।
भभ्भीखणने लंक, अर　हडूमानने तेल ॥१२॥१०८॥

४—कूर—नीच । मासा—एक तोलेका बारहवाँ हिस्सा । अँकूर—अंक, लेख

५—उद्दम—पुरुषार्थ । अण-उद्दम इ०—उद्योग न करो । होसी—होगा हेक—अेक ।

६—सैंणप—सयानपन, चतुराई । क्रोड—करोड । बुध—बुद्धिमानी ।

७—सो—सैकडों । कटवण—बुरा करनेवाले ।

८—हिकमत—युक्ति । घणा—बहुत । धीरज इ०—भाग्यके अनुसार मिल ही जायगा अतः धीरज रखो ।

९—कंदोई—हलवाई ।

१२—परालबध इ०—प्रारब्धसे प्राप्ति होती है । दई—विधाता । भभ्भीखण—विभीषण । हडूमान इ०—हनुमानजीके तेल-सिंदूर चढ़ाते हैं ।

२१—उद्योग

राम कहै सुगरीवने, लंका केती दूर ?
आलसियाँ अलघी घणो, उद्दम हाथ, हजूर ॥ १ ॥
उदैराज, उद्दम कियाँ सब कुछ होवै त्यार ।
गाय-भैस कुलमे नहीं, दूध पिवै मंजार ॥ २ ॥११०॥

२२—गरज (स्वार्थ)

हुती गरज मन ओर था, मिटी गरज मन ओर ।
उदैराज, मनकी प्रकृति रहै न अेकी ठोर ॥ १ ॥
मतलबरी मनवार, चुपकै लावै चूरमो ।
मतलब विन मनवार राब न पावै, राजिया ॥ २ ॥
गरज-दिवाँणी गूजरी अब आई घर कूद ।
सावण छाछ न घालती, जेठ परोसै दूध ॥ ३ ॥११३॥

२३—अवसर-नाश

समझदार सूजाण नर ओसर चूकै नहीं ।
ओसररो ओसाण रहै घणा दिन, राजिया ॥ १ ॥

२१—उद्योग

१—आलसियों इ०—आलसियोंके लिअे बहुत दूर है और उद्यम करनेवालोंके लअे हाथहीके पास है ।

२—कियाँ—करने से । त्यार—तय्यार । मजार—मार्जार, बिल्ली ।

२२—गरज

१—हुती इ०—(जब गरज) थी तब । प्रकृति—स्वभाव । अेकी—अेक ही ।

२—मनवार—मनुहार । चूरमो—अेक मिठाई । चुपकै—चुपचाप । राब—रावड़ी, मट्ठेमे आटा डालकर पकाया हुआ अेक भोजन । पावै—पिलाता है ।

३—गरज-दिवाँणी—गरज से दीवानी बनी हुई । गूजरी—अहीरिन, ग्वालिन । छाछ—मट्ठा । घालती—डालती, देती । परोसै—परोसती है, देती है ।

२३—अवसर-नाश

१—ओसर—अवसर । ओसाण—अहसान । घणा—बहुत ।

बंधु विदेसाँ उठ गया, तरुणी तज्यो सनेह ।
क्रुषी नास, पसु मर गया, (अब) दुधाँ वरसो मेह ॥ २ ॥
आधो रहग्यो ऊँखली, आधो रहग्यो छाज ।
सागर-सट्टे धण गई, (अब) मधरो-मधरो गाज ॥३॥
घर छूटा, पंथी मुवा, वाला गया वदेस ।
अब भल वूठा मेहड़ा, वरसत काह करेस ? ॥ ४ ॥११७॥

२४—नशेकी निंदा

१—तमाखू

हे कंता, काँई करै हाय, तमाखू हेत ।
दिन-ऊगाँई टाटमे दोय टकाँकी देत ॥ १ ।

२—दारू (शराव)

आम फलै परवारसूँ, महू फलै पत खोय ।
ताको रस जे कोई पियै, अकल कठासूँ होय ? ॥ २ ॥

२—तरुणी – स्त्री । अब इ०—जब इतनी बाते हो चुकीं तब फिर चाहे दूधका ही मेह बरसे तो भी क्या लाभ ?

३—ऊँखली—ओखलीमें । छाज—सूर्प । साँगर—शमी पेडकी फलियाँ, साधारण निकृष्ट खाद्य । सट्टे—बदले । साँगर इ०—अकालमें मैंने तो साँगरियोंके लिअे पत्नीको वेच दिया अब, हे बादल, चाहे तू मीठे स्वरसे गरज, मुझे क्या लाभ ?

४—मुवा—मर गये । वाला—प्यारे । वदेश—परदेश । वूठा—बरसा काह करेस—क्या करेगा ।

२४—नशेकी निंदा

१—काँई—क्या । ऊगाँई—उगते ही । टाटमे इ०—दो टके व्यर्थ ही नाश कर देते हो ।

२—परवारसूँ—परिवारके साथ । महू—महुआ । पत—पत्ते । ताको रस—महुवेके रससे शराब बनता है । कठासूँ—कहाँसे ।

मद पीतां मुजरो करै, ईंको कोण विचार ?
अकल कहै, जी ठाकरां, जाती करूँ जुहार ॥ ३ ॥
बुध्धभ्रष्ट, व्याकुल वचन, तन नहि पावै पोख ।
इणं दारूमे कोण गुण, दाम लगै अर दोख ? ॥ ४ ॥
तन छीजै, जोवन हटै, घटै वयस, धन, धर्म ।
मदगत पसगत अेक-सी, ज्यांमें हया न शर्म ॥ ५ ॥
दारू-परदारा दुहूँ है तन-धनरी हाँण ।
नर, सांप्रत देखो नजर नफो ओर नुकसांण ॥६॥१२३॥

२५—हिंसाकी निंदा

जीव मार हिंसा करै, खाता करै वखाण ।
पींपा, परतक देख ले थालीमे समसाण ॥ १ ॥
खुस खाणा है खीचडी, मांहे टुकियक लूँण ।
मांस पराया खायके गला कटावै कूँण ॥२॥१२५॥

२६—परस्यां विना

नीर-तीर तडफै पडयो, धीर न धारै मीन ।
निकट,तऊ पल है विकट परस्यां विना, प्रवीण ? ॥ १ ॥

३—पीतां—पीते समय। मुजरो—जुहार, अभिवादन । ईंको—इसका । जाती—जाती हुई, विदा लेती हुई ।

४—पोख—पोषण, पुष्टि । दारू—शराब । अर—और । दोख—दोष, हानि ।

५—वयस—उम्र । पस-गत—पशुकी हालत । हया—लज्जा ।

६—हांण—हानि-कारक । सांप्रत—प्रत्यक्ष । नफो—लाभ ।

२५—हिंसाकी निंदा

१—खाता—खाते हुए। पींपा—कविका नाम। परतक—प्रत्यक्ष । समसाण—मसान । २—खुस—सुखका । लूँण—नमक । कूँण—कौन ।

२६—परस्यां विना

१—निकट जल—पास है तो भी। पल है विकट—क्षणक्षण कठिनतामे बीतता है। परस्यां विना—विना छुए ।

ग्रीखम गिर लाग्या जरन, सरवर निकट पुलीन ।
बूझैगो कैसे विपिन परस्यां विना प्रवीण ? ॥ २ ॥
गंगा, जमना, सरसुती लहर त्रिवेणी लीन ।
निकट गया, पातक रया परस्यां विना, प्रवीण ॥ ३ ॥
श्रीमंडल, वीणा, मुरज, धरया सरस रसभीन ।
मधुरे सुर वाजै नहीं परस्यां विना, प्रवीण ॥ ४ ॥
लोह-पुंज इतको धरयो, इत पारसमणि दीन ।
सो कंचन कैसे वणै परस्यां विना प्रवीण ॥ ५ ॥
अमरितको भाजण निकट भरयो धरयो, नहीं पीन ।
यूँ देख्यां अमर न भया परस्यां विना, प्रवीण ॥ ६ ॥
केसर, चंदण, कुमकुमा, भरया कटोरा तीन ।
अंग रंग लागै नहीं परस्यां विना प्रवीण ॥ ७ ॥
भोजन लाया थाल भर, कर पकवान नवीन ।
तऊ छुधा भाजै नहीं परस्यां विना, प्रवीण ॥ ८ ॥
निकट जड़ीमुहरा धरया, काम-भुजंग डस लीन ।
विख व्याप्यो, उतरै नहीं परस्यां विना, प्रवीण ॥ ९ ॥१३४॥

२७—अन्योक्तियाँ

हंसा, सरवर ना तजो, जे जल खारो होय ।
डाबर-डाबर डोलतां भला न कहसी कोय ॥ १ ॥

२—गिर—पहाड़ । पुलीन—किनारा । विपिन—वन (की अग्नि) ।

३—रया—रह गये ।

५—इतको—इधर । दीन—दी, रखी ।

६—पीन—पिया । यूँ इ०—यों केवल देखनेसे ।

७—कुमकुमा—कुंकुम । भरया—भरे । अगइ०—अंग में रंग आप ही नहीं लग जाता ।

९—भुजँग—साँप । व्याप्यो—व्याप्त हुआ ।

२७—अन्योक्तियाँ

१—जे—यदि, यद्यपि । डाबर—तलैया । कहसी—कहेगा ।

माळी ग्रीखम माँय पोखि घणो, द्रुम पाळियो।
जिणरो जस किम जाय अत घण वूठाँ ही, अजा ॥ २ ॥

दूध-नीर मिल दोय अेक जिसी आक्रत हुवै ।
करै न न्यारा कोय राजहंस विन, राजिया ॥ ३ ॥

हंसा था सो उड गया, कागा भया दिवान ।
जा, बामण, घर आपणे, सिघ कैरा जजमान ? ॥ ४ ॥

भ्याड, जोख, भख, मेक, वारिजके भेळा वसै ।
इसकी भँवरो अेक रसकी जाणै, राजिया ॥ ५ ॥

जायो तूँ जिण देस, जळ ऊंडा थोथा थळा ।
भवरपणारो भेस रळ्यो कठासूँ, राजिया ॥ ६ ॥

कबुतर, तूँ अद्‌भूत, घायल ज्यूँ घूमत फिरै ।
वनमें थोडा रूँख किण कारण कूवे पड़ै ॥ ७ ॥

सूवा, सेमळ देखके सभी गमाई बुध्ध ।
फूल देखके रम रह्या, फळकी रही न सुध्ध ॥ ८ ॥

भूख दूख संकट सहै, सहै विडाणा भार ।
हरीदास, मौनी बलद कासूँ करै पुकार ॥ ९ ॥

२—ग्रीखम—ग्रीष्म ऋतु । पोखि इ०—बहुत पुष्ट करके । जिणरो—उसका । जाय—नष्ट हो । अत इ०—बादमें बहुत वर्षा होनेपर भी । अजा—हे अर्जुनसिंह ।

३—जिसी—जैसी, समान । आक्रत—आकृति, रूप ।

४—हंसा—हंस जो पहले दीवान था । बामण—हे ब्राह्मण । आपणे—अपने । कैरा—किसके ।

५—भ्याड—भिड । जोख—जोक । भख—मछली । इसकी—प्रेमी । अेक—केवल अेक ही । रसकी जाणै—रसकी कदर कर सकता है ।

६—जायो इ०—जिस देशमें तू जनमा है वहाँ तो पानी गहरा और जमीन थोथी है, यह रसिकताका रूप तूने कहाँसे प्राप्त किया ।

९—विडाणा—पराये । मौनी—चुप रहनेवाला । बलद—बैल । कासूँ—किससे ।

घर आई, निरभै भई, डाव पड़्याँ यूँ होय ।
हरीदास, ता सारकूँ पासा लगै न कोय ॥१०॥

लोहा जल़सूँ धोइये, तब लग काँटी खाय ।
हरीदास, पारस मिल्याँ मूँघे मोल विकाय ॥११॥

पय कर मीठो पाक जो अमरित सींचीजिये ।
उर कड़वाई आक रंच न मूकै, राजिया ॥१२॥

अरहट कूप तमाम ऊमर लग न हुवै इतो ।
जल़हर अेकी जाम रेलै सब जग, राजिया ॥१३॥

मन मैला, तन ऊजल़ा, बुगला कपटी रंग ।
तोसें तो कागा भला तन-मन अेको रंग ॥१४॥

तन उजल़ा, मन साँवल़ा, बुगला कपटी भेख ।
इणसे तो कागा भला, बाहर भीतर अेक ॥१५॥

दादू, हँस मोती चुगै मानसरोवर न्हाय ।
फिर-फिर बैसे बापड़ा काग करंकाँ आय ॥१६॥

हरिया जाणै रूँखड़ा उस पाणीका नेह ।
सूका काठ न जाणई कबहू वूठा मेह ॥१७॥

मान-सरोवर माँय जल़, प्यासा पीवै आय ।
दादू दोस न दीजिये घर-घर कहण न जाय ॥१८॥१५२॥

१०—निरभै—निर्भय । डाव—दाँव । सार—चौसरकी गोटी । लगै—पहुँचता है ।

११—काँटी—काट, जग । मिल्याँ—मिलनेसे । मूँघे—महँगे ।

१२—पय कर—दूधके मीठे पाक बनाकर यदि अमृतसे सींचा जाय तो भी आक भीतरकी कटुता को जरा भी त्याग नहीं करता ।

१३—जलहर—मेघ । अेकी जाम—अेक ही पहरमें । रेलै—बहादेता है ।

१४—साँवल़ा—काला । भेख—वेश, रूप । इणसे—इनसे ।

१६— बापडा=बेचारे । करकाँ —हड्डियों या अस्थिपंजरपर ।

१७—उस—अर्थात् जो बरसता है । जाणई—जानता है (गुण या महत्वको) ।

१८—प्यासा इ०—जिसे प्यास होती है वह स्वयं आकर पानी पी लेता है ।

२८—सामान्य नीति

१

सांई, इण संसारमे भाँत-भाँतका लोग ।
सबसूँ रिल़मिल़ चालियै नदी नाव संजोग ॥ १ ॥
जुगमें मिलणा अजब है, मिल बिछडो मत कोय ।
बिछड्यॉं मिलणा दुलभ है राम करै जद होय ॥ २ ॥
दरसण परसण देह लग, सज्जण मिलियै धाय ।
घट छूटाँ, काल़ू कहै, कोण मिलेगो आय ॥ ३ ॥
मिलणा जोग सँजोगका, अपणे वस न वसाय ।
जद गोविंद किरपा करै, जद ही मिलियै धाय ॥ ४ ॥
खाया सोई खरचिया, दीया सो ही सथ्थ ।
जसवत, धरिया ही रह्या माल विराणे हथ्थ ॥ ५ ॥
खाणा पीणा खरचणा अैस कुसी आराम ।
करणा हो सो कर लेवो काल़ाँ केसाँ काम ॥ ६ ॥

२८—सामान्य नीति

१—इण—इस । रिल़मिल—हिलमिलकर । नदी-नाव-सजोग—ससारमें सारे प्राणियोंका साथ अैसा है जैसा नदी पार करनेके लिअे तटपर अेकत्र यात्रियोंका, उनमें कोई कहींसे आता है और कोई कहींसे, थोडो देरके लिअे नावमें सबका साथ हो जाता है पर पार पहुँचते ही फिर सब अलग-अलग हो जाते हैं ।

२—जुगमें—ससारमें । अजब—अद्‌भुत बात । बिछड्याँ—बिछुडनेपर । दुलभ—दुर्लभ ।

३—देह लग—जब तक शरीर है तभी तक । सज्जग—सज्जनसे । घट छूटाँ—शरीर छूटनेपर । कोण – कौन ।

४—अपणे इ०—अपने वशकी बात नहीं । जदही—तभी ।

५—धरिया इ०—धरे ही रहे । विराणे—पराये ।

६—अैस—ऐशो-आराम । कुसी—खुशी । करणा इ०—जो कुछ करना है सो वृद्धत्व आनेके पूर्व ही कर लो । काल़ा केसाँ—जब तक केश काले है तब तक।

ऊजड़ खेड़ा फिर वसैं, निरधणियाँ धन होय ।
वीत्या दिन नह वावड़ै, मुवा न जीवै कोय ॥ ७ ॥

जलम अकारथ ही गयो, भड-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गलै न लग्ग ॥ ८ ॥

इण हिंदवाणे माँयने खाणो-पीणो खूब ।
आखर नह रहणो अठे, मर ज्याणो, महबूब ॥ ९ ॥

धरम घटायाँ धन घटै, धन घट मन घट जाय ।
मन घटियाँ महमा घटै, घटत-घटत घट जाय ॥१०॥

विद्या वाणी हर-भगति हठ कर मिलै न कोय ।
धीरम, सहजे पाइयै जो धरि आगिलि होय ॥११॥

सत मत छोडो, हे नराँ, सत्त छोडयाँ पत जाय ।
सतकी बाँधी लिच्छमी फेर मिलेली आय ॥१२॥

भूठेकी कुछ पत नहीं, साजन, भूठ न बोल ।
लाखपतीका भूठसे दो कोडीका मोल ॥१३॥

कहत भली मानत बुरी, यही जगतकी रीत ।
रज्जब, कोठी गारकी ज्यूँ धोवै त्यूँ कीच ॥१४॥

माखो बैठी सहदपर, पंख गया लपटाय ।
पाँख हिलावै सिर धुणै, लालच बुरी बलाय ॥१५॥

७—ऊजड इ०—उजड़े गाँव । निरधणियाँ—निर्धनोंके । वावडे—लौटते हैं। वीत्या—बीते हुए । मुआ—मरे हुए ।

८—अकारथ—व्यर्थ । भड-सिर—योद्धाओंके सिरपर तलवार नहीं तोडी । तीखा तुरी—तेज घोड़े । माणिया—भोगे, आनंद उठाया । गोरी—सुन्दरी ।

९—हिंदवाणे—हिंदुस्तानमें । आखर—अंतमे । नह—नहीं ।

१०—घटायाँ—घटानेसे । घटियाँ—घटनेसे । घटत इ०—घटते-घटते सब कुछ घट जाता है ।

११—हठकर—अपने आप । आगिलि—जो पहलेकी रखी हो, यदि पूर्व-सस्कार सचित हों ।

१२—पत—प्रतिष्ठा, विश्वास । लिच्छमी—लक्ष्मी । मिलेली—मिलेगी ।

१४—गार—कीचड ।

अवनी रोग अनेक, ज्यांरा विध कीना जतन ।
इण प्रकृतीरी अेक रची न ओखद, राजिया ॥१६॥

समन, पराये बागमें दाख तोड़ खर खाय ।
अपणो कछू न बीगड़ै, असही सही न जाय ॥१७॥

खूब गधेड़ो खाय पैलांरी बाड़ी परे ।
आ अणजुगती आय रड़कै चितमें, राजिया ॥१८॥

चंदण पड़्यो चमार-घर, नित उठ कूटै चाम ।
चंदण बिचारो क्या करै, पड़्यां नीचसूं काम ॥१९॥

डूंगर जलती लाय जोवै सारो ही जगत ।
पाजलती निज पाय रती न सूझै, राजिया ॥२०॥

ऊंचे गिरवर आग जलती सो देखै जगत ।
पण जलती निज पाग रती न सूझै, राजिया ॥२१॥

कलह करये मत कामणी घोड़ां घी देतांह ।
आडा कदेयक आवसी, बारड़ली वहतांह ॥२२॥

आक बटूकै, पवन भख, तुरियां आगल जाय ।
हूं तने पूछूं, सायबा, हिरण किसा घी खाय ? ॥२३॥

१६—अवनी—पृथ्वीपर । ज्यांरा—उनके । विध—विधाताने । इण इ०—पर इस स्वभावकी अेक भी दवा नही बनाई ।

१८—पैलांरी—उनकी, तोसरे लोगोंकी जिनसे हमारा कोई सबंध नहीं । परे—सामने, उस ओर । अणजुगती—अनुचित बात । रडकै —खटकती है ।

२०—डूगर—पहाड़पर जलती आगको सारा ससार देखता है पर अपने पैरोंके पास जलती हुई किसीको जरा भी नहीं दिखाई देती ।

२२—हे कामिनी, घोड़ोंको घी देते समय तू कलह मत करना, वार चलते समय ये कभी काम देंगे । वार—चोर-डाकुओंका पीछा करना ।

२३—पत्नी ऊपरके कथनका उत्तर देती है—हे पति, मैं तुमसे पूछती हूँ, हिरन कौन घी खाते हैं ? वे तो आकके पत्तों और हवापर ही गुजारा करते हैं और फिर भी घोडोंसे आगे निकल जाते हैं ।

राज, रखै तो च्यार रख, मत राखी चालीस ।
अै चीलीसूं भागणा, अै च्यारूं चालीस ॥२४॥

वचन त्रपत अविवेक सुण छीजे स्याणा मिनख ।
अपत हुवाँ तरु अेक रहै न पंछी, राजिया ॥२५॥

कही न मानै काय जुगती अणजुगती जठे ।
स्याणाँने सख पाय रहणो चुपको, राजिया ॥२६॥

नदीनीर अर कृपणधन, हरकोई हर लेत ।
बलियारी त्रप कूपकी, गुण विन बूँद न देत ॥२७॥

हियो हुवै जो हाथ, तो कुसँगी केता मिलो ।
चनण भुजंगाँ साथ कलो न लाग, किसनिया ॥२८॥

सीख सरीराँ ऊपजे, दियाँ न आवै सीख ।
अणमाँग्या मोती मिलै माँगी मिलै न भीख ॥२९॥

धीरे-धीरे, ठाकराँ, धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचै सो घड़ा, रुत आयाँ फल होय ॥३०॥

सोच करै सो सूर है, कर सोचं सो कूर ।
सोच कर्याँ मुख नूर है, कर सोच्याँ मुख धूर ॥३१॥

२४—राज—हे राजा । राखी—रखना । भागणा—भागनेवाले । चालीस—चालीसके बराबर ।

२५—वचन—राजाके अविवेक-भरे वचनोंको सुनकर बुद्धिमान् घटने लगते हैं (अविवेकी राजाकी सभाको धीरे-धीरे छोड देते हैं) जैसे पेडके पत्रहीन होनेपर उसपर अेक भी पक्षी नहीं रहता ।

२६—काय—कोई भी । जुगती—युक्तिसगत या उचित बात । जठे—जहाँ। स्याणाँने इ०—समझदारोंको शांति धारण करके चुप रहना चाहिअे ।

२७—बलियारी—बलिहारी है । त्रप—राजा । गुण—सद्गुण, रस्सी । बूँद—थोडा-सा भी द्रव्य, जलकी बूँद ।

२८—हियो इ०—यदि हृदय वशमें हो । केता—कितने हो । चनण—चदन । कलो—कलक, दोष ।

३१—सोच करै—जो सोच-विचारकर काम करता है । कूर—नीच । नूर—तेज, शोभा ।

चंदणरी चुटकी भली गाडो भलो न काठ ।
चातर तो अेक ज भलो, मूरख भला न साठ ॥३२॥

जण-जणरो मुख जोय, नहचैं दुख कहणो नहीं ।
काढ न दे वित कोय रीरायाँसूँ, राजिया ॥३३॥

वाँका रहज्यो वालमा वाँका आदर होय ।
वाँका वनका लाकडा काट न सकै कोय ॥३४॥

घणा सरल वणियै नहीं देखो ज्यूँ वणराय ।
सीधा-सीधा काटताँ वाँका तरु वच ज्याय ॥३५॥

जवर विरोधी अगन जल लै निज काज लुहार ।
जवर विरोधी मंत्रियाँ सुपह काज लै सार ॥३६॥

पढ़वे पोढंताह करडावण सैं कोड करै ।
धोरांमे धॅसताँह आँसू आवे, ईलिया ॥३७॥

कहणी मीठी खाँड-सी, करणी विख-सी होय ।
जे कहणी करणी हुवै, विख ही अमरित होय ॥३८॥

कहणी प्रभु रीझै न कछु, रहणी रीझै राम ।
सपनेरी सो मोहरसू कोडी सरै न काम ॥३९॥

३२—गाडो इ०—काटकी भरी हुई गाडी भी अच्छी नही । चातर—चतुर ।

३३—जण-जणरो इ०—प्रत्येक आदमीकी ओर देखकर निश्चय ही अपना दुख नही कहते फिरना चाहिअे । दीनतापूर्वक रोनेसे कोई धन निकालकर नही दे देता

३४—वांका—टेढे । वालमा—हे प्यारे ।

३५—सरल—सीधे । वणराय—वनराजि, जगल ।

३६—जवर—प्रवल । अगनजल—अग्नि और पानी । लै इ०—अपने काममें लाता है । मन्त्रियाँ—मन्त्रियोंसे । सुपह—अच्छा मालिक । लै सार—बना लेता है ।

३७—पढवे इ०—महलोंमे सोते हुअे तो सभी अभिमान करते हैं पर जब टीबोंमें चलना पडता है तो आंसू निकल आते है ।

३९—रहणी—रहनेका ढग । सपनेरी इ०—सपनेमे पाई हुई सैकड़ों मुहरोंसे अेक कौडीका काम भी नही निकल सकता

लाज रखे तो जीव रख, लज विन जीव न रख्ख ।
साँई, तोसूँ वीनती, दोऊँ भेली रख्ख ॥४०॥
लाजाँ संपत पाइये, लाजाँ मोटा मान ।
लाज-विहूणा मानवी, ज्याँरा लाँबा कान ॥४१॥
लीह नहीं, लज्जा नहीं, नहीं रंग, नहिं राग ।
ते माणस इम छंडियै जिम अंधारे नाग ॥४२॥
कदे न भाजै काय आमाँरी तिस आमल्याँ ।
छोकरियाँ घर छाय, नार न आणै, नाथिया ॥४३॥
वडा भया तो क्या भया, सबसे वडा खजूर ।
बैठणकूँ छाँया नहीं, फल लागै अत दूर ॥४४॥
माया मिली तो क्या भया, हिड़दा भया कठोर ।
नो नेजा पाणी चढ्या, तोय न भीजी कोर ॥४५॥
रंदोही होवे मती, मती वसूलो, मित्त ।
होवे करवत सारिसो वाँटण-खाटण चित्त ॥४६॥

४०—साँई—हे परमात्मा । भेली—अेक साथ । दोऊँ—दोनों ।

४१—लाजाँ—लज्जासे । मानवी—मनुष्य । ज्याँरा इ०—उनके लवे कान है (वे गधे हैं) ।

४२—लीह—मर्यादा (का ध्यान) । माणस—मनुष्य । इम—अैसे । अधारे—अँधेरेमें ।

४३—कदे इ०—कोई आमकी प्यास इमलीसे कभी नही बुझ सकती, इसी प्रकार यदि अबोध लड़कियोसे ही घर (का काम) चल सके तो कोई स्त्रीको क्यों लावे ?

४५—हिड़दा—हृदय । नेजा—भाले, लबाईका अेक नाप । तोय—तो भी । कोर—छोर ।

४६—रदोही—रदा नामक बढईका औजार जो छिली लकडीको दूसरी तर्फ फेंक देता है (केवल परमार्थी) । वसूलो—बसूला नामका बढ़ईका औजार जो छिली लकड़ीको अपनी ओर फेकता है (स्वार्थी) । होवे मती—मत होना । मित्त—हे मित्र । हावे—होना । करवत—आरा नामका औजार जो छिली लकडीको दोनों ओर फेकता है । सारिसो—समान । वाँटण—बाँटने और खानेवाला ।

टामण-टामण टोटका कर देखो सै कोय ।
धंधे चालै पीवरै आपै ही सब होय ॥४७॥
हुन्नर करो हजार स्याणप चतराई सहित ।
हेत कपट विवहार रहै न छानो, राजिया ॥४८॥
सुण-सुण मीठी बोलगत बैठ न वैरी पास ।
दही भरोसे, वावला, खाये कदे कपास ॥४६॥
सूनेमें मत चीज रख, ले ज्या चोर-चकार ।
खाऊ है धन-जीवका सूनो ओर उजाड ॥५०॥
टूटा मत रह टोलसें राव भीड़के वीच ।
अेक अकेले मिनखकूं सूझै ऊँच न नीच ॥५१॥
वाड़ करो छी खेतने, वाड खेतने खाय ।
राजा डंडै रैतने, कूकै किणपर जाय ? ॥५२॥
स्याणा तो है भोत-सा, 'सवसूं स्याणा छोह ।
हीणा देख हो चोगणा, ठाढेपै कम होह ॥५३॥

४७—टामण-कामण—वशीकरण जादू । टोटका—टोना । कर देखो इ०—सब कोई करके देखलो, उससे पति वशमें नही होता, परन्तु यदि स्त्री पतिके कथनानुसार चले तो सब वशीकरण अपने-आप हो जाते हैं।

४८—हुन्नर—हुनर । स्याणप—सयानप । छानो—छिपा हुआ ।

४६—बोलगत—बाते । वावला—हे बावले । खाये कदे इ०—कभी कपास न खा बैठना । दही भरोसे कपास खावणो—धोखा खाना ।

५०—लेज्या—ले जाय । खाऊ—खानेवाले ।

५१—टूटा—अलग । टोल—टोली, मडली । राव—हे राव । भीड़—विपत्ति । ऊँच-नीच—भला-बुरा, कर्तव्याकर्तव्य ।

५२—वाड़—झरबेरीके कांटोंका घेरा । खेतने—खेत (की रक्षा) के लिअे । खेतने—खेतको । डडै—डड देता है । रैतने—प्रजाको । कूकै—पुकार करे । किणपर—किसके आगे ।

५३—भोत-सा—बहुत-से । छोह—क्रोध । हीणा—कमजोर । हो—होता है । ठाढे पै—जबर्दस्तपर ।

पंडत ओर मसालची, दोऊँ उलटी रीत
ओर दिखावै चाँनणो, आप अँधेरे बीच ॥५४॥

तीतरपंखी वादली, विधवा काजल-रेख।
बा वरसै बा घर करै, यामे मीन न मेख ॥५५॥

आगे मिलै न अन्न, रंक पछै पावै रिजक।
मैला ज्याँरा मन्न रहै सदा ही, राजिया ॥५६॥

वाँस चढी नटणी कहै, होत न नटियो कोय।
मैं नटकर नटणी भई, नटै सो नटणी होय ॥५७॥

मायासूँ माया मिलै, मिलै नीचसूँ नीच।
पाणीसूँ पाणी मिलै, मिलै कीचसूँ कीच ॥५८॥

हित कर हंसाँ, कोयलाँ, साधू संगत पास।
कागाँ, कुत्ताँ, कुमाणसाँ प्रीत तजो, प्रिथुदास ॥५९॥

काली भोत कुरूप कस्तूरी काँटे तुलै।
सक्कर वडी सुरूप नरजाँ तूलै, नाथिया ॥६०॥

तुलै जो परबत तोल, मोल नहीं मूरख-तणो।
वडे मिनखरा बोल नग-नग भारी, नोपला ॥६१॥

५४—पडत—पडित। ओर—और, दूसरोंको। चाँनणो—प्रकाश।

५५—तीतरपंखी—तीतरके पंखोके समान। वादली—बदली। बा—वह। घर करै—नया पति करती है। मीन न मेख—कुछ भी फर्क नहीं।

५६—आगे इ०—जिनको पहले तो खानेको भी न मिलता हो और पीछे धनसपत्ति या जागीर मिल जाय, अैसे लोगोंके मन सदा ही मैले (इतराये) रहते हैं

५७—वाँस—वाँसपर खेल दिखाती हुई। नटणी—नटकी स्त्री या स्त्री-नट। होत इ०—पास होते हुअे कोई इनकार मत करो। नटकर—इनकार करके।

५९—हित कर—इनसे प्रेम करो। प्रिथुदास—महाराज पृथ्वीराज (बीकानेर)

६०—भोत—बहुत। काँटा—छोटा तराजू जिसपर बहुमूल्य वस्तुअं तोली जाती है। नरज—बडा तराजू।

६१—तुलै—चाहे तोलमें पर्वतके बराबर तुलें तो भी मूर्खके वचनोंका कोई मोल नहीं होता और बड़े मनुष्योंके बोल नग जितने हों तो भी भारी (बहुमूल्य) होते हैं।

हरदी जरदी ना तजै, खटरस तजै न आम ।
असली गुणकूँ ना तजै, गुणकूं तजै गुलाम ॥६२॥
उपजै ज्यांही खात है, कायर कूर कपूत ।
अै परदेसांमें खपै, सायर न्हार सपूत ॥६३॥
ऊँडा जळ सूकै अवस, नीलो वन जळ ज्याय ।
चुगल-तणा पगफेरसू वसती ऊजड़ ज्याय ॥६४॥
रोग, अगन, अर राड़, जाण अलप कीजै जतन ।
वधियां पछै विगाड़ रोक्यो रुकै न, राजिया ॥६५॥
पहली कियां उपाव दव, दुसमण, आमय दटै ।
प्रचंड हुवां वस वाव रोभा घालै, राजिया ॥६६॥
खेती-पाती वीनती, परमेसुरको जाप ।
परहाथां ना कीजिये, निडर कीजिये आप ॥६७॥
दुखिया आगे दुख कह्यो, आधो दुख ले लेय ।
सुखिया आगे दुख कह्यो, हंस-हंस ताळी देय ॥६८॥
सुख-संपत अर ओदसा, सब काहूको होय ।
ग्यानी काटै ग्यानसूं, मूरख काटै रोय ॥६९॥

६२—जरदी—पीलापन । खटरस—खट्टापन । गुण—अपनी विशेषता । गुलाम—दोगला ।

६३—ज्यांही—वहीं । अै—ये । खपै—गुजारा करते हैं । सायर—शूर ।

६४—ऊँडा—गहरे । अवस—अवश्य । नीला—हरेभरे । पगफेर—आगमन । वसती—बस्ती ।

६५—अगन—अग्नि । अर—और । राड—झगडा । अलप—अल्प, थोडे हों तभी । वधियां—बढ जानेपर । रोक्यो—रोकनेपर भी ।

६६—पहली—पहले । कियां—करनेसे । दव—अग्नि । आमय—रोग । दटै—दबते हैं । प्रचड हु०—वायुके प्रकोपसे प्रचंड होनेपर । रोभा—टीस ।

६७—परहाथां—दूसरेके द्वारा । आप—स्वय ।

६८—कह्यो—कहा । ताली देय—ताली वजाता है ।

६९—ओदसा—बुरी दशा । काटै—दुखके दिनोंको बिताता है ।

समझूने चिंता घणी, मूरखने नहि लाज।
भले-बुरे की खबर नहि, पेट भरणसूँ काज ॥७०॥
तुलसी, तहाँ न जाइये जलम-भोमके गाँव।
गुण-ओगण जाणै नहीं, धरै पाछलो नाँव ॥७१॥
लोग चुगल कानाँ लग्या, घूघू बोल्यो गेह।
भायाँसूँ भेलप नही, विपत लिखी विधि तेह ॥७२॥
सम्मन, पूँछ ज स्वानकी सरै न अेकौ काज।
माँखि उडावणकी नहीं, ढकै न तनकी लाज ॥७३॥
मूसा ने मंजार हितकर बैठा हेकठा।
सब जाणै संसार रस नह रहसी, राजिया ॥७४॥
निस-दिन निरभै नीद सपनेमें आवै न सुख।
दुनियामें नर दीन करजेसूँ हुवै, किसनिया ॥७५॥
कहणी जाय निकाम आछोड़ी आणी उगत।
दामाँ-लोभी दाम, रँजै न वाताँ, राजिया ॥७६॥

७०—समझूने—समझदारको।

७१—जलमभोम—जन्मभूमि। पाछलो नाँव—बचपनका अनादर-सूचक ओछा नाम लेकर पुकारते हैं (स्वामी रामदासजी अपने पुराने गांवमें पहुँचे तो लोग चिल्ला उठे—अरे रामलो आयो रे रामलो आयो)।

७२—चुगल—चुगलीखोर। कानाँ लग्या—कान लगेहुए। घुघू—उल्लू। गेह—घरमें। भायाँसूँ इ०—भाइयोंसे प्रेम नही। तेह—वहाँ, उसके लिअे।

७३—स्वान—कुत्ता। अेकौ—अेक भी। सरै—बनता है। माँखि—मक्खियाँ।

७४—चूहा और बिल्ली प्रेम करके अेक-साथ बैठे हैं पर यह बात सारा ससार जानता है कि उनका प्रेम अंत तक नही निभेगा।

७५—निरभै—निर्भय। सुख—सुखसे। करजेसूँ—ऋण लेनेसे।

७६—दामोंके लोभीके आगे अच्छी-अच्छी उक्तियाँ लाकर कही हुई बात भी व्यर्थ जाती है। वह तो दामसे ही रीझता है, बातोंसे नही।

भावै जहाँ छिपाइयें, साँच न छाँनो होय ।
सेस रसातल, गगन धू, परगट कहिये सोय ॥७७॥
आवै नहीं इलोल बोलण-चालणरी विधि ।
टीटोड्याँरी टोल राजहंसरी, राजिया ॥७८॥
जगमे दीठो जोय, हेक प्रगट विवहार म्हे ।
काम न मोटो कोय, रोटी मोटी, राजिया ॥७९॥
लिछमी कर हरि लार, हरने दध दीधो जहर ।
आडंबर इधकार राखे सारा, राजिया ॥८०॥
धोबो मुट्ठी धान माँगै ज्याँने ना मिलै ।
पट काढै पकवान ना-ना करताँ, नाथिया ॥८१॥
आछा हुवै उमराव, हियाफूट ठाकर हुवै ।
जड़िया लोह जड़ाव रतन न फाबै, राजिया ॥८२॥
रीझ्याँ देय न मोज, चूक्याँ चट चेतो करै ।
ज्याँ ठाकररी चोज रती न आवै, राजिया ॥८३॥
गुण विन ठाकर ठीकरो, गुण विन मीत गँवार ।
गुण विन चंदण लाकडी, गुण विन नार कुनार ॥८४॥

७७—छाँनो—गुप्त । धू—ध्रुव । परगट इ०—तो भी वे प्रकट रहते हैं ।

७८—आवै इ०—टिटिहरियोंकी मडलीमे किसीको राजहसका-सा बोल-चालका ढग नहीं आ सकता ।

७९—जोय—देखकर । दीठो—देखा । हेक—अेक । म्हे—हमने ।

८०—हरि—विष्णु । लार—पीछे । हरने—शिवको । दध—उदधि, समुद्र । इधकार—खयाल, सम्मान ।

८१—जो माँगता है उसे धोबा या मुट्ठी भर धान भी नही मिलता पर ना-ना करनेवालेके लिअे लोग झटपट पकवान निकालकर लाते है ।

८२—जडिया इ०—लोहेमे जडे हुअे रत्नोंकी तरह शोभा नही देते ।

८३—जो रीझनेपर इनाम नही देता पर कोई भूल होनेपर तुरत सावधान हो जाता है, उस ठाकुरके लिअे दिलमें रत्ती भर भी प्रेम नही होता ।

८४—ठीकरो—ठिकरा । लाकडी—साधारण लकडीके बराबर ।

चौंसठ दीवा, हे सखी, बारा रवी तपंत ।
घोर अँधारो तिण घरे, जिण घर सुत न रमंत ॥८५॥

(२)

मिरग न वाज्यो वायरो, अदरा न वूठ्यो मेह ।
जोबन न जायो बेटड़ो, तीनूँ हारी देह ॥८६॥
नीद न आवै तीन जण, कहो सखी, ते क्याह ।
प्रीत-विछोया, बहु-रिणा, खटकै वैर हियाह ॥८७॥
रण चढ्ढण, कंकण बंधण, पुत्र वधाई चाव ।
अे तीनूँ दिन त्यागरा, कहा रंक कहा राव ॥८८॥
ध्रम जाताँ, धर पलटताँ, त्रिया पडंताँ ताव ।
अे तीनूँ दिन मरणरा, कहा रंक कहा राव ॥८९॥
माँग्या मिलै न च्यार, पूरब पूरा दत्त विन ।
विद्या, अर वर नार, संपत गेह, सरीर सुख ॥९०॥

८५—चौंसठ—चौसठ । दीवा—दीपक । बारा रवी—बारह सूर्य । रमत—खेलता है ।

८६—मृग-नक्षत्रमें हवा नही चली, आर्द्रा-नक्षत्रमें पानी नही बरसा और यौवन-अवस्थामें पुत्र उत्पन्न नहीं किया तो ये तीनों व्यर्थ ही हुअे ।

८७—तीन मनुष्योंको निद्रा नहीं आती । हे सखी, कहो वे कौन है । एक तो प्रेमका विरही, दूसरा बहुत कर्जवाला, और तीसरा जिसके हृदयमें वैर खटक रहा है ।

८८—क्या रक और क्या राजा—सबके लिअे ये तीन दिन दान करनेके हैं—(१) जब युद्धके लिअे चढ़ना हो, (२) जब विवाह-ककन बँधे और (३) जब पुत्रोत्पतिकी बधाई तथा उत्सव होते हों ।

८९—क्या रक और क्या राजा—सबके लिअे ये तीन दिन मरणके हैं—(१) जब धर्म जाता हो, (२) जब अपनी जमीन हाथसे जाती हो, और (३) जब स्त्रीपर विपत्ति पडती हो ।

९०—पूरब इ०—पूर्वके पूरे सुकृतोंके विना । दत्त—दान । वर—अच्छी

नाज पुराणो, घी नयौ, आग्याकारी नार ।
पंथ तुरी चढ़ चालणो, पुन्न-तणा फल़ च्यार ॥६१॥
साठी चावल, भैस दुध, घर शिल़वंती नार ।
चोथी पीठ तुरंगरी, सुरग-निसाणी च्यार ॥६२॥
लूखो भोजन, भू सुवण, घर कलिहारी नार ।
चोथा फाट्या कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार ॥६३॥
कालर खेत, कसूत हल़, घर कल़खारी नार ।
मैला जिणरा कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार ॥६४॥
मीठा बोलण, नवि चलण, पर ओगण ढकि लीन ।
तीन्यूँ चंगा, नानका, चोथो हत्थाँ दीन ॥६५॥
धन, जोवन, अर ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।
अै च्यारूँ भेल़ा हुवै, अनरथ करै अनेक ॥६६॥
सीतल़, पातल़, मंद गत, अलप अहार, निरोस ।
अै तिरियाँमें पाँच गुण, अै तुरियाँमे दोस ॥६७॥

६१—तुरी—घोडा । पुन्न-तणा—पुण्यके ।

६२—दुध—दूध । शिलवती—शीलवती, सुशीला । पीठ—अर्थात् सवारी। सुरगनिसाणी—स्वर्गके लक्षण ।

६३—लूखो—रूखा । भू इ०—पृथ्वीपर सोना । कलियारी—कलहशीला । फाट्या—फटे हुए ।

६४—कालर—ऊसर । कसूत—सीधा न चलनेवाला । कलखारी—कलह करनेवाली । कपडा—कपडे । निसाणी—चिन्ह ।

६५—नवि चलण—नम्र होकर चलना । पर इ०—दूसरेके दोषोंको छिपा देना । तीन्यूँ इ०—नानक कहते हैं कि तीनों अच्छे है । हत्थाँ दीन—हाथसे देना ।

६६—ठाकरी—ठकुराई, प्रभुता । भेला—अेकत्र ।

६७—सीतल—शीतल स्वभाव । पातल—पतला होना । गत—चाल । निरोस—रोष न आना । अै—ये । तिरियाँ—स्त्रियों । तुरियाँ—घोडों ।

(३)

बलता तो दीपक भला, टलता भला विघन्न ।
गलता तो वैरी भला, वलता भला सुदिन्न ॥६८॥
चावल तो चढ़ियो भलो, पडियो भलो ज मेह ।
भाग्यो तो वैरी भलो, लाग्यो भलो ज नेह ॥६६॥
रिणतूटा सूरा भला, फाटा भला कपास ।
भागा भला अबोलणा, लागा चंदण-वास ॥१००॥
माता तो मैंगल भला, ताता भला तुरंग ।
जाता तो वैरी भला, राता भला ज रंग ॥१०१॥
बैंगण तो काचा भला, पाकी भली अनार ।
प्रीतम तो पतला भला, जाडा जाट गिँवार ॥१०२॥
काचर, केलो, आमफल, पीव, मित्र, परधान ।
इतरा तो पाका भला, काचा कोइ न काम ॥१०३॥
केलो, केरी, कामणी, पीव, मित्र, परधान ।
इतरा तो पाका भला, काचा नावै काम ॥१०४॥
पाणी, राणी, पगरणी, पासो, पिसण, पलेव ।
इतरा तो पतला भला, सत भाखै सहदेव ॥१०५॥

६८—बलता—जलते हुअे । टलता- दूर होते हुअे । गलता—नाश होते हुअे । वलता—लौटते हुअे । सुदिन्न—अच्छे दिन ।

६६—चढ़ियो—चढ़ा हुआ (शुभ अवसरोंपर चावल चढ़ाया जाता है) ।

१००—रिणतूटा—युद्धमें हत या आहत । अबोलणा—शत्रु । वास—सुगध ।

१०१—माता—मस्त । मैंगल—हाथी । ताता—तेज । राता—लाल ।

१०२—जाडा—मोटे ।

१०३—काचर—कचरी । केलो—केला । पीव—पति । परधान—कामदार, दीवान । इतरा—इतने । पाका—पक्के, बडी उम्र के, दृढ़-स्नेही, वृद्ध, अनुभवी ।

१०४—केरी—कच्चा आम । काचा—कच्चे । नावै—नहीं आते।

१०५—पाणी—पानी । राणी—रानी । पिसण—दुष्ट, शत्रु

सेल, अरिंगण, पांगरण, पताल़ भला ज अेह।
इतरा तो जाडा भला, रूँख, कडूँबो, मेह ॥१०६॥
जवड़ो, चूडी जायफल़, विड़ंग, सुपारी, वैण।
इतरा तो भारी भला, साह, धणी, अर सैण ॥१०७॥
कान, आँव, मोती, करम, गढ़, तड, ढोल, भँडार।
अे फूटा किण कामरा, ताल, तोप, तरवार ॥१०८॥
खत र खेत खल काकडी, दाड़म भरम कपास।
फाटाँ फूल गुलाबरो, आत सुगंधी वास ॥१०९॥
मोडा, टोडा, बाकरा, चोथी विधवा नार।
इतरा तो भूखा भला, धाया करै खुवार ॥११०॥

(४)

सरवर सारू जल़ रहै, पिंड सारू परकत्त।
कर सारू कीरत रहै, मन सारू बरकत्त ॥१११॥
सोना वाया न नीपजै, मोती न लागै डाल़।
रूप उधारा ना मिलै, भूल्या फिरो, जमाल़ ॥११२॥
चिंतामें वुध परखिये, टोटे परख त्रियाह।
सगा कुवेलाँ परखिये, ठाकर गुन्हो कियाँह ॥११३॥

१०६—सेल—भाला। जाडा—मोटे, गहरे, घने। कडूँबो—कुटुब।

१०७—साह—साहूकार। धणी—मालिक। सैण—मित्र।

१०८—करम—भाग्य। किण इ०—किस कामके।

१०९—भरम—भ्रम, अज्ञान।

११०—मोडा—सिर मुँडाये हुअे साधु। टोडा—ऊँट। बाकरा—बकरे। इतरा—इतने। धाया—पेट भरे हुअे। खुवार—खराबी, सत्यानाश।

१११—सारू—प्रमाण, अनुसार। परकत्त—प्रकृति। कर—हाथ, दान। बरकत्त—बरकत।

११२—वाया—बोनेसे।

११३—वुद्ध—बुद्धि। टोटे—धन-नाशके समय। सगा—सबधी। कुवेलाँ—आपत्तिके समयमें। ठाकर—मालिक। गुन्हो—अपराध करनेपर।

भूख न जाणै भावतो, प्रीत न जाण जात।
नींद न जाणै साथरी, ज्याँ सूता त्याँ रात ॥११४॥

देणो भलो न बापरो, बेटी भली न अेक।
पैंडो भलो न कोसरो, साहब राखे टेक ॥११५॥

सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी वात।
जोबण-छाई धण भली, ताराँ-छाई रात ॥११६॥

सोरठियो दूहो भलो, घोड़ो भलो कुमेत।
नारी तो नवली भली, कपड़ो भलो सपेत ॥११७॥

रागाँ मीठी सोरठी, चोपड़ मीठी सार।
सेजाँ मीठी कामणी, रण मीठी तलवार ॥११८॥

छाजेरी बैठक बुरी, पर-छावणरी छाँय।
धोरैंरो रसियो बुरो, नित उठ पकड़ै बाँय ॥११९॥

ग्यारस, गोरी, गंगलल, भोजन भला ज खीर।
वसबो तो व्रजको भलो, मरबो गंगा-तीर ॥१२०॥

नितरो भलो न वरसणो, नितरी भली न धूप।
नितरो भलो न बोलणो, नितरी भली न चूप ॥१२१॥

११४—भावतो—अन्न अच्छा लगने वाला है या नही। साथरी—सेज सूता—सोये।

११५—देणो—देना, ऋण। पैंडो—चलना। साहब—परमात्मा। टेक—इज्जत

११६—सोरठियो—सोरठका, सोरठा। मरवण—ढोला-मारवणीकी। वात—कहानी। छाई—भरी हुई। धण—स्त्री।

११७—कुमेत—स्याही लिये लाल रगका घोडा। नवली—नवयुवती। सपेत—सफेद।

११८—सोरठी—सोरठ राग। चोपड़—चौसर। सार—गोटे।

११९—पर छाँवण—दूसरेके छाजनकी। धोरैंरो—पासका। रसियो—प्रेमी। बाँह—हाथ। सासरो—ससुराल।

१२०—ग्यारस—अेकादशी। [illegible]—स्त्री।

मोरां विन डूँगर किसा, मेह विन किसी मलार ।
त्रियां विना तीजां किसी, पिव विन किसा तिव्हार ॥१२२॥
कंत विना कांइ कामणी, सरवर विन कांइ नीर ।
सास विना कांइ सासरो, खांड विना कांइ खीर ॥१२३॥
क्या पाणीका बुदबुदा, क्या वालूकी भींत ।
क्या ओछेका आसरा, क्या दुरजणकी प्रीत ॥१२४॥
जलरी सोभा कमल है, दलरी सोभा फील ।
धनरी सोभा धरम है, कुलरी सोभा सील ॥१२५॥
भँवरो व्याकुल मध विना, कोयल विना वसंत ।
तिय व्याकुल दरसण विना, जीव विना भगवंत ॥१२६॥
विना वसीले चाकरी, विना सुपारी पान ।
अै तीनूं फीका लगै, अर विन ढाल जवान ॥१२७॥
नारी-मंडण नाहलो, धरती-मंडण मेह ।
पुरखां मंडण धन सही, यामें नहि संदेह ॥१२८॥
ज्यांका ऊँचा वैसणा, ज्यांका खेत निवाण ।
ज्यांका वैरी क्या करै, ज्यांका मींत दिवाण ॥१२९॥
डाढ खटकै कांकरो, फूस खटकै नैण ।
कहियो खटकै आकरो, विछड्यो खटकै सैण ॥१३०॥

१२२—डूँगर—पहाडी । किसी—कौन-सी, क्या । मलार—अेक राग । तीजां—सावणकी तीजोंके त्यौहार । सासरो—सघराल ।

१२३—कांइ—क्या ।

१२४—दल—सेना । फील—हाथी । सील—सदाचरण ।

१२५—मध—मधु, पुष्परस । दरसण—प्रियतमका दर्शन ।

१२६—वसीला—सिफारिश करनेवाला । जवान—युवा योधा ।

१२७—मंडण—शोभा । नाहलो—पति ।

१२८—वैसणा—बैठना, स्थान । निवाण—नीचा । ज्यांका—उनका । दिवाण—दीवान, प्रधानमंत्री ।

१३०—कांकरो—कंकर । आकरो—कठोर । सैण—मित्र ।

साध सरावै सो सती, जती जोखता जाण ।
रज्जब, साँचे सूरको, वैरी करै वखाण ॥१३१॥
हंस तरंतो परखियै पाणी नदी वहंत ।
सोनो कसी परक्खियै माणस वात कहंत ॥१३२॥
डूम न जाणै देवजस, सूम न जाणै मोज ।
मुगल न जाणै गउ-दया, चुगल न जाणै चोज ॥१३३॥
वड़ बुगलेसूँ वीगड़ै, वानरसूँ वण-राय ।
गाँव कु-ठाकर वीगड़ै, वंस कपूताँ जाय ॥१३४॥
रोळ विगाड़ै राजने, मोल विगाड़ै माल ।
सनै-सनै सरदाररी, चुगल विगाड़ै चाल ॥१३५॥
सूरज-वैरी गहण है, दीपक वैरी पोन ।
जीको वैरी काळ है, आताँ रोकै कोण ? ॥१३६॥
मितरसूँ अंतर नहीं, वैरीसूँ नहि नेह ।
प्रीतमसूँ पड़दो नहीं, जिण निरखी सब देह ॥१३७॥
चंदह वैरी वादळो, जल—वैरी सेवाळ ।
माणस-वैरी नींदड़ी, माछाँ वैरी जाळ ॥१३८॥

१३१—जोखता—स्त्री । जती इ०—यती वही है जिसे स्त्री सराहे । वखाण—तारीफ ।

१३२—तैरता हुआ । कसी—कसौटी ।

१३३—डूम—श्रृंगार रसके गीत गानेवाली अेक नीच जाति । देवजस—भक्तिरसके भजन । मुगल—मुसलमान । चोज—सुभाषित ।

१३४—वड—बडका पेड़ । वणराय—जगल । जाय—नष्ट होता है ।

१३५—रोल—शासनप्रबधका अभाव ।मोल—मोलभाव ।

१३६—गहण—ग्रहण । पोन—पवन । आताँ—आते हुअे ।

१३७—अ तर—फर्क, दुराव । पड़दो—पर्दा, छिपाव ।

१३८—सेवाल—सेवार घास । माणस—मनुष्य । माछाँ—मछलियोंका ।

ठग कामेती, ठोठ गुर, चुगल न कीजै सैण ।
चोर न कीजै पाहरू, ब्रहसपतीरा वैंण ॥१३९॥
घोडाँ दूभर भादवो, भैसाँ दूभर जेठ ।
मरदाँ दूभर पीसणो, नारी दूभर पेट ॥१४०॥
वाताँ रीझै वाणियो, रागाँसू रजपूत ।
बामण रीझै लाडवाँ, बालक रीझै भूत ॥१४१॥
रागाँरो पति कान्हडो, धरतीरो पति इंद ।
ताराँरो पति चंद्रमा, संतन पति गोविंद ॥१४२॥

(५)

विद्या,भलपण, समँद-जल, ऊँच तणो-आकास ।
ऊतर-पंथ, र देवगत, पार नहीं, प्रिथुदास ॥१४३॥
सरणाई सुहडा, केसरि-केस, भुजंगमणि ।
चढसी हाथ मुवाह सती-पयोधर,क्रपण-धन॥१४४॥
साध, सती, अर सूरमा, ग्यानी, अर गजदंत ।
उलट पूठ फेरै नहीं, जो जुग जाय अनंत ॥१४५॥

१३९—कामेती—कामदार, प्रधान, दीवान। ठोट—मूर्ख। सैण—मित्र। पाहरू—पहरेदार। ब्र हसपती—बृहस्पति। वैंण—कथन।

१४०—दूभर - असह्य। भादवो—भाद्रपदका महीना। पेट—गर्भ।

१४१—वाणियो—बनिया । रागाँसूँ—गानेसे । बामण—ब्राह्मण । लाडवाँ—लड्डुओंसे। भूत—भूतों, परियों आदिकी कहानियोंसे ।

१४२—इंद—इन्द्र ।

१४३—भलपण—भलाई । समँद—समुद्र । ऊँच इ०—आकाशकी ऊँचाई। ऊतरपथ—उत्तरदिशाका मार्ग। देवगत—भाग्यकी गति। पार इ०—इनका कोई पार नही।

१४४—वीरोंका शरणग्रहण, सिंहके बाल, साँपकी मणि, पतिव्रताके स्तन और कजूसका धन—इतनी चीजे इनके मरनेके बाद ही दूसरोंके हाथ चढ सकती है। दूसरोंको मिल सकती है)।

१४५—उलट इ०—चाहे अनत युग बीत जायँ तो भी पीछे नही हटते।

सिंह-सँगम, सुपुरसवृचन, कदलि फलै इकसार।
तिरिया तेल, हमीर हठ, चढै न दूजी वार ॥१४६॥
वेस्या नेह, जुवार धन, काती अंबर छार।
पाछल पोर, अऊत घर, जात न लागै वार ॥१४७॥
पूनम चाँद, कुसुंभ रँग, नदी-तीर द्रुम-डाल ।
रेत भींत, भुस लीपणो, अै थिर नहीं, जमाल ॥१४८॥
दुतिया चाँद, मजोठ रँग, साध-वचन प्रतिपाल ।
पाहण रेख, र करम-गत, अै नहि मिटत, जमाल ॥१४९॥
आँधो नाग, अभागियो, मदवो, मायादार ।
परत न चालै पाधरा, समझावो सो वार ॥१५०॥
लोहा, लकड़ा, चामड़ा, पहलाँ किसा वखाण ?
वहू, वछेरा, डीकरा, नीमटियाँ परवाण ॥१५१॥
जाट, जँवाई, भाणजा, रैबारी, सोनार ।
इतरा कदे न आपणा, कर देखो व्यवहार ॥१५२॥
पासो,भैंसो, अगन, जल, ठग, ठाकर, सोनार ।
इतरा होय न आपणा, अज, वानर, कूँभार ॥१५३॥

१४६—तिरियातेल—स्त्रीके विवाहके समय तेल चढ़ाया जाता है। हम्मीर—रणथभौरका सुप्रसिद्ध चौहानवशीय राजा। हठ चढणो—हठ पकडना।

१४७—जुवार—जुवारी। काती—कार्तिक महीना। पाछल पोहर—पिछला पहर, संध्या। अऊत—कुपुत्र। जात—नाश होते।

१४९—पाहण रेख—पत्थरपर बनाई हुई लकीर। करम-गत—कर्मोंकी गति।

१५०—अभागियो—अभागा मनुष्य। मदवो—नशेबाज। मायादार—धनवान। परत—भूलकर भी। पाधरा—सीधे।

१५१—डीकरा—बच्चे। नीमटियाँ इ०—अ त तक अच्छे रहे तो प्रशंसाके योग्य हैं, पहले प्रशसा करनेसे क्या ?

१५२—जँवाई—जामाता, दामाद। रैबारी—ऊ ट चरानेवाली अेक जाति। आपणा—अपने।

१५३—पासो—चौसरकी गोट। अज—बकरा।

आसक,नट-साधन,सती, सूराँ सहबो सेल ।
अड़ापडीकी वात नहि, खराखरीको खेल ॥१५४॥
आटो·कूटो, घी, घड़ो, छूटाँ केसाँ नार ।
विना तिलक बामण मिळै, निहचै खूटो काळ ॥१५५॥
काचो पारो, ब्रह्म-रस, सिव-निर्मायल खाय ।
नाथ कहै, रे बाळका, जडामूलसूँ जाय ॥१५६॥
विद्या, बिंदु, सनेह, धन, नाखो अै न कुठाम ।
अै उण ठोड़ाँ नाखिये, जे आवै फिर काम ॥१५७॥
क्याकामण,क्या कवितरस, क्या धानुख्ख सराँह ।
लोयण, मन, तन लागताँ, सीस न धुणियै ज्याँह ॥१५८॥
सेराँ, मदवाँ, घायलाँ, गळती मांझळ रात ।
घोड़, चिडाँ, पारेवड़ाँ, तिस लागै परभात ॥१५९॥
चाकर, चकवो, चनरनर, निसदिन रहत उदास ।
खर, घघ्घू, मूरख, पसू, सदा सुखी, प्रिथुदास ॥१६०॥

१५४—आसक—प्रेमी । सेल—भाले ।

१५५—निहचै—निश्चय ही । खूटो काल—आयु समाप्त हो गई ।

१५६—ब्रह्म-रस—ब्राह्मणका धन । सिव-निर्मायल—शिवजीके चढा हुआ भोग आदि । जाय—नाश हो जाता है ।

१५७—बिंदु—वीर्य । नाखो—डालो । कुठाम—अयुक्त स्थानमें ।

१५८—वह कामिनी क्या जिसके आँखोंमें लगते ही सिर न धुनना पडे, वह कविता क्या जिसके मनमे लगते ही सिर (आनन्दके मारे) न धुनना पडे, और वह धनुषका बाण क्या जिसके लगते ही सिर (पीडाके कारण) न धुनना पडे ।

१५९—गलती इ०—मध्यरात्रि बीतते समय । चिड़ाँ—पक्षियोंको । पारेवडाँ—कबूतरोंको । तिस—प्यास ।

१६०—मिलाओ दूहा सामान्य नीति नं० ७०

(६)

चंगा माढ़ू घर रह्याँ अै तिन अवगुण होय ।
कपड़ा फाटै, रिण वधै, नाँव न जाणै कोय ॥१६१॥
जोबन दरब न खट्टिया ज्याँ परदेसाँ जाय ।
गमिया यूँ ही दीहड़ा मिनख-जमारे आय ॥१६२॥
दीयेका गुण तेल है, दीया मोटो वात ।
दीया जगमें चानणा, दीया चालै साथ ॥१६३॥
जो मत पाछे संचरै, सो मत पहली होय ।
काज न विणसै आपणो, दुरजणाँ हँसै न कोय ॥१६४॥
भूम परक्खो, हे नराँ, कहा परक्खो वींद ।
भुय विन भला न नीपजै कण, तृण, तुरी, नरींद ॥१६५॥३१७॥
॥३३८॥

१६१—स्वस्थ पुरुषके घर पडे रहनेसे ये तीन हानियाँ होती हैं—(१) कपडे फटते हैं, (२) ऋण बढ़ता है, और (३) कोई नाम भी नहो जानता (इसलिये घर में न पड़े रहकर परदेश जाना चाहिये)।

१६२—जिन्होंने परदेश जाकर युवावस्थामें धन नहीं कमाया उन्होंने मनुष्य-जन्म लेकर दिन योंही (व्यर्थ) गँवा दिये ।

१६३—दीया—(१) दीपक (२) दिया हुआ (दान किया हुआ)। चानणा—प्रकाश, उजाला। साथ इ०—मरनेके बाद साथ चलता है।

१६४—जो बुद्धि बादमें जाकर (काम बिगडने पर) आती है वह यदि पहले ही आ जाय तो न अपने कार्यका नाश हो और न शत्रु हँसी करे।

१६५—हे मनुष्यों, भूमि (स्त्री) को परीक्षा करो, वरकी क्या परीक्षा करते हो (वरके लिअे परीक्षा करके अच्छी कन्या ढूँढो, कन्याके लिअे अच्छे वरको ढूँढनेको आवश्यकता नही—यदि कन्या अच्छी है तो वर चाहे जैसा हो ? क्योंकि जबतक भूमि अच्छी नही होगी तबतक उससे उत्पन्न अनाज, घास, घोडा और मनुष्य भी अच्छे नहीं हो सकते (अच्छे अनाज और घासके लिअे अच्छी भूमिकी आवश्यकता है और अच्छे घोडे और मनुष्यके लिअे माताका अच्छा होना आवश्यक है)। भूमि—क्षेत्र, खेत, माता।

(३) वीर

१—सामान्य

जननी, जण अहड़ा जणे, कै दाता कै सूर।
नातर रहजे बाँझड़ी, मती गमाजे नूर ॥ १ ॥
इळा न देणी आपणी, रणखेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावै पाळणे, मरण-वड़ाई माय ॥ २ ॥
हू वलिहारी राणियाँ, जाया वंस छतीस।
सेर सलूणो चूण ले, सीस करै वगसीस ॥ ३ ॥
आहव नै आचार वेळयाँ मन आघो वधै।
समझ कीरती सार, रंग छै ज्यांने, राजिया ॥ ४ ॥
झालर वाज्याँ भगतजन, वंब वज्याँ रजपूत।
अेतां ऊपर ना उठै, आठूं गांठ कपूत ॥ ५ ॥
सिघाँ देस-विदेस सम, सिघाँ किसा वतन्न ?
सिघ जका वन संचरै, वै सिघांरा वन्न ॥ ६ ॥

१—सामान्य

१—हे जननी, यदि पुत्र जने तो अैसा जनना, जो या तो दाता हो या शूरवीर ; नही तो बाँझ रहना पर निकम्मे पुत्रको जनकर अपने यौवनको नष्ट न करना ।

२—अपनी जमीन किसीको न देना और रणक्षेत्रमें भिड जाना—इस प्रकार माता पलनेमे ही (झूलते हुअे) पुत्रको मरने की महिमा सिखाती है ।

३—मै राजपूत-रानियों—वीरनारियों—पर वलिहारी जाता हूँ जिन्होंने छत्तीस वशके राजपूत वीरोंको जन्म दिया जो नमकके साथ सेर चून लेकर अपना सिर मालिकके लिअे दे देते हैं ।

४—युद्ध और सदाचार पालनके समय जिनका मन, इन्हीको कीत्तिका सार समझकर, आगे बढता है उनको धन्य है ।

५—झालरके वजनेपर भक्त-जन और युद्धका नगारा बजनेपर राजपूत उठ बैठते हैं । इतनेपर जो नहीं उठते वे पूरे कपूत है ।

६—सिहोंके लिअे देश और विदेश बराबर है । सिहोंके कौन-से स्वदेश होते है ? सिह जिन वनोंमें पहुँच जाते है वे ही वन सिहोंके स्वदेश हो जाते हैं ।

केहर कुंभ विदारियो, गज-मोती खिरियाह।
जाणे, काळे जळदसूँ, ओळा ओसरियाह ॥ ७ ॥
केहर हाथळ घाव कर, कुंजर ढिगलो कीध।
हंसाँ नग, हरनूँ तुचा, दाँत किराताँ दीध ॥ ८ ॥
सादूळो वन संचरै, करण गयंदाँ नास।
प्रबळ सोच भँवराँ पड़ै, हँसाँ होय हुलास ॥ ९ ॥
घाल घणा घर पातळा, आयो थहमे आप।
सूतो नाहर नींद सुख, पोहरो दियो प्रताप ॥१०॥
गाज इतै, ऊखेल गज, माँझल दळ तरु-मूळ।
जागै नह थहमें जितै, सजि हाथळ सादूळ ॥११॥

७—सिंहने हाथीका कुंभस्थल फोड दिया जिससे गजमोती बिखर पडे। अेसा जान पड़ता है मानो काले बादलसे ओले बरसने लगे हों।

८—सिंहने अपनी हथेलीसे घाव करके हाथीका ढेर कर दिया और हसों-को मोती, महादेवजीको गज-चर्म और भीलोंको गजदंत दिये।

९—गजेन्द्रोंका नाश करनेवाला शार्दूल (सिंह) वनमें फिर रहा है। भँवरोंको भारी चिंता होने लगी है और हंसोंको हर्ष हो रहा है (भँवरे मद-जलके लोभसे हाथीके माथेको घेरे रहते हैं—हाथीके मरनेसे उन्हे मद-जल नहीं मिलेगा इसलिअे वे चिंतित हो रहे हैं, और हंसोंको मोती मिलेंगे इसलिअे वे हर्षित हो रहे हैं)।

१०—बहुत-से घरों को पतला बनाकर (अर्थात् बहुत-से जीवों को मारकर) सिंह अपने घरमें आया और सुखपूर्वक निद्रा में सो रहा। उसका पहरा स्वयं उसका प्रताप देने लगा (उसके प्रतापसे भय खाकर कोई शत्रु उसे हानि पहुँचानेके लिअे नहीं आ सकता—सच्चे वीरको पहरेदारोंकी कोई आवश्यकता नहीं होती।)

११—हे उद्धत हाथी, यहाँ पेडके नीचे पत्तोंके बीचमें तू तब तक गरजता रह जबतक अपनी गुफामें वह सिंह, हथेलीको ऊँचा करता हुआ, नहीं जाग उठता है (उसके जागते ही तेरा गरजना बन्द हो जायगा)

राहब, उट्ठ, कमाणगर, मूँछ मरोड, म रोय।
मरदाँ मरण/ हक्क है, रोणा हक्क न होय ॥१२॥
कटकाँ तबल खुड़किया, होय मरदाँ हल्ल ।
लाज कहै, मर जीवडा, वैस कहै घर चल्ल ॥१३॥
इक कर वैस विलग्गियै, इक कर लग्गिय लाज।
वय कह जोगिणपुर चलहु, लाज कहै भिड़ राज ॥१४॥
अण-विस्वासी जीवड़ा, कायर किम दौड़ंह ।
मरसी कोठे लोहरे, ऊबरसी चौडैह ॥१५॥
काची गार किले, साँचा माँही सूरमा ।
भेल्या केम भिले, राजाँ कोप्याँ, राजिया?॥१६॥
कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै सुपह।
लंक विकट गढ लीध, रींछ-वानराँ, राजिया ॥१७॥

१२—हे धनुषधारी राहब, तू उठ और अपनी मोंछमें वल दे, रो मत क्योंकि मर्दोंके लिअे मरना उचित है, रोना उचित नहीं।

१३—सेनामें नगाड़े बज उठे और वीरोंमें हल्ला हो रहा है। इस समय लोक-लज्जा तो यह कहती है कि, अरे जीव, प्राण दे दे पर जीवन (की माया) कहती है कि, अरे, घर चला चल।

१४—अेक ओर जीवनकी आशा लगी है और अेक ओर लोकलज्जा लगी है। जीवनकी आशा कहती है कि दिल्ली वापिस लौट चलो और लज्जा कहती है कि अरे तुम भिड जाओ।

१५—हे विश्वास-हीन जीव, अरे कायर, क्यों दौडता है ? लोहेकी कोठीमें जाकर भी मरना पडेगा, और खुलेमें रहकर भी बच सकता है (या, यहाँ युद्धमे यशरूपी देह पाकर—स्पष्ट ही बच जायगा)।

१६—किला चाहे कच्ची गारसे ही बना हो पर यदि भीतर रहनेवाले सच्चे शूरवीर हैं तो, वह राजाओंके कुपित हो (कर चढाई कर) ने पर भी, किस प्रकार विध्वस्त हो सकता है ? -

१७—सेनाका कुछ कारण नही (सेना चाहे जैसी हो), उसके स्वामी शूरवीर होने चाहिअे। देखा लका जैसे विकट किलेको साधारण रीछ-बन्दरोंने ले लिया।

सूरा सोइ पिछाणियै, लड़ै धरमके हेत।
पुरजा-पुरजा कट पड़ै, कदे न छोडै खेत ॥१८॥
क्रपण जतन धनरो करै, कायर जीव-जतन्न।
सूर जतन उणरो करै, जिणरो खाधो अन्न ॥१९॥
नर,जिण सिर गालब्र नहीं दुसमणरा सौ दाव।
वे-पढियाँ ही, बाँकला, बै पढियाराँ राव ॥२०॥
जसवँत गरुड़ न उड्डही ताळी त्रिजड तणेह।
हाँकळिया ढूला हुवै पंछी अवर पुणेह ॥२१॥
भूँडण तो भूँडा जणै, हिरणी जणै सुगट्ठ।
पान खड़क्के उठ चलै, थागड़ चालै थट्ट ॥२२॥
दस जूता, दस जूतणा, दस पाखती वहंत।
अेकण धवळा वायरा खैंचाताण करंत ॥२३॥

१८—उसे ही शूर समझना चाहिअे जो धर्मके लिअे लडता है और जो, चाहे पुर्जे-पुर्जे होकर कट पड़े तो भी, युद्धक्षेत्रसे नहीं भागता।

१९—कजूस अपने धनकी रक्षाका यत्न करता है और कायर अपने जीवकी रक्षाका। पर शूरवीर उसकी रक्षाका यत्न करता है जिसका अन्न उसने खाया है (शूर प्राण देकर भी नमकका बदला चुकाता है)।

२०—बाँकीदास कहते हैं कि अैसे मनुष्य, जिनपर शत्रुका दाँव नहीं विजय पाता, बिना पढे हुअे ही पढ़े हुओंके राजा हैं।

२१—जसवतसिह कहते हैं कि तलवारकी धमक होनेपर भी गरुड पक्षी नहीं उड़ता पर दूसरे पक्षी हाँक लगाते ही भयभीत हो जाते हैं।

२२—शूकरी कुरूप पुत्रोंको जनती है और हिरनी सुन्दर सतानको जन्म देती है पर ये (हिरनीके बच्चे) पत्तेका खुड़का होते ही भाग छूटते हैं और वे (शूकरीके बच्चे) बडी शानके साथ धीरे-धीरे चलते हैं (सुन्दर किंतु कायर सतानसे कुरूप किंतु वीर सतान कहीं अच्छी)।

२३—दस बैल जुते हुए हैं, दस जोतनेको हैं और दस पासमें खाली चल रहे हैं। इतना होनेपर भी एक धवले बैलके बिना सब खींचातान ही कर रहे हैं (काम ठीकसे नही होता)।

गाधारी सौ जनमिया, कु'ता पाँच जणेह ।
वै पाँचूं रण जीतिया, घणचक काह करेह ? ।।२४।।
दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत ।
काकी कु'जर काटतॉं जाणवियो जेठूत ।।२५।।
ढोल सुणंताँ मंगळी, मूंछाँ भूँह चढंत ।
चॅवरीमे पोछाणियो, कॅवरी मरणो कंत ।।२६।।
ग्रीव नमाडै देखणो, करणो सत्रु सिराँह ।
परणंताँ धण परखियो, ओछी ऊमर नाह ।।२७।।
मैं परणंती परखियो, तोरणरी तणियाँह । समभ्य
घर-धण लाँबी पहरताँ, पहरै वण जणियाँह ।।२८।।
मैं परणंती परखियो, मूंछाँ भिड़ियो मोड़ ।
जासो सुर्ग न अेकलो, जासी दळ संजोड़ ।।२९।।

२४—गांधारीने सौ पुत्र जने और कुन्तीने केवल पाँच। पर उन पाँचोंने ही युद्धमें विजय पाई। व्यर्थ भीडसे क्या लाभ ?

२५—जेठका लडका अपनी चाचीको प्रतिदिन भोलाभाला और गरीब स्वभावका दिखाई देता था परंतु आज उसे हाथियोको काटता हुआ देखकर चाचीने उसकी वास्तविकताको जाना ।

२६—मांगलिक विवाह-वाद्यको सुनकर वरकी मोंछे भौंहों से जा लगती है, अैसे पतिको देखकर वधूने विवाह-मडपमे ही जान लिया कि वह मरनेवाला (प्राणोंकी पर्वाह न करनेवाला) है ।

२७—वर गर्दन नीची करके देखनेवाला और शत्रुओंको विजय करनेवाला है। अैसे वरको देखकर वधूने विवाहके समय ही जान लिया कि वह कम आयु-वाला है (युद्धमें पीछे हटनेवाला नही अत शीघ्र ही मारा जायगा)।

२८—मैने विवाहके समय तोरणकी तणियोंमें ही पतिकी परीक्षा करली कि यदि उसकी घरवाली लाँबी नामका शोक-वस्त्र पहनेगी तो पहननेवाली वह अकेली ही नही होगी और भी बहुत सी स्त्रियाँ उसे पहनेंगी (अर्थात् वह अकेला नही मरेगा, कइयोंको मारकर मरेगा।

२९—मैंने विवाहके समय देखा कि पतिका मोड (विवाहका मौर) मूँछोंसे लगा हुआ है अत मैने जान लिया कि वह स्वर्ग जाते समय अकेला नहीं जायगा, दल सजाकर जावेगा (युद्धमें कितनोंको मारकर मरेगा)।

मैं परणंती परखियो, नाह भरे वळ नाड़।
पड़ै न रणमे अेकलो, पडसी केता पाड़ ॥३०॥
मैं परणंती परखियो, साजन साचे मन्न।
खाग-तणे बळ खावसी अधपतियाँरो अन्न ॥३१॥
मैं परणंती परखियो, वागाँ माँहि सनाह।
लायो साथ लिवायकर ओछी ऊमर नाह ॥३२॥
सखी, हमीणे कंथरी पाई या परतीत।
हार्यो घराँ न आवसी, आसी ओ रणजीत ॥३३॥
सखी, हमीणे कंथरी पूरी या परतीत।
कै जासो सुर-द्रंगड़े, कै आसी रणजीत ॥३४॥
सखी, हमीणे कंथरी, उरसाँ खाग अड़ै।
पर दळ ऊभाँ नह पड़ै, परदळ जीत पड़ै ॥३५॥

३०—मैंने विवाहके समय देखा कि पतिके माथेमें बल पड़े रहे हैं अतः मैंने जान लिया कि (युद्धभूमिमें) वह अकेला नहीं गिरेगा किंतु कितनोंको गिराकर तब गिरेगा।

३१—मैंने विवाहके समय ही पतिकी परीक्षा कर ली कि वह सच्चे मन वाला है और अपनी तलवारके बलसे राजाओंका अन्न खावेगा।

३२—मैंने विवाहके समय पतिकी परीक्षा की। वह वरके जामेके भीतर कवच पहने था। अतः मैंने जान लिया कि पति साथमें थोडी आयु लिखाकर लाया है।

३३—हे सखि, मैंने अपने पतिका यह विश्वास पा लिया है कि वह हारा हुआ घर कभी नही आवेगा, आवेगा तो युद्धको जीतकर ही आवेगा।

३४—हे सखि, मेरे पति का यह पूरा भरोसा है कि या तो वह स्वर्ग जायगा या युद्धको जीतकर ही घर आवेगा।

३५—हे सखि, मेरे पतिकी तलवार छातीसे भिड रही है। जब तक शत्रु-की सेना खड़ी है तब तक वह नहीं गिरेगा, वह शत्रुकी सेनाको जीतकर ही युद्धभूमिमें गिरेगा।

नाह न आणी नीदमे अेडी ठोड अँगूठ ।
सो, सजनी, किम देयसी, परदळ भिडियाँ पूठ ॥३६॥
सखी, तम्हीणा कंथने घेरयो घणाँ जणाँह ।
सिर वहुराँ, मुख मंगणाँ, वैरी चहूँ वळाँह ॥३७॥
वित वहुराँ, दत मंगणाँ, वैरी खाग-झळाँह ।
साराँने चूकावसी, जे ऊभो कुशलाँह ॥३८॥
भाभी, देवर अेकलो सोचीजै न लगार ।
मूझ भरोसो नाहरो, फौजाँ ढाहणहार ॥३९॥
अह भग्गा पारक्कडा, तो, सखि, मूझ पियेण ।
अह भग्गा अम्हे-तणा, तो तिह जूझ पडेण ॥४०॥
जो मुवा तो अत भला, जो उवरथा तो सार ।
बेहुँ प्रकाराँ, हे सखी, मादळ घूमै वार ॥४१॥

३६—पतिने नीदमें भी अँगूठेकी ठौरपर अेडी नही दी। हे सखी वह, शत्रुकी सेनासे भिड़नेपर, पीठ कैसे देगा ?

३७—हे सखी, तुम्हारे कतको बहुत लोगोंने घेर लिया है—सिरको महाजनोंने, मुखको याचकोंने, और बैरियोंने चारों ओरसे ।

३८—(ऊपरवाले दूहेका उत्तर) यदि वह कुशलपूर्वक खडा रहा तो सबको चुका देगा—महाजनोंको धनसे, याचकोंको दानसे, और शत्रुओंको खडगकी ज्वालाओंसे ।

३९—(देवरानीका कथन जेठानीके प्रति) हे भाभी, यह मत सोचना कि देवर अकेला है। मुझे अपने पतिका पूरा भरोसा है कि वह सेनाओंका समूल विध्वस करनेवाला है ।

४०—हे सखी, यदि शत्रुओंके सैनिक भागे है तो मेरे पतिके कारण। और यदि हमारे सैनिक भागे हैं तो अवश्य ही वह युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुआ है ।

४१—युद्धमें पति यदि मर गया तो वहुत अच्छा है और यदि बच गया तो फिर क्या कहना । हे सखी, दोनों प्रकार से द्वारपर हाथी घूमेंगे (उत्सव होगा)।

ढोल वृजंताँ, हे सखी, पति आयो मुझ लेण।
वृागाँ ढोलाँ हूँ चली, पतिरो वृदलो देण ॥४२॥
साईसूँ साँची रहूँ, वृाज, वृाज, रे ढोल ।
पंचनमें मोरी पत रहै, सखियनमें रह बोल ॥४३॥
पंथी, एक सँदेसडो, बाबलने कहियाह ।
जायाँ थाल़ न वृज्जिया, टामक टहटहियाह ॥४४॥
धीर नगारो राजरो, गह भरियो गाजै ।
दोख्याँरा मन ओधकै, सोख्याँरा छाजै ॥४५॥
कंता, रिणमें पैसताँ तू मत कायर होय।
तुम्हे लज्ज, मुझ मेहणो, भलो न भाखै कोय ॥४६॥
सूरा, रणमें जायकै लोहा करो निसंक ।
ना मुझ चढै रँडापणो, ना तुझ चढै कल़ंक ॥४७॥

४२—हे सखी, विवाहके समय पति ढोल बजाता हुआ मुझे लेने आया था। आज मैं उसका बदला चुकानेके लिअे ढोल बजाती हुई उसके साथ जा रही हूँ (सती होनेके लिअे)।

४३—हे ढोल, तू बारबार बज, मैं अपने स्वामीके प्रति सच्ची रहूँ, पाँच लोगोंमें मेरी प्रतिष्ठा रहे, और सखियोंमें मेरा नाम रह जाय।

४४—हे पथिक, मेरा अेक छोटा-सा सदेशा पितासे जाकर कह देना कि मेरे जन्मके समय तो तुमने थाली भी नहीं बजाई थी पर आज मेरे लिअे मोटे-मोटे ढोल बज रहे हैं (इस प्रकार तुम्हारा नाम भी मैंने समुज्ज्वल किया है)।

४५—पत्नीका कथन वीरके प्रति—तुम्हारा गभीर नादवाला नगाडा गम्भीर स्वरसे गरज रहा है जिसको सुनकर शत्रुओंके मन चौंक उठते हैं और मित्रोंके मन उल्लसित होते हैं।

४६—हे कत, रणमें प्रवेश करते समय तुम कायर मत हो जाना। इससे तुम्हें लज्जा उठानी पडेगी, मुझे ताना मिलेगा, और कोई भी इसे अच्छा नहीं बतावेगा।

४७—हे शूर, रणमें जाकर निःशक होकर हथियार चलाओ जिससे न तो मुझे वैधव्य भोगना पडे और न तुम्हें कलक लगे।

भागे मत तूॅं, कंथडा, तो भागये मुझ खोड़ ।
मोरी संग सहेलड्याँ, ताळी दें मुख मोड ॥४८॥
अमल कचोळां ऊझळै, होदां केसर रंग ।
पीव, जके घर जांवतां, सीस न लीजै संग ॥४९॥
कंथा, रणमें पैसिकै, काँइ जुवै छै साथ ।
साथी थारे तीन है,—हियो, कटारी, हाथ ॥५०॥

२—वीर क्षत्राणीका उपालंभ

मतवाळा हो पोढग्या, सुधवुध दीन्ही भूल ।
पर-हाथांरा हो गया, यो हिड़दामे सूल ॥ १ ॥
दुसमण देसाँ लूँटकर ले ज्यावै परदेस ।
राजन, चुडल्यां पहरलो, धरो जनानो भेस ॥ २ ॥
तनपर साडी ओढकर, महलाँ बैठा जाय ।
अन्यायी दिन-दिन अठे जोर जमाता जाय ॥ ३ ॥

४८—हे प्यारे कंत, तुम युद्धभूमिमें जाकर मत भागना । तुम्हारे भागनेसे मुझे कलंक लगेगा—मेरी साथ की सहेलियाँ मुख फिरा-फिराकर ताली बजावेंगी (मेरा उपहास करेंगी) ।

४९—कटोरेमें अफीम उछल रहा है और हौदोंमें केशरिया रंग, हे प्रियतम, उस घरको (युद्धभूमिको) जाते समय सिरको साथमें नहो लेना चाहिये ।

५०—हे कंत, रणमें प्रवेश करके अब साथको क्या देखते हो ? तुम्हारे तीन बडे भारी साथी हैं—वीर हृदय, कटारी और कटारी चलानेवाला हाथ ।

२—वीर क्षत्राणीका उपालम्भ

१—पोढग्या—सो गये । पर-हाथाराँ—पराधीन । हिडदा—हृदय । सूल दुःख ।

३—महलाँ—महलोंमें, जनानेमें । जोर इ०—अपनी प्रवलता और प्रभुता जमाते जाते है ।

दूध लजायो मायरो, कीनो देस गुलाम।
कै सलाम खुद झेलता, कर दिया खुद सलाम ॥ ४ ॥
कहाँ गई वा वीरता, कहाँ रजपूती शान।
टुकड़ाँरा मोजात हो, खो बैठ्या अभिमान ॥ ५ ॥
रजपूती सत खो दियो, सतहीणा सरदार।
पतहीणा रजपूत हो, मतहीणा भरतार ॥ ६ ॥
पराधीन भारत हुयो, प्यालाँरी मनुवार।
मात्रभूम परतंत्र हो, वार-वार धिरकार ॥ ७ ॥
तीतर लवा बटेर अर, सुस्सा सूर सिकार।
इणहाँ रजपूती नहीं, नाम सिघ रखणार ॥ ८ ॥
विष खावो, कै शरण लो सरवरियारी थाह।
कै कंठाँ विच घाल लो घाघरियारी घाह ॥ ९ ॥
वीरपणो धारण करो या कायरता छोड।
वैरी लोहो मान ले, मूँडो लेवै मोड ॥१०॥
वस्त्र कसूमल पहर लो, कसो कमर तलवार।
बरछी और कटार ले, हुवो तुरँग-असवार ॥११॥

४—मायरो—माताका। का—या तो। झेलता—स्वीकार करते थे। कर इ०—स्वय सलाम करने लगे।

५—मोजात—मुहताज।

७—हुयो—हुआ। प्यालाँरी—शराबके प्यालोंकी। मनवार—मनुहारसे (शराब पीते-पिलाते हुअे)। मात्रभूम—मातृभूमि। धिरकार—धिक्कार।

८—इणहाँ—इनमें। नाम इ०—तुम तो 'सिह' यह नाम धारण करनेवाले हो (राजपूतोंके नामोंके अतमें 'सिह' पद होता है)।

९—सरवरिया इ०—सरोवरकी गहराईमें। कै—अथवा। घाल लो—डाल लो। घाघरिया इ०—लहँगा पहन लो।

१०—लोहो मान लै—लोहा मान लें, पराजय मान ले। मूँडो इ०—मुख मोड लें, पीठ दिखा दे।

११—कसूमल—कुसूमी रगके।

पाछा फिर मत झाँकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेतमे, पर मत आज्यो हार ॥१२॥
सीख राजरी होय, तो हूँ भी चालूँ साथ।
दुसमण भी फिर देख ले म्हाँरा दो-दो हाथ ॥१३॥
यो सुवाग खारो लगै, जद कायर भरतार।
रंडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार ॥१४॥६४॥

३—विशेष वीर

(क)—उदयपुर (मेवाड)

१—महाराणा प्रतापसिंह

माई, अेहा पूत जण, जेहा राण प्रताप ।
अकबर सुतो औधकै, जाण सिराणे साँप ॥ १ ॥
धर वाँकी, दिन पाधरा, मरद न मूकै माण ।
घणाँ नरिंदाँ घेरियो रहै गिरंदाँ राण ॥ २ ॥
पातल राण, प्रवाड मल, वाँकी घडा-विभाड ।
खूँदाडै कुण है खुराँ तो ऊभाँ मेवाड ? ॥ ३ ॥

१२—भल—भले ही, चाहे । खेतमें—रणक्षेत्रमें । आज्यो—आना ।

१३—सीख—आज्ञा । राजरी—आपकी । हूँ—मै । दो-दो हाथ—दो-दो हाथ करना, वीरताका युद्ध ।

१४—यो इ०—जब पति कायर हो तो यह सौभाग्य भी बुरा लगता है पर यदि वह शूरवीर हो तो वैधव्य भी अच्छा है ।

३—विशेष वीर

१—हे माता, अैसे पुत्रोंको जन्म दे जैसा राणा प्रताप है जिसके कारण प्रतापी सम्राट् अकबर सोता हुआ चौंक पडता है मानो सिरहाने साँप आ बैठा हो ।

२—उसकी भूमि अत्यन्त विकट है, उसके दिन सानुकूल हैं, वह वीर अपने मानको नही छोडता, वह राणा अनेक राजाओंसे घिरा हुआ पहाडोमे रहता है ।

३—विकट सेनाओंका नाश करनेवाले अद्भुतकर्मा वीर राणा प्रताप, तेरे खडे हुअे मेवाड़को कौन खुरोंसे रौंद सकता है ?

पातल़ पाघ प्रवाँण साँची साँगाहर-तणी ।
रही सदालग, राण, अकबरसूँ ऊभी अणी ॥ ४ ॥
चोथो, चीतोडाह, वाँटो वाजंती-तणो ।
माथे, मेवाड़ाह, थारे राण, प्रतापसी ॥ ५ ॥
अइहो, अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा ।
नम-नम नीसरियाह, राण विना सह राजवी ॥ ६ ॥
सह गावडियै साथ अेकण वाड़े वाडियो ।
राण न मानी नाथ, ताँडै साँड प्रतापसी ॥ ७ ॥
पहु गोधलि़या पास, आ.लूधा अकबर अणी ।
राणो खिमै न रास प्रघलो़ साँड प्रतापसी ॥ ८ ॥

महाराज पृथ्वीराजका पत्र

पातल़ जो पतसाह बोलै मुख हूँताँ वयण ।
मिहर पिछम दिस माँह ऊगै कासपराव-उत ॥ ९ ॥

४—साँगाके वंशज प्रतापकी पगडी ही सच्ची और प्रामाणिक है जो अकबर के सामने सदैव सीधी खडी रही ।

५—हे चित्तोडवाले, बजती हुई घडियालका चौथा भाग (पावघड़ी अर्थात् पाघड़ी यानी पगड़ी), हे मेवाडवाले राणा प्रताप, तुम्हारे ही सिरपर है ।

६—अरे तुर्क अकबर, तेरा तेज अद्भुत है जो एक राणाके सिवाय सारे राजा झुक-झुककर तेरे सामनेसे निकले ।

७—अकबरने गायोंके सब साथको अेक ही बाडेमें बन्द कर दिया पर राणा रूपी साँड़ने उसकी नाथ (नाकका बंधन) को नहीं स्वीकार की और खडा हुआ गर्ज रहा है ।

८—वैलो [illegible] समान राजा लोग अकबरके पाशमें बँध गये परन्तु राणा-रूपी जबर्दस्त साँड़ उस [illegible] रोको स्पर्श नहीं करता ।

९—यदि प्रत[illegible] लिये बादशाह यह शब्द कहे तो राजा कश्यपका पुत्र सूर्य पश्चि[illegible]। जैसे सूर्यका पश्चिममें उगना असभव है वैसे ही प्रतापका अक[illegible]ाके । [illegible] कारना असभव है) ।

इ०—[illegible] पह [illegible] मान लै—लोहा मान [illegible] अकबरके

पटकूं मूंछाँ पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजै लिख, दीवाण, इण दो महली वात इक ॥१०॥

महाराणा प्रतापका उत्तर

तुरक कहासी मुख पते इण तनसूं, इकलंग।
ऊगै ज्यांही ऊगसी प्राची वीच पतंग ॥११॥
खुसी-हूंत, पीथल कमध, पटको मूंछाँ पाण।
पछटण है जेते पतो कलमाँ सिर कैवाण ॥१२॥
साँग मूँड सहसी स को, सम-जस जहर सवाद।
भड पीथल, जीतो भलाँ वैंण तुरकसूँ वाद ॥१३॥

आढा दुरसा कृत—

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिंदू अवर।
जागै जग-दातार पोहरे राण प्रतापसी ॥१४॥
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूवा हिंदू-तुरक।
मेवाडो तिण माँह पोयण-फूल प्रतापसी ॥१५॥

१०—हे अेकलिंगके दीवान महाराणा, मै अपनी मूँछोंपर ताव दूँ अथवा अपने शरीरपर तलवार चला लूँ ? इन दोनोंमें से अेक बात लिख दो।

११—भगवान् अेकलिंग इस शरीर (अर्थात् जन्म) में प्रतापके मुखसे अकबरके लिअे तुर्क शब्द ही कहलवायेंगे और सूर्य जहां उगता है वही, पूर्व दिशामें, उगेगा।

१२—हे राठोड पृथ्वीराज, खुशीसे अपनी मोंछोंपर ताव दो जबतक यवनोंके सिरपर तलवार पछाडनेके लिअे प्रताप जीवित है।

१३—यह प्रताप अपने माथेपर साँगका प्रहार सहेगा क्योंकि बराबरवालेका यश मनुष्यके लिअे विष जैसा (असह्य) होता है। हे वीर पृथ्वीराज, तुर्कके साथ वचनोंके विवादमें विजयी होवो।

१४—अकबर घोर अन्धकार है जिसमें दूसरे सब हिंदू निद्रा-वश हो गये परन्तु जगतका दातार राणा प्रतापसिंह पहरेपर खडा जाग रहा है।

१५—अकबर गहरा समुद्र है। उसमें हिंदू और मुसलमान सभी डूब गये। परन्तु उस समुद्रमे मेवाडका राणा प्रतापसिंह कमलके फूलकी भाँति ऊपर ही स्थित है।

अकबरिये इक वार दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार रहियो राण प्रतापसी ॥१६॥
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी, सूरमा ॥१७॥
अकबर गरब न आँण, हींदू सह चाकर हुवा।
दीठो कोई दिवाँण करतो लटका कटहड़े ? ॥१८॥
मन अकबर मजबूत, फूट हींदवाँ बेखबर।
काफर---कोम---कपूत पकड़ूँ राण -प्रतापसी ॥१६॥
अकबर कीन्हा आद, हींदू न्रप हाजर हुवा।
मेदपाट मरजाद पग लागो न प्रतापसी ॥२०॥
मेछाँ आगल माथ निवैं नही नर-नाथरो।
सो करतब समराथ, पालै राण प्रतापसी ॥२१॥

१६—अकबरने अेक ही बारमें सारी दुनिया (के घोड़ों) के दाग लगवा दिया परन्तु राणा प्रतापसिंह बिना दागे हुअे घोडेपर ही सवार रहा (अकबरने अपने अधीनस्थ सरदारों आदिके घोड़ोके दाग लगवानेकी प्रथा जारी की थी)।

१७—अकबर स्वयं चला जायगा और दिल्ली भी दूसरोंके हाथोंमें चली जायगी पर हे शूरवीर और पुण्यकी राशि प्रतापसिंह, तेरा सुयश कभी नही जायगा।

१८—हे अकबर, तू यह गर्व मत कर कि सब हिंदू तेरे चाकर बन गये। क्या किसीने दीवाँण (महाराणा प्रतापसिंह) को कटहरेके आगे लटके करते देखा है ? (कटहड़े—बादशाहके सिंहासनके कटहरा लगा रहता था। लटका—तमाशा, ख्याल, झुक-झुककर सलाम करना)।

१६—असावधान हिन्दुओंमें परस्पर फूट है और अकबरका मन दृढ़ है। वह सोचता है कि काफिरोंकी कौममें केवल प्रतापसिंह ही कपूत रह गया है (बाकी तो सभी सपूतोंकी भाँति मेरा कहना मानते हैं)। उसे भी पकड़ लूँ।

२०—अकबरने याद किये तो सभी हिंदू राजा अेक-अेक करके उसके सामने हाजिर हो गये (और अधीनता स्वीकार कर ली) पर मेवाडका मर्यादास्वरूप राणा प्रतापसिंह उसके पैरों नहीं पड़ा।

२१—'जो नरोंका नाथ है उसका मस्तक म्लेच्छोंके आगे नहीं झुक सकता' इस कर्त्तव्यका पालन केवल समर्थ प्रतापसिंह ही करता है।

वुहा वडेरा वाट, वाट तिकण वहणो विसद।
खाग—त्याग---खत्रवाट पूरो राण प्रतापसी ॥२२॥
कदे न नामै कंध, अकबरढिग आवैन ओ।
सूरज-वंस सॅबंध पाळै राण प्रतापसी ॥२३॥
अकबर कुटल अनीत, ओर विटल सिर आदरै।
रघुकुल—उत्तम— रीत पाळै राण प्रतापसी ॥२४॥
लोपै हींदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूं।
आरज-कुलरी आज पूँजी राण प्रतापसी ॥२५॥
अकबर पथर अनेक कै भूपत भेळा किया।
हाथ न लागो हेक पारस राण प्रतापसी ॥२६॥
साँगो धरम-सहाय बाबरसूं भिड़ियो विहस।
अकबर-कदमाँ आय पड़ै न राण प्रतापसी ॥२७॥
सुख-हित स्याल-समाज हींदू अकबर-वस हुवा।
रोसीलो म्रगराज पजै न राण प्रतापसी ॥२८॥

२२—जिस मार्गपर बडेरे चले हैं उसी बडे मार्गपर चलना चाहिअे। क्षत्रियोंमे इस व्रतका पालन करनेवाला अेक खड्ग (चलाने) और दान (देने) मे पूरा महाराणा प्रतापसिह ही है।

२३—यह राणा न तो कभी अकबरके पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है। प्रतापसिह सूर्यवशके सम्बन्धका पालन करता है।

२४—दूसरे बिगड़े हुअे राजा अकबरकी कुटिल अनीतिको सिरपर रखकर आदर देते हैं पर राणा प्रतापसिह रघुके कुलकी उत्तम रीतिका पालन करता है।

२५—हिन्दू लज्जा को लोप करते है और मुसलमानके साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते है। आज आर्य कुलकी पूँजी तो अेकमात्र प्रतापसिह ही (रह गया) है।

२६—अकबरने अनेक राजारूपी पत्थरोंको इकट्ठा कर रखा है। पर पारस पत्थरके समान अेक राणा प्रतापसिह उसके हाथ नही लगा।

२७—धरमकी सहायताके लिअे महाराणा साँगा बाबरसे भिड़ा था उसी परपराके पालनके लिअे राणा प्रतापसिह अकबरके पैरोंमे आकर नही गिरता।

२८—सुख-भोगके लिअे हिन्दू राजा गीदड़ोंकी भाँति अकबरके वश हो गये पर रोषवाले सिहकी भाँति राणा प्रताप उसके फदेमें नहीं आता॥

अकबर कूट अजांण हियाफूट छोडै न हठ ।
पगाँ न लागण पाण पणधर राण प्रतापसी ॥२९॥

अकबर हिये उचाट रात-दिवस लागी रहै ।
रजवट - वट - समराट पाटप राण प्रतापसी ॥३०॥

जग जाडा जूझार अकबर-पग चाँपै अधिप ।
गउ-राखण गुंजार पिडमें राण प्रतापसी ॥३१॥

अकबर-कने अनेक नम-नम नीसरिया न्रपत ।
अनमी रहियो अेक पुहमी राण प्रतापसी ॥३२॥

थिर न्रप हिंदुस्थान लातरग्या मग लोभ-लग ।
माता भूमी मान पूजै राण प्रतापसी ॥३३॥

ढिग अकबर दल़ ढाण अग-अग भगड़े, आथड़ै ।
मग-मग पाडै माण पग-पग राण प्रतापसी ॥३४॥

२९—नीच और मूर्ख अकबरकी हृदय की (आँखे) फूट गई हैं जो वह अपना हठ नहीं छोडता। प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला राणा प्रतापसिंह उसके पैरों पडनेवाला नहीं ।

३०—अकबरका हृदय रात-दिन उचटा रहता है। राणा प्रतापसिंह क्षत्रियोंके धर्मके पालन करनेवालोंमें पाटवी सम्राट हैं ।

३१—जगतमें जो जबर्दस्त योद्धा हैं अैसे राजा भी अकबरके पैरोंकी सेवा करते हैं परन्तु पृथ्वी और गौका रक्षक प्रतापसिंह अकबरके हृदयमें निवास करता है (प्रतापके कारण अकबरके हृदयमें सदा चिंता बनी रहती है) ।

३२—अकबरके पास अनेक राजा झुक-झुककर निकले। पृथ्वीपर अेक प्रतापसिंह ही उसके आगे नहीं झुका ।

३३—किसीसे न डिगनेवाले हिन्दुस्तानके राजा लोभके कारण कर्त्तव्यसे भ्रष्ट होगये। परन्तु राणा प्रताप पृथ्वीको माता मानकर पूजता है ।

३४—महाराणा प्रताप अकबरकी सेनाके सामने दौड कर (जाता है और) पहाड-पहाडपर उससे भिडता और लडता है। प्रत्येक मार्गमें प्रत्येक पैरपर वह उसका मान भंजन करता है ।

चीत मरण रण चाय, अकब्बर-आधीनी विना।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥३५॥
गोहिल-कुल़—धन-गाढ लेवण अकब्बर लालची।
कोडो दै नह काढ पणधर र।ण प्रतापसी ॥३ ॥
अकब्बर मच्छ अयाण पूँछ-उछाल़न बल़ प्रबल़।
गोहिलवत गहराण पाथोनिधी प्रतापसी ॥३७॥
नित गुधल़ावण नीर कुंभी सम अकबर क्रमै।
गोहिल राण गंभीर पण गुधल़ै न प्रतापसी ॥३८॥
उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लाखाँ पिसण।
व़ंढीगार व़कार पैठो उदियाचल़ पतो ॥३९॥
रोकै अकबर राह ले हींदू कूकर लखाँ।
व़ीभरतो व़ाराह पाडै घणा प्रतापसी ॥४०॥

३५—राणा प्रतापके चित्तमें सदा यही चाह रहती है कि अकब्रःकी अधीनता स्वीकार किये विना रणमें मरण हो जाय । पराधीनतामें दुख पाता हुआ प्रतापसिंह फिर नही जीता।

३६—अकब्र गुहिलोतवशके धनको लेनेके लिअे गहरा लालच करता है। परन्तु प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला प्रताप अेक कौडी भी निकालकर नहीं देता।

३७—अकब्र मूर्ख मच्छ है जो प्रबल बलके साथ पूँछ उछालता है परन्तु गुहिलका वशज प्रतापसिह गहरा समुद्र है। जो साधारण मच्छके पूँछ उछालनेसे गँदला नही हो सकता।।

३८—हाथीके समान अकब्र जलको गँदला करनेके लिअे सदा फिरता है परन्तु गुहिलका वशज राणा प्रताप गम्भीर समुद्र है जो हाथीके चलनेसे गँदला नहीं हो सकता। (कुम्भी=मगर या हाथी)।

३९—हथियारोंकी अपार झडाफड मच रही है, लाखों शत्रु पीछे लगे हैं, फिर भी युद्ध करनेवाला प्रतापसिह ललकारकर उदयपुरमें प्रविष्ट हुआ।

४०—अकबर लाखों हिन्दू-रूपी कूकरोंको लेकर राणाकी राह रोकता है पर गरजता हुआ वराह प्रतापसिंह उनमेंसे अनेकोंको गिरा देता है और निकल जाता है।

हिरदै ऊणा होत सिर-धूणा अकबर सदा।
दिन दूणा देसोत पूणा हुवै न प्रतापसी ॥४१॥

कलपै अकबर काय, गुण पूँगीधर गोडिया ?
मिणधर छावड़ मांय पड़ै न राण प्रतापसी ॥४२॥

भागै सागै भाम, अमरत लागै ऊमरा।
अकबर-तल आराम पेखै जहर प्रतापसी ॥४३॥

लंघण कर लंकाल सादूलो भूखो सुवै।
कुलवट छाड क्रपाल पैड न देत प्रतापसी ॥४४॥

अकबर मैगल अच्छ, माँझल दल घूमै मसत।
पंचानन पल भच्छ पटकै छडा प्रतापसी ॥४५॥

अै जो अकबर-काह सैंधव कुंजर साँवठा।
वाँसे तो वहताह पंजर थया, प्रतापसी ॥४६॥

४१—सिर धुननेवाला अकबर हृदयमें सदा ऊना होता है पर राजा प्रतापसिंह प्रतिदिन दूना होता जाता है, कभी पौना नहीं होता। (ऊना—कम हतोत्साह)।

४२—हे रस्सी और पूँगीवाले सँपेरे अकबर, क्यों कष्ट उठाता है ? कितना ही प्रयत्न कर, पर राणा प्रतापरूपी साँप तेरी छबडीमें नहीं पडेगा।

४३—राणा प्रताप स्त्रीको साथ लिये भागता है और उदुंबर भी उसे अमृतके समान लगते हैं पर अकबरकी अधीनतामें रहकर आरामको वह विषके समान समझता है।

४४—प्रतापी सिंहके समान राणा प्रताप लंघन करके भूखा सो जाता है परन्तु कुलका मार्ग छोडकर दूसरे मार्गपर पैर नहीं रखता।

४५—अकबर श्रेष्ठ हाथीके समान मस्त होकर दलके अन्दर विचरता है परन्तु मांस खानेवाले सिंहके समान प्रताप अकेला ही उसे हथेली मारकर गिरा देता है।

४६—ये जो अकबरके मजबूत घोडे और हाथी हैं वे, हे प्रताप, तेरे पीछे भागते-भागते अस्थिपंजर-मात्र रह गये हैं।

वड़ी विपत सह वीर वड़ी कीत खाटी वसू।
धरम-धुरंधर धीर पोरस धिनो प्रतापसी ॥४७॥
जिणरो जस जग मांहि, जिणरो जग धिन जीवणो।
नेडो अपजस नांहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥४८॥
अजरामर धन अेह, जस रह ज्यावै जगतमें।
सुख-दुख दोनूं देह सुपन समान, प्रतापसी ॥४९॥

राणा सूरायच टापरया कृत—

चेला वंस छतीस, गुर घर गहलोतां-तणो।
राजा—राणां, रीस कहतां मत कोई करो ॥५०॥
चंपो चीतोडाह पोरस-तणो—प्रतापसी।
सोरभ अकबरसाह अलियल आभड़िया नहीं ॥५१॥
माथे मैंगल खाग तै वाही, परतापसी।
वांट किया बे भाग गोटी साबू तांत गत ॥५२॥

४७—वीर राजा प्रतापने बडी विपत्ति सहकर पृथ्वीपर बडी भारी कीर्ति अर्जन की। हे धर्मधुरीको धारण करनेवाले धीर प्रताप, तुम्हारा पुरुषार्थ धन्य है।

४८—उसीका जीवन धन्य है जिसका जगत मे यश है। हे प्रणधर प्रताप, तू धन्य है क्योंकि तेरे निकट अपयश नही रहता।

४९— जगतमे यश रह जाय—यही अजर और अमर धन है। देहमें सुख और दुख तो सपनेके समान अस्थायी है।

५०—छत्तीसों वशोंके क्षत्रिय गुलाम हैं, केवल गुहिलोतोंका घराना बड़ा है। यह कहते समय कोई राजा या राणा क्रोध न करना (क्योंकि यह कथन वास्तवमें सत्य है)।

५१—चित्तोड़के स्वामी प्रतापसिहका पराक्रम चपेका पेड है जिसकी सुगधि-पर अकबर-रूपी भौंरा कभी नहीं आया।

५२—हे प्रतापसिह, तूने हाथीके माथेपर तलवार चलाई तो उसके दो टुकडे कर दिये जिस तरह तांतसे साबुनकी टिकिया कटकर दो टुकडे हो जाती है।

साँग ज सोव्रणाह त वाही, परतापसी।
ज्यों वादल् किरणाह, परां प्रगट्टी कुंजरां ॥५३॥
माँझी मोह मराट पातल् राण प्रवाड मल।
दुजडाँ किय द्रहवाट, दल् मैंगल् दाणव-तणा ॥५४॥
सहनक-तणा सुजाण, पारीसा पातल्-तणा।
तैं राहविया, राण, अेकण-हूँता, ऊदवत ॥५५॥
अेही भुजे अरीत, तसलीम ज हींदू-तुरक।
माथे निकर मजीत परसाद कै प्रतापसी ॥५६॥
रोहे पातल् राण जाँ तसलीम न आदरै।
हींद — मुस्सलमाण अेक नहीं ताँ दोय है ॥५७॥
चोकी चीतोडाह पातल् पडवेसाँ-तणी।
रहचेवा राणाह आयो पण आयो नहीं ॥५८॥
निगम निवाण-तणाह, नागद्रहा नरहर ज्यूँहीं।
रावत-वट राणाह, पिड अणखूट प्रतापसी ॥५९॥

५३—हे प्रतापसिंह, तूने सुनहरी बरछी चलाई तो वह हाथीके पार जाकर निकली जैसे किरणे बादलको फोडकर पार निकल जाती हैं।

५४—अनेक युद्धोंको जीतनेवाले और मोहको मारनेवाले प्रतापसिंहने तलवारोंसे यवनोंकी हाथियोंकी सेनाको नष्टभ्रष्ट कर दिया।

५५—अन्य राजा मट्टीके बर्त्तनोंमें परोसा भोजन करनेवाले (मुसलमान) हो गये। पत्तलोंमें परोसा भोजन तो, हे उदयसिंहके पुत्र, अकेले तूने ही रखा है।

५६—पराक्रममें अैसी कुरीति हो गई है कि हिन्दू तुरकोंके आगे झुककर सलाम करने लगे हैं। अेक प्रतापसिंह ही मसजिदोंके ऊपर देवमन्दिर बनवाता है।

५७—घिरा हुआ राणा प्रताप जबतक झुककर सलाम करना स्वीकार नहीं करता तभीतक हिन्दू और मुसलमान अेक न होकर दो हैं (नहीं तो सभी मुसलमान हो जाते)।

५८—प्रतापसिंह शत्रुओंको काटनेके लिअे तो आया पर उनकी चौकी देनेको नहीं आया।

जोधपुर-महाराज मानसिंहजी कृत—

गिर-पुर-देस गमाड भमियो पग-पग-भाखरां।
मह अजसै मेवाड, सह अँजसे सीसोदिया ॥६०॥

प्रकीर्णक—

वाही राण प्रतापसी वगतरमे वरछीह ।
जांणक झींगर-जालमे मुँह काढ्यो मच्छीह ॥६१॥
वाही राण प्रतापसी वरछी लचपचांह ।
जांणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बचांह ॥६२॥
पातल घड पतसाहरी अेम विधूसी आण ।
जांण चढी कर-वंदरां, पोथी वेद पुराण ॥६३॥
हींदू हींदूकार राणा जे राखत नहीं।
अकबर तो अेकार पो सो करत प्रतापसी ॥६४॥
हिंदूपत परताप पत राखी हिंदवाणरी ।
सहे विकट संताप सत्य सपथ कर आपणो ॥६५॥

६०—महाराणा प्रताप अपने पहाड, देश और नगरको गँवाकर पहाडोंमें पैर-पैग्पर भटकता फिरा, जिससे आज मेवाड अत्यन्त गर्व करता है और सारी सीसोदिया जाति घमड करती है।

६१—राणा प्रतापने कवचमें जो बरछी चलाई तो वह कवचको फाडकर दूसरी ओर अैसे निकली मानो झीगुर मच्छीने जालमेंसे मुँह निकाला।

६२—राणा प्रतापने लपकती हुई बरछी चलाई। वह आँतोंके साथ दूसरी ओर इस प्रकार निकली मानो साँपिन, मुँहको बच्चोंसे भरकर, बाहर निकली।

६२—प्रतापसिंहने आकर बादशाहकी सेनाको इस प्रकार विध्वंस कर दिया मानो वेद-पुराणकी पोथी वन्दरोंके हाथ चढ़ गई हो।

६४—यदि राणा हिन्दू जाति और हिन्दू धर्मकी रक्षा न करता तो अकबर सारी दुनियाको अेकाकार कर देता (सबको यवन बना लेता)।

६५—हिन्दूपति प्रतापने हिन्दुओंकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की और विकट कष्टोंको सहकर भी अपनी प्रतिज्ञाको सच्ची की।

२—बादल

बादल जूझण जब चल्यो, माता आई ताम ।
रे बादल, तैं क्या किया, रे बालक परवाँण ॥६६॥
माता, बालक क्यूँ कहो, रोइ न माँग्यो ग्रास ।
जे खग मारूं साह-सिर, तो कहियो साबास ॥६७॥
सिंह, सिचाणो, सापुरस, औ लहुरा न कहाय ।
वडो जिनावर मारिकै छिनमे लेय उठाय ॥६८॥

३—महाराणा अमरसिंह

हाडा, कूरम, राठवड, गोखाँ जोख करंत ।
कहज्यो खानाखानने, वनचर हुवा फिरंत ॥६९॥
तँवराँसूँ दिल्ली गई, राठोड़ाँ कनवज्ज ।
अमर पयँपै खानने, सो दिन दीसै अज्ज ॥७०॥

(रहीमका उत्तर)

ध्रम रहसे, रहसे धरा, खिस जासे खुरसाण ।
अमर विसभर ऊपरै, राख नहंचो, राण ॥७१॥

६६—बादल जब जूझनेके लिअे चला तब माता आई और बोली—अरे बादल, तूने यह क्या किया ? अरे तू सचमुच ही बालक है !

६७—बादल उत्तर देता है कि हे माता, तुम मुझे बालक क्यों कहती हो ? मैंने तो कभी रोकर खानेको नही माँगा (जैसे बालक माँगते हैं) । मुझे तो, जब मै बादशाहके सिरपर तलवार मारूँ, तभी शाबाश कहना ।

६८—सिंह, बाज और सुपुरुष—ये छोटे होनेपर भी छोटे नहीं कहलाते । ये अपनेसे बडे जानवरको मारकर क्षण हो भरमें उसे उठा भी लेते हैं ।

६९—खानखानासे जाकर कहना कि, हाडा, कछवाहे और राठोड—ये सब रईस आज राजमहलोंमें आनन्द कर रहे हैं परन्तु हम वनचर बने हुअे भटक रहे हैं ।

७०—जिस दिन तँवरोंके हाथसे दिल्ली गई और राठोड़ोंके हाथसे कन्नौज छूटा वही दिन, महाराणा अमरसिंह खानखानासे कहते हैं कि, आज हमे दिखाई दे रहा है (आज हमारे हाथसे मेवाड़ छूटता दिखाई देता है) ।

७१—धर्म रहेगा, तुम्हारी भूमि भी रहेगी, और यवन नष्ट हो जायँगे ।

४—महाराणा राजसिंह

मालपुरेरो , माल, केलपुरे घर-घर कियो ।
सबल दिलीरो साल, ऊभो राणो राजसी ॥७२॥

(ख) मारवाड़

राठोड़ वीरांगनाअें

राठोड़ाँरी कुल-त्रिया सीला गभ न धरंत ।
ज्याँ भरतार न भंजणा से भॅजणा न जणंत ॥७३॥

राव जगमाल

पग-पग नेजा पाडिया, पग-पग पाडी ढाल ।
बीबी पूछै खानने, जग केता जगमाल ? ॥७४॥

राव अमरसिंह राठोड़

उण मुखसूँ गग्गो कह्यो, इण कर लिवी कटार ।
वार कहण पायो नहीं, हो गइ जमधर पार ॥७५॥

दुर्गादास राठोड़

जननी, जण अेहडा जणे, जेहड़ा दुरगादास ।
मार मॅडासो थाँमियो, विन थंभाँ आकास ॥७६॥

हे राणा असरसिंह, कभी नाश न होनेवाले और ससारका पालन करनेवाले परमात्मापर दृढ विश्वास रखो ।

७२—मालपुरेको लूटकर उसका धन केलपुरेके घर-घर में बाँट दिया अैसा दिल्ली-साम्राज्यका शल्परूप सबल शत्रु महाराणा राजसिंह खडा है ।

७३—राठोड़ोंकी कुल-स्त्रियाँ निकम्मे (साधारण) गर्भ धारण नहीं करतीं । जिनके पति भागनेवाले नहीं वे भागनेवाले पुत्रोंको जन्म नहीं देतीं ।

७४—बीबी खानसे पूछती है कि पग-पगपर भाले गिरे है और पग-पगपर ढाले पड़ी है, भला कहो तो जगतमें कितने जगमाल है ?

७५—उस सलाबतखाँने अमरसिंहको 'गॅवार' कहनेके लिअे मुँहसे 'ग' इतना ही कहा था—वार ये दो अक्षर कहने भी नहीं पाया था—कि अमरसिंहकी कटार उसके शरीरमे पार हो गई ।

७६—हे माता, पुत्र जने तो अैसा जनना जैसा कि दुर्गादास था—जिसने सिरपर मुँडासा रखकर उसपर बिना खभोंके आधारके ही आकाशको थाम लिया ।

जसवँत कहियो जोय, घर रखवाळो गूदड़ा ।
साँचो कीधी सोय आछी आसकरन्न-वत ॥७७॥
बारह मासाँ बीह पांडव ही रहिया प्रछन ।
दुरगो हेको दीह आछत रह्यो न आसवत ॥७८॥

वळूसिंह चाँपावत

वळू कहै गोपाळरो सतियाँ हाथ सदेस ।
पतसाही घड मोड़कर आवाँ छाँ, अमरेस ॥७९॥

केसरीसिंह (बूढ़री)

केहरिया करनाळ, जो न जुड़त जयसाहसूँ ।
आ मोटी अवगाळ रहती सिर मारू-धरा ॥८०॥

कल्याणसिंह

किलो अणखलो यूँ कहै, आव कला राठोड ।
मो सिर उतरै मेहणूँ, तो सिर बंधै मोड ॥८१॥

७७—महाराज जसवतसिंहजीने जो कहा था कि यह दुर्गादास घरके गूदडों-की रक्षा करनेवाला होगा वह कथन आसकरणके बेटे दुर्गादासने खूब अच्छी तरह सत्य सिद्ध कर दिया ।

७८—पांडव भी बारह महीनों तक भयके मारे छिपे रहे परन्तु आसकरण-का बेटा दुर्गादास जब तक जीता रहा तब तक अेक दिन भी छिपकर नहीं रहा । (बीह—भय) ।

७९—हे महाराज अमरसिंह, गोपालदासका बेटा वलूसिंह सतियोंके हाथ सदेश कहलाता है कि बादशाही सेनाको पराजित करके मै आपके पास आ रहा हूँ ।

८०—हे केसरीसिंह, यदि तू जयसिंहसे न भिडता तो मारवाडकी भूमिके सिरपर यह मोटा कलक (सदाके लिअे) रह जाता ।

८१—अणखलो—उदास । कला—कल्याणसिंह । मेहणूँ—व्यगवचन, कलंक ।

कीरतसिंह

तन झड खागाँ तीख, मार घणो खल पोढियो ।
कीरतो नग कोडीक जड़ियो गढ जोधाणरे ॥८२॥

भींवसिंह

गढ साखी गहलोत, कर साखी पातल कमध ।
मुकन-रुघारी मोत भली सुधारी, भींवड़ा ॥८३॥
पहर हेक लग पोल जडी रही जोधाणरी ।
गढमे रोलारोल भली मचाई, भींवडा ॥८४॥
आजूणी अधरात महल ज रूनी मुकनरी ।
पातलरी परभात भलो रुवाडी, भींवडा ॥८५॥
मुकनू पूछै वात, को पातल, आया करां ? ।
सुरगापुरमे साथ भेला मेल्या भींवड़े ॥८६॥

(ग) बीकानेर

राव काँधल

कमधज राज भतीजरो सज बांध्यो बल सार ।
जिण कांधल भाज्या जवर चौदह भूमी चार ॥८७॥

८२—जिसका शरीर तेज तलवारोंसे निहत हुआ और जो बहुत-से शत्रुओं-को मारकर युद्धभूमिमें सोया अैसा कीरतसिंह कोटि मूल्यवाले रत्नके समान जोधपुरके किलेमें जडा हुआ है ।

८३—मुकन इ०—हे भींवसिंह, तूने मुकनसिंह और रघुनाथसिंहकी मृत्युको खूब सुधारा (खूब अच्छा बदला लिया) ।

८४—जोधपुर दुर्गका द्वार अेक घडी तक बंद रहा । हे भींवसिंह, तूने दुर्ग-मे खूब रेलपेल मचाई ।

८५—आज आधीरातको मुकनसिंहकी पत्नी महलमें रोई । हे भींवसिंह, तूने उसी प्रभातको प्रतापसिंहकी पत्नीको खूब रुलाया ।

८६—मुकनसिंह स्वर्गमें प्रतापसिंहसे बात पूछता है कि हे प्रताप, कहो, तुम कब आ गये ? प्रतापसिंहने उत्तर दिया कि भींवसिंहने हम दोनोंको स्वर्ग में साथ-ही-साथ भेज दिया ।

८७—भतीज—बीकाजी जो कांधलजीके भतीजे थे ।

पद्मसिंह

अेक घड़ी आलोच मोहणरे करतो मरण।
सोह जमारो सोच करताँ हि जातो, करणवत॥८८॥

कुशलसिंह

कुसलो पूछै कोटने, विलखो किम, वीकाण ? ।
मो ऊभाँ तो पालटै, भलै न ऊगै भाण ॥८९॥

(घ) जयपुर

महाराजा मानसिंह

जननी, जण, अैसो जणे, जैसो मान मरद्द ।
खाँडो समँद पखालियो, काबल बाँधी हद्द ॥९०॥

महाराज जयसिंह (बड़े)

घंट न वाजै देहराँ, संक न मानै साह ।
अेकणहाँ फिर आवज्यो, माहूरा जयसाह ॥९१॥

राव शेखाजी (शेखावाटी)

गोड बुलावे घाटवे, चढ आवो सेखा ।
थारा लसकर मारणा, देखण अभलेखा ॥९२॥

८८—हे करणसिंहके पुत्र, मोहनसिंहकी मृत्युपर यदि तू अेक घडी भर भी आगा-पीछा सोचता तो तेरा सारा जीवन सोच करते ही बीतता ।

८९—कुशलसिंह दुर्गसे पूछता है कि हे बीकानेर, तू क्यों बिलख रहा है ? मेरे खडे हुअे तुझे कोई विध्वस्त कर दे तो फिर सूर्य उदय नहीं हो सकता ।

९०—हे माता, पुत्र जने तो अैसा जन जैसा कि मर्द मानसिंह था जिसने अपनी तलवार समुद्रमें धोई और काबुल तक राज्यसीमाका विस्तार किया ।

९१—मंदिरोंमें घंटे नहीं बजते, मुसलमान शासक भय नहीं खाते, इसलिअे हे माधवसिंहके बेटे जयसिंह, अेक बार फिर यहाँ आओ ।

९२—हे शेखा, तुम्हें गौड घाटवेमें बुलाते हैं, तुम चढकर आओ तो सही । सुना है कि तुम्हारी सेना मारनेवाली है, हमें भी देखनेकी अभिलाषा है ।

राव शिवसिंह (सीकर)

वांस वडा, डेरा वडा, दिनां वडेरा होय।
सेखावत सिवसिंहसूं करतव वडा न कोय ॥६३॥

सादूलसिंह (खेतड़ी)

सादूलो जगरामरो सिहल बुरी वलाय।
राम-दुवाई फिर गई, लुकती फिरै खुदाय ॥६४॥

जुझारसिंह (खेतड़ी)

डूंगर वांको है गुढो, रण-वांको जूझार।
अेक ज आगे असर-गण भांग्या पांच हजार ॥६५॥

जोरावरसिंह (खेतड़ी)

वणिया घाव वणाव जोरां मोहरां ऊपरै।
जड़ियां नगां जडाव सोनेमे सादूलवत ॥६६॥

अभयसिंह (खेतड़ी)

खगां ज वांकी खेतड़ी, भट वांको असमाल।
गढपत राख्यो गोदमे नवकूंटीरो लाल ॥६७॥

६३—दिनां—दिनोमे, अवस्थामे। वडेरा—बडे। करतव इ०—महान कार्य या पराक्रम करनेमे बडा कोई नही।

६४—जगरामसिंहका बेटा सिंह-सदृश पराक्रमी शार्दूलसिंह बुरी बला है जिसके कारण देशमें रामकी दुहाई फिर गई और खुदाई छिपती फिरती है—हिन्दुओंका राज्य स्थापित हो गया और मुसलमान शासक छिपते फिरते है।

६५—डूंगर—पहाड़। गुढो—जहां जुझारसिंहका स्थान था। अेकज—अकेलेने ही। असुर—असुर अर्थात् यवन। भांग्या—पराजित किये।

६६—वणिया—वने है। सादूलवत—हे सार्दूलसिंहके पुत्र जोरावरसिंह।

६७—असमाल—अभयसिंह। राख्यो इ०—जिसने नवकोटी (मारवाड) के राजा धोकलसिंहको शरण दी।

सुलतानसिंह

मन-चायो पायो मरण, हुई फतेपुर हल्ल ।
रहसी रे सुलतानिया गोड़, घणा दिन गल्ल ॥९८॥

सावंतसिंह

कलि़यो जाभा कीचमें रजवट-हंदो रथ्थ ।
सांवतिया सुलताणरा, तूं काढण समरथ्थ ॥९९॥

(ङ) प्रकीर्णक

राठोड़ ऊगो

छाती ऊपर सेलड़ा, माथे ऊपर वा़ट ।
कहज्यो ऊग भाणेजने, कठपींजर कहवाट ॥१००॥
तूं कहतो ज तिकाय, ताली़ ताला़हर-तणी ।
वा़ला़ हिवै वजाय अेकण हाथे, ऊगला ॥१०१॥
मामा मैंगल़ सांभले़, दूजो ना जाणांह ।
चोड़े धूपट बांधने अणंतराय आणांह ॥१०२॥

९८—हे गौड सुलतानसिंह, फतहपुरपर आक्रमण हुआ और तूने मनचाही मृत्यु पाई, ससारमें तेरी कथा बहुत दिनों तक रहेगी ।

९९—हे सुलतानसिहके बेटे सावंतसिह, राजपूतीका रथ गहरे कीचडमे फॅस गया है, उसे निकालनेमें अब तू ही समर्थ है ।

१००—राजा अनॅतरायके यहाँ काठके पिजरेमें कैद किया हुआ राजा कहवाट अपने भाटसे कहता है कि तुम जाकर मेरे भानजे ऊगेको कहना कि तुम्हारा मामा कहवाट काठके पिजरेमें पडा है, उसकी छातीपर भाले हैं और माथेपर राह बनी है जिसपर लोग चलते हैं ।

१०१—हे वाला जातिके वीर ऊगा, जिसके विषयमें तू कहता था वही अपनी ताली अब तू अेक हाथसे बजा ।

१०२—ऊगा उत्तर देता है कि हे मैगल भाट, मामासे कहना कि हम दूसरी बात नहीं जानते किंतु सबके सामने अनन्तरायको पगडीसे बाँधकर ले आवेंगे ।

रूकाँ वागी रीठ, भोठ पड़ै माथा भड़ाँ।
तोडन मामा-रीठ आयो दीसै ऊगलो ॥१०३॥
तगा, तगाई मत करे, बोले मूँह सँभाल।
नाहरने रजपूतने रेकारेरी गाल ॥१०४॥

रहीम खानखाना

खानाखान नवाबरे खाँडे आग खिवंत।
जलवाला नर प्राजलै, त्रणवाला उबरंत ॥१०५॥१६६॥

४—दानवीर

१—जाम ऊनड़

माई, अेहा पूत जण, जेहा ऊनड जाम।
दीधो सातूं सिंध इम, जिम दीजै एक गाम ॥१॥

२—गोड़ वछराज (अजमेर)

देताँ अड़व-पसाव नित धिनो गोड वछराज।
गढ अजमेर सुमेरसूँ ऊँचो दीसै आज ॥२॥

१०३—ऊगेके युद्धके समय कहवाट अपने-आपसे कहता है—घोर युद्धकी तलवारें बजरही है, योद्धाओंके माथोंपर अग्नि बरस रही है, मालूम होता है कि मामाके कष्टको दूर करनेको ऊगा आ पहुँचा।

१०४—रेकारो—रे, अरे, या तू कहकर पुकारना।

१०५—खानखाना रहीमकी तलवारमें आग चमक रही है जिसमें जलवाले (पानीदार, सामने युद्ध करनेवाले) आदमी जल जाते है और तृण-वाले (मुहमें तृण लेकर शरणमें आनेवाले) वच जाते हैं।

४—दानवीर

१—हे माता, अैसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा कि ऊनड़ जाम था, जिसने सिंधके सातों प्रान्त इस प्रकार दान कर दिये जैसे अेक गाँव दान देता हो।

२—गौड वछराज धन्य है जो नित्य अरव-पसावका दान करता था जिसके कारण आज अजमेर गढ़ सुमेरु पर्वतसे भी ऊँचा दिखाई देता है।

३—साँगो

जल डूबंते जाय साद ज साँगरिये दियो।
कहज्यो मोरी माय, कविने देवै कामली ॥३॥

४ जगदेव पँवार

इग्यारह इक्काणवै, चैत तीज, रविवार।
सीस कंकाली भट्टने जगदे' दियो उतार ॥ ४ ॥

५—करणसिंह राठोड़ लूणकरणोत

सौ दूजो संसार माटीसूँ गढियो मंडल।
तूँ गढियो करतार कायासूँ ही, करणसी ॥५॥

६—महाराज रायसिंह

कोड़ दरब दीधो करमैं, सवा कोड़ पह सींग।
वीकाणे दाता वडा उभै हुवा अरडीग ॥६॥

७ रहीम खानखाना

खानाखान नवावरो दीठो अेहो दैण।
ज्यूँ ज्यूँ कर ऊँचो करै, त्यूँ-त्यूँ नीचा नैग ॥ ७ ॥

३—जलमें डूबते हुअे सांगेने आवाज दी कि मेरी मांको जाकर कह देना कि कविराजाको कबल बनाकर अवश्य दे दे (साँगेने कविराज ईसरदानजीको कबल देनेकी प्रतिज्ञा की थी पर प्रतिज्ञा पूरी होनेके पूर्व ही डूबनेसे उसकी मृत्यु हो गई)।

४—सवत् ११९१ की चैत्र-तृतीया रविवारके दिन जगदेव पँवारने अपना सिर उतारकर ककाली भाटिनीको दानमें दे दिया।

५—दूसरा सारा ससार मिट्टीके ही द्वारा बना हुआ है परन्तु, हे करणसिंह, तुझे विधाताने शरीरके द्वारा बनाया है (वास्तवमें तू ही सच्चा मानवदेहधारी है)।

६—करमसिंहने अेक करोडका दान किया और प्रभु रायसिंहने सवा करोड़का। वीकानेरमें ये दो बडे जबर्दस्त दानी हुअे।

७—खानखाना रहीमके दान करनेका यह ढग देखा कि ज्यों-ज्यों हाथ ऊँचा करता है त्यों-त्यों नेत्र नीचे होते जाते हैं (दानवृद्धिके साथ विनयकी भी वृद्धि होती है)।

खानाखान नवाबरो मोहि अचंभो अेह।
केम समाणो मेर मन साढ तिहथ्थी देह॥ ८॥

८ किशनसिंह (खेतड़ो)

मेहाँ, मोराँ, मदझराँ, राजा याही रीत।
किसन चढाया करहले, वळे न चढिया भींत॥ ९॥
कवियां भाग पधारजो, कँवर ज मुरधर देस।
फूलाणी लाखे जिसो, सादाणी किसनेस॥१०॥
थारे जोडे, किसनसी, जग्गो कँवर अमेर।
अेकज हूवो करणरे पदमो वीकानेर॥११॥

९—महाराणा जगतसिंह (बड़े)

सिंधुर दीधा सात सौ, हैवर्र छपन हजार।
चोरासी सासण दिया, जगपत जगदातार॥१२॥
करणारे जगपत कियो कीरत काज कुरव्व।
मन जिण धोखो ले मुवा साह दिलीस सरव्व॥१३॥

८—खानखाना नवावके विषयमे मुझे यह अचभा होता है कि उनका मेरुके समान बडा मन साढ़े तीन हाथकी देहमे कैसे समाया ?

१०—मुरधरदेस—मारवाड, यहाँ 'जोधपुर के विशेष अर्थमें प्रयुक्त न होकर 'राजस्थान' के साधारण अर्थमे प्रयुक्त हुआ है। लाखो फूलाणी—कच्छका सुप्रसिद्ध दानी और वीर राजा। सादाणी—सादूलसिहका वेटा।

११—हे किशनसिह, तुम्हारी जोडीका दानी आंबेरका राजकुमार जगतसिह है या अेक पदमसिह वीकानेरमें करणसिहके यहाँ हुआ था।

१२—जगतके दानी महाराणा जगतसिहने सात सौ हाथी, छप्पन हजार घोड़े, और चौरासी गाँवोके परवाने अर्थात् गाँव) दानमें दिये।

१३—करणसिहके बेटे जगतसिहने कीर्तिके लिअे वह महान् कार्य किया जिसका धोखा मनमें लिये-लिये ही दिल्लीके सारे वादशाह मर गये।

जगतो तो जाण नहीं मात-पितारो नाम ।
तात-पिता रटतो रहै निसदिन यो ही काम ॥१४॥
साँइ, करथे पारेवड़ा जगपतरे दरबार ।
पीछोलॆ पाणी पियाँ, कण चुग्गाँ कोठार ॥१५॥

१०—महाराणा भीमसिंह

राणे भीम न रक्खियो दत विन दीहाड़ोह ।
हय-गयंद देतो हथाँ, मुओ न मेवाड़ोह ॥१६॥
भीमा, तूँ भाठो मोटा मगरा माँयलो ।
कर राखूँ काटो संकर ज्यूँ सेवा करूँ ॥१७॥

११—ठाकुर डूंगारसिंह (खोरा)

लाडाणी जस लूँटियो माडाणी जग माँय ।
कीरत हंदा कोरड़ा, जाताँ जुगाँ न जाय ॥१८॥१८७॥
॥५२५॥

१४—जगतसिंह माताके पिता यानी 'नाना' का नाम नही जानता (अर्थात् वह कभी ना-ना नहीं करता) । वह तो रातदिन पिताके पिता यानो 'दादा' का नाम (अर्थात् देना-देना) रटता रहता है ।

१५—हे परमात्मा, हमें जगतसिंहके दरबारके कबूतर बनाना जिससे पीछोलॆमें पानी पिये और राजकीय कोठारमें अन्न चुगते रहे । (पीछोला—उदयपुर का सुप्रसिद्ध तालाव) ।

१६—महाराणा भीमसिंहने अेक भी दिन बिना दानका (जिस दिन दान न किया हो) नहीं रखा । हाथोंसे हाथी और घोडे दान करता हुआ वह मेवाड़का अधिपति मानो अभी तक नहीं मरा है ।

१७—हे भीमसिंह, तू बड़े मरुस्थलका पत्थर है जिसे मैं अपने पास रखूँगा और शंकरकी भाँति पूजा करूँगा ।

(४) ऐतिहासिक और भौगोलिक

१—अैतिहासिक

सामान्य

हाडा गायड-व्ंकडा करतब-व्ंका गोड ।
बल्-हठ-व्ंका देवड़ा रण-व्ंका राठोड़ ॥ १ ॥
उदियापुर चूँडो सिरै, सेखो धर आँवेर ।
दूदो माँझी मेड़ते, व्ीदो व्ीकानेर ॥ २ ॥
पातल्ििये अलवर लिवी, माधो रणथंभोर ।
रामचन्द्र लका लिवी, व्ख़तावर वाघोर ॥ ३ ॥

नाग

परमाराँ रूधाविया, नाग गया पाताल् ।
रह्या वापडा आसिया, किणरी भूमै चाल ॥ ४ ॥

पॅवार

पिरथी वडा पॅमार, पिरथी परमाराँ-तणी ।
अेक उजीणी-धार, बीजो आवू वैसणो ॥ ५ ॥
ज्याँ पर्मांर त्याँ धार है, धारा जठे पर्मांर ।
व्िन पर्मांर धारा नहीं, धारा व्िना पर्मांर ॥ ६ ॥

१—अैतिहासिक

१—हाडे राजपूत घमासान युद्धमें बांके होते है, गौड करतब करनेमें बांके होते हैं, देवडा राजपूत बल और हठमें बांके होते हैं, और राठोड़ युद्धमें बांके होते है ।

५—पृथ्वीमें पॅवार राजपूत बडे हैं, पृथ्वी ही पॅवारोंकी है । उनके दो स्थान हैं—अेक आवूमें और दूसरा उज्जैन अेव धारानगरीमें ।

६—जहाँ पँवार है वहीं धारा है । जहाँ धारा है वहीं पँवार है । पँवारोंके विना धारा नहीं और धाराके विना पॅवार नहीं ।

यदुवंशी-चूड़ासमा

तैं गरुवा गिरनार, काँई मन मंछर धरयो ।
मरताँ रा' खेंगार अेको सिखर न ढालियो ॥ ७ ॥
माणेरा, मत रोय, मत कर रत्ती अंखियाँ ।
कुळमें लागै खोय, मरताँ माँ न सँभारजे ॥ ८ ॥
पाँपणने पड़ताँह, कहो तो, कुवा भराविये ।
माणेरो मरताँह सरीरमें सरणाँ वुहै ॥ ९ ॥

यदुवंशी-भाटी

रावळ भोजदे

ताड़ाँ घड़ तुरकाणरी, मोड़ाँ खान मजेज ।
दाखै अनमी भोजदे, जादम करै न जेज ॥१०॥

भटियाणी राणी ऊमादे

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण ।
दोय-दोय गयँद न बंधसी अेकै कंबू ठाँण ॥११॥

७—हे गौरवशील गिरनारके पहाड, तूने मनमें यह क्या मत्सर धारण किया जो राव खेंगारके मरनेपर अेक भी शिखर नहीं गिराया (खेंगार गिरनारका राजा था ।)

८—हे माणेरा, तू रो मत, रोकर आँखोंको लाल मत कर, मरते समय माताको कभी याद नहीं करना चाहिअे, इससे कुलमें कलंक लगता है ।

९—जब पलक पड़ते हैं तब, कहो तो, कुएँ-के-कुएँ भर दूँ, माणेरेके मरनेसे शरीरमें धाराएँ बह चली है ।

१०—घड़—घटा, सेना । तुरकाण—यवन-मडल । दाखै—कहता है । अनमी—जो किसीके आगे नहीं झुकता । जादम—यादव, जेसलमेरके भाटी यादव शाखाके राजपूत हैं । जेज—विलम्ब ।

११—माण—मान, रूटना । बँधसी—बँधेगे ।

कछ्वाहा

महाराज मानसिंह

सर्ब भोम गोपाल्की, तामे अटक कहा।
जाके मनमें अटक है सोई अटक रहा ॥१२॥

महाराज ईश्वरीसिंह

मंत्री मोटा मारिया खत्री केसोदास।
जद ही छोडी, ईसरा, राज करणकी आस ॥१३॥
ईसर, लेह मिटै नहीं, जुगजुग यह गाया।
प्याला केसोदासने पाया 'सो पाया ॥१४॥

केसरीसिंह (खंडेला)

वीकानेर सुवस वसो, दिनरैण सवाई।
मरज्यो राजा केहरी बल् जाज्यो वाई ॥१५॥

सीसोदिया

राणा राजसिंह

ओडा रतन संघारिया राजड़ आसकरन्न।
वो हिंदवाणी बादसा, वो बादसा वरन्न ॥१६॥

१२—भोम—भूमि। अटक—पंजाबके आगे अेक प्रसिद्ध नगर, उसके आगेकी भूमि म्लेच्छभूमि मानी जाती थी इसलिअे हिंदू अटक पार नहीं जाते थे।

१४—लेह—लेख। प्याला—विषका प्याला।

१५—सुवस—अच्छी तरह। सवाई—सवाया, अधिकाधिक। केहरी—केसरीसिंह। बल् जाज्यो—जल जाय। वाई—वीकानेरकी राजकुमारी जो केसरीसिंहको ब्याही गई थी (दानसे असंतुष्ट चारणोंका कथन)।

१६—ओडा—अेक गांव। सँघारिया इ०—दो रत्न मारे गये। राजड—राणा राजसिंह। आसकरन्न—चारण आसकरण। वो इ०—वह राजसिंह हिंदुओंका बादशाह था और वह आसकरण चारण-वर्णका बादशाह था।

राणा अड़सी

अड़सीसूँ अड़िया जिके पड़िया करै पुकार ।
महापुरसाँरी मूँडक्याँ गिळगी गाँव गँगार ॥१७॥

मेवाड़के सिरायत

त्रिहुँ झाला, त्रिहुँ पूरब्या, चूँडावत भड़ च्यार ।
दुय सगता, दुय राठवड, सारगदेव, पँवार ॥१८॥

राठोड़ (जोधपुर)

ईंदाँरो उपगार, कमधज, मत भूली कदे ।
चूँडो चँवरी चाड़ दियो मँडोवर दायजे ॥१९॥

राव सीहोजी

भीनमाळ लीधी भड़ै सीहै सेल वजाय ।
दत दीधो, सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय ॥२०॥

१७—अड़सी इ०—उदयपुरके राणा अडसीसे जो अडे वे पड़े हुअे पुकार ही कर रहे हैं । गँगार गाँव महापुरुषोंके मुडोंको खा गया । महापुरुष—नागे साधु जो अडसी से लड़े थे ।

१८—भड—योद्धा । मेवाड़के सोलह सिरायतों (प्रधान सरदारों) में तीन झाला राजपूत, तीन पूरबी राजपूत, चार चूँडावत (चूँडाके वशज, सीसोदिया), दो शक्तावत (शक्तसिंहके वंशज, सीसोदिया), दो राठोड, अेक सारगदेवोत और अेक पँवार राजपूत है ।

१९—हे राठोड, ईंदा राजपूतोंके उपकारको कभी मत भूलना जिन्होंने चूँडाको कन्या देकर दहेजमें 'मडोर' का दुर्ग दिया था (राजस्थानमें राठोडोंका महत्त्व यहींसे बढ़ा—राव जोधा तक मडोर राठोडोंकी राजधानी रहा) । वि०—ईंदा पड़िहार राजपूतोंकी अेक शाखा है ।

२०—भडै—योधा । सेल—भाले । दत—दान ।

राव चूँडो

चूडा, तने न चीत काचर काल़ऊ-तणो ।
भूप भयो भंभीत मंडोवररे माल़िये ॥२१॥

गोगादे

भूखा तिसिया थाकडा, गखीजै नेडाह ।
ढल़िया हाथ न आवसी, गोगादे घोड़ाह ॥२२॥

महाराजा रामसिंह

रामो मन भावै नहीं, ऊतर दीनो देस ।
जोधाणो झाला करै, आव धणो वखतेस ॥२३॥
केहर, देवो, छतरसी, दोलो राजकँवार ।
मरते मोडे मारिया चोटीआल़ा च्यार ॥२४॥

राठोड़ (वीकानेर)

वीकानेरकी स्थापना

पनरै सै पैताल़वे, सुद वैसाख सुमेर ।
थावर बीज थरप्पियो वीके वीकानेर ॥२५॥

महाराजा रायसिंह

तूँ सै देसी रूँखड़ो, म्हे परदेसी लोग ।
म्हाँने अकबर तेड़िया, तू कत आयो, फोग ॥२६॥

२१—हे राव चूँडा, कालाऊ गाँवके काचरे अब तुम्हे याद नहीं है अब ते मंडोरके महलमें तुम निर्भय होकर बैठे हो ।

२२—तिसिया—प्यासे । थाकडा—थके हुअे । नेडाह—पास । ढलियाँ—आगे चले जानेपर, बढ जानेपर ।

२३—रामो—महाराज रामसिंह । ऊतर दीनो—जवाब दे दिया । झाला—आनेके लिअे हाथसे सकेत, हाथसे बुलाना ।

२४—मोडे—मुडित, साधु, यहाँ स्वामी आत्माराम सन्यासी-चोटीआल़ा—चोटीवाले, अमुडित ।

२६—सै—है। म्हे—हम। म्हाँने—हमको। तेडिया—बुलाये। कत—किसलिअे

महाराजा जोरावरसिंह

डाढाळी डोकर थई, का तूँ गई विदेस ।
खून बिना क्यों खोसजे निज बीकाँरा देस ॥२७॥
अभो ग्राह, बीकाण गज, मारू समँद अथाह ।
गरुड़ छाँड गोविंद ज्यूँ साय करो, जयसाह ॥२८॥
बीकाणे जोखो नहीं, जोखो है जोधाण ।
अभो अपूठो जावसी मेले मोटो माण ॥२९॥

पृथ्वीराज

अस लीलो, पिव पीथलो, चंपावती ज नार ।
अै तीनूँ ही अेकठा सिरज्या सिरजणहार ॥३०॥
पृथीराज कल्याणरा, थारो जस गाऊं ।
तूँ दाता, हूँ मंगतो, इण नाते पाऊँ ॥३१॥

लालादे

तो रांध्यो नहि खावस्याँ, रे वासदे निसड्ड ।
मो देखत तूँ बालिया लाल-रहंदा हड्ड ॥३२॥

२७—डाढाळी—करणीजी । डोकर—बूढी । थई—हुई । का—अथवा । खून—अपराध ।

२८—अभो—जोधपुर-महाराज अभयसिंह । साय—सहायता ।

२९—जोखो—जोखिम । अपूठो—वापिस, पीठ देकर । मेले—त्यागकर ।

३०—अस—अश्व, घोड़ा । पिव—पति । पीथलो—पृथ्वीराज (बीकानेर) । अै—ये । अेकठा—अेकत्र ।

३१—कल्याणरा—कल्याणसिंहके पुत्र। पाऊँ—दान पाऊँ । वि०—टिप्पणमें कहानी देखिये ।

३२—वासदे—वैश्वदेव, अग्नि । बालिया—जला दिये । लाल-रहंदा—लालादेके।

वीकानेरकी वंशावली

वीको, नेरो, लूणसी, जेतो, कल्लो, राय ।
दलपत, सूरो करणसो, अनुप, सरूप, सुजाय ॥३३॥
जोरो, गजो, राजसी, परतापो, सूरत्त ।
रतनसिंह, सरदारसिंह, डूँग, गंग महिपत्त ॥३४॥

जयपुर—जोधपुर

जयसिंह और वख्तसिंह

पत-जयपुर जोधाण-पत, दोनूँ थाप-उथाप ।
कूरम मार्‌या डीकरो, कमधज मार्‌यो वाप ॥३५॥

जेसलमेर—जोधपुर

आधी धरती भींव, आधी लोदरवे धणी ।
काक नदी छै सींव राठोड़ाँ ने भाटियाँ ॥३६॥

प्रकीर्णक

मुहणोत नैणसी

लाख लखाँराँ नीपजे वड़-पीपलरी साख ।
नटियो मूँतो नैणसी ताँबो देण तलाक ॥३७॥

३५—पत—पति, राजा । जोधाण—जोधपुर । कूरम—कछवाहा, जयपुरनरेश कछवाहा राजपूत हैं । डीकरो—बेटा । कमधज—कबधज, राठोड, जोधपुर-नरेश राठोड़वंशी हैं ।

३६—भींव—राठोड राजा राव भीम । लोदरवा—जेसलमेर राज्यका प्राचीन नाम । काक—अेक नदीका नाम ।

३७—नटियो—इनकार करनेपर । मूँतो नैणसी—महाराज जसवतसिंहका अेक मन्त्री और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक । ताँबो इ०—तांबा देनेकी भी तलाक है महाराजाके अेक लाखका जुर्माना करनेपर नैणसीका कथन) ।

लेसो पीपल़ लाख, लाख लखारा लावसी।
ताँबो देण तलाक, नटियो सुन्दर नैंणसी ॥३८॥

जाडा चारण

धर जाडी, जाडा अंबर, जाडा चारण जोय।
जाडा नाम अलायदा, ओर न जाडा कोय ॥३६॥

बीरबल

पीथ ळसूं मजलिस गई, तानसेनसूं राग।
रीझ बोल हंस खेलबो गयो बीरबर साथ ॥४०॥

उपालंभ

उदयसिंह हत्यारा (मेवाड़)

ऊदा, बाप न मारजे, लिखियो लाभै राज।
देस बसायो रायमल, सरियो अेक न काज ॥४१॥

बखतसिंह (मारवाड़)

बापो मत कह, बखतसी, काँपत है केकाण।
अेकण बापो फिर कह्यां, तुरग तजैलो प्राण ॥४२॥
बखता, बखत-बायरा, तै मारयो अजमाल।
हिंदवाणीरो बादसा, तुरकाणीरो काल़ ॥४३॥

३८—लखारा—लाखका काम करनेवाले।

३६—जाडा—मोटा। अलायदा—खुदाका, परमात्माका।

४०—पीथलसूं—पृथ्वीराजके साथ। बीरबर—बीरबल।

४१—ऊदा इ०—हे ऊदा, पिताको नहीं मारना चाहिअे था, राज्य तो भाग्यमें लिखा होता है तो मिलता है। सरियो—पूरा हुआ। रायमल—ऊदाका बडा भाई जो राणा हुआ।

४२—बापो—पिता, घोडेको पुकारनेका शब्द। केकाण—घोड़ा। अेकण—अेकबार। तजैलो—छोड देगा। नोट—बखतसिंहने अपने बापको मारा था।

४३—बखतबायरा—भाग्यहीन। अजमाल—अजीतसिंह। हिंदवाणी—हिन्दू-मंडल।

जगरामसिंह (मारवाड़)

मरज्यो मती महेस ज्यूं राड विचे पग रोप ।
भगडामे भागो जगो, उण पाई आसोप ॥४४॥

बीकानेरके सरदार

फिट बीदाँ, फिट काँधलाँ, जंगलधर लेडाँह ।
दलपत हुड ज्यूँ पकड़ियो, भाज गई भेडाँह ॥४५॥

चूरू-ठाकुर

काँदा खाया कमधजाँ, घी खायो गोलाँह ।
चूरू चाली, ठाकराँ, बाजंते ढोलाँह ॥४६॥

राजस्थानके राजा

सिंघाँ सिर नीचा किया, गाडर करै गलार ।
अधपतियाँ सिर ओढणी, तो सिर पाघ, मलार ॥४७॥

४—राड़—युद्ध । पग रोप—दृढता-पूर्वक । जगो—जगरामसिंह । उण पाई ०—उसे 'आसोप' का ठिकाना मिला ।

४५—बीदाके वंशजोको धिक्कार है, काँधलके वंशजोंको धिक्कार है, जंगलधर ाकाके वंशजोको धिक्कार है, जो उनके होते हुअे भेढेकी भाँति महाराज दलपतसिंह ा शत्रुओंने पकड लिया और ये लोग उनको छोडकर भेडोंकी तरह भाग गये ।

४६—राठोडोंको प्याज खानेको मिला और गोलोंने घीके माल उड़ाये । ठाकुर साहब, इसीका फल है कि आपका यह किला ढोल बजते हुअें हाथसे नकल रहा है ।

४७—सिंहोंने सिर नीचे कर रखे है और भेड खुश हो रही है । आज ाजाओंके सिरपर ओढनी पडी हैं और पगडी, हे मल्हारराव होल्कर, वास्तवमे रे ही सिरपर हैं ।

२—भौगोलिक

सामान्य

सीयाळे खाटू भलो, ऊनाळे अजमेर।
नागाणो नित-नित भलो, सावण बीकानेर ॥ १ ॥
स्याळे भलो ज माळवो, ऊनाळे गुजरात।
चोमासे सोरठ भलो, बड़वो बारह मास ॥ २ ॥

मारवाड़

जळ ऊँडा, थळ ऊजळा, नारी नवले वेस।
पुरख पटाधर नीपजै, अइ हो मुरधर देस ॥ ३ ॥
मारू देस उपन्नियाँ, सर ज्यूं पाधरियाँह।
कड़वा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाँह ॥ ४ ॥
मारू देस उपन्नियाँ, त्याँका दंत सुसेत।
कूँझ बचाँ गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत ॥ ५ ॥
देस सुरंगो, जळ सजळ, मीठा-बोला लोय।
मारू कामण धूर दखण जे हर देय तो होय ॥ ६ ॥

२—भौगोलिक

१—सीयाळे—शीतकालमें, जाडेमें। खाटू—जोधपुर राज्यमें अेक स्थान ऊनाळे—उष्णकालमें, ग्रीष्ममे। नागाणो—जोधपुर राज्यमें नागोर नामक शहर सावण—श्रावणमें, वर्षाकालमें।

२—सोरठ—काठियावाड। बडवो—गुजरातमे अेक स्थान।

३—ऊँडा—गहरा। नवले वेस—नवीन वयकी, नवयुवती, सुन्दरी। पुरख-पुरुष। पटाधर—तलवार-धारी। नीपजै—उत्पन्न होते हैं। मुरधर—मरुधरा, मारवाड

४—सर—तीर। पाधरिया—सीधे, लवे। कदे—कभी। बोलणिया—बोलने-वाले (होते हैं)।

५—उपन्नियाँ—उत्पन्न हुईं। कूँझ इ०—क्रौंचके बच्चोंके समान गौरवर्णवाली खजर इ०—खजनकी तरह नेत्र होते हैं।

६—लोय—लोग। मारू इ०—मारवाडकी कामिनी दक्षिणकी भूमिमें, भगवान विशेष अनुग्रह करके दे तभी, पत्नीरूपमे मिल सकती है।

देस सुरंगो, जळ सजळ, न दिया दोस थळांह ।
घर-घर चंद-वदन्नियाँ नीर चढै कमळांह ॥ ७ ॥
लाटा काठा लीजिये गेहूँ तीखा खाण ।
भड वांका, तीखी तुरी, अइ हो धर जोधाण ॥ ८ ॥

मारवाड़की नदियाँ

रेडीयो रणका करै, लूणी लहराँ खाय ।
बांडी बपडी क्या करै, गुहियासूँ घर जाय ॥ ९ ॥

बीकानेर

ऊंठ, मिठाई, अस्तरी, सोनो-गहणो, साह ।
पाँच चीज पिरथी सिरे, वाह बीकाणा वाह ॥१०॥

ढूँढाड़ (जयपुर)

ऊँचा परवत, सेर वन, कारीगर तरवार ।
इतरा वधका नीपजै, रंग देस ढूँढाड ॥११॥
वागाँ-वागाँ वावड्याँ, फुलवांदाँ चहुँ फेर ।
कोयल करै टहूकडा, अइ हो धर आंबेर ॥१२॥
आम ज उमदा नीपजै, गेहूँ अर गुड वाड़ ।
नर नाहर तो नीपजै, सेखा-धर ढूँढाड ॥१३॥

८—गेहूँ—खानेके लिअे उत्तम काठा गेहूँ उत्पन्न होता है ।

९—रेडीयो, लूणी, बांडी, गुहिया—मारवाडकी ४ नदियाँ । रणका—शोर । बपड़ी—बेचारी । जाय—नष्ट होते हैं क्योंकि वह बहुत जोरसे चढता है ।

१०—अस्तरी—स्त्री । साह—साहूकार । पिरथी सिरे—पृथ्वीमें सबसे बढकर । बीकाणा—हे बीकानेर ।

११—इतरा इ०—इतनी चीजे श्रेष्ठ उत्पन्न होती है । रंग—धन्य है ।

१२—वागाँ इ०—बाग-बाग मे वापिकाएँ हैं, चारों ओर फुलवारियाँ हैं ।

१३—सेखा धर—शेखाकी भूमि । जयपुरमें शेखा प्रसिद्ध वीर हो चुका है ।

उदयपुर

उदियापुर लंजा सहर, माणस घणमोलाह ।
दे भाला पाणी भरै आयाँ पीछोलाह ॥१४॥
भाटा, तू सम्भागियो, पीछोलारी टग्ग ।
गुललंजा पाणी भरै ऊपर दे-दे पग्ग ॥१५॥
उदियापुररी कामणी गोखाँ काढै गात ।
मन तो देवाँरा डिगै मिनखाँ कितीक वात ॥१६॥

आबू

टूके-टूके केतकी, भिरणे-भिरणे जाय ।
अरबुदकी छबि देखताँ और न सालै दाय ॥१७॥
जाणै जिके सुजाण नर, नहि जाणै सो बोक ।
जमी ओर असमान बिच आबू तीजो लोक ॥१८॥
वनसपती पाखर वणी, वणिया टूक विहद्द ।
पटा विछूटै नीभरण आयो मद अरबुद्द ॥१९॥
गह घूमी, लूमी घटा, वीजाँ सहिराँ वद्द ।
वादल माँय विराजियो आजूणो अरबुद्द ॥२०॥
चंपा माणो, गिर चढो, आँबा भखो अवल्ल ।
अरबुदसूँ अलगा रहै, जिणरो कोण हवल्ल ॥२१॥

१४—लजा—सुन्दर। माणस इ०—जहाँके मनुष्य बहुमूल्य हैं। पीछोलाह—उदयपुरकी सुप्रसिद्ध झील।

१५—भाटा—हे पत्थर। सम्भागियो—सौभाग्यशाली। टग्ग—सहारा देनेकी चीज। गुललजा—सुन्दरियाँ।

१६—उदियापुररी इ०—उदयपुरकी कामिनियाँ जब झरोखोंके बाहर अपने सुन्दर शरीरको निकालती हे तो उन्हें देखकर देवोंका भी मन डिग जाता है मनुष्योंकी तो वात ही कितनी।

राड़धड़ा

घर ढाँगी, आलम धणी परगल् लूणी पास ।
लिखियो जिणने लाभसी राडधडारो वास ॥२२॥

गोढाण

अइ अे आँवलियाँह, गुणसागर गोढाणरी ।
फूलाँ बहु फलियाँह, नीका दांतण नीपजै ॥२३॥७०॥
॥५६५॥

१७—सालै दाय—पसद आता है ।

१८—जिके—वे । बोक—मूढ । जमी—पृथ्वी ।

१६—पाखर—प्रखर, प्रचुर, सुन्दर । विहद—बहुत अधिक । नोझरण—झरने । आयो इ०—मानो अर्बुद हाथीको भाँति मद-युक्त हो रहा है ।

२०—वीजाँ—बिजली । सहिराँ—शिखरोंपर । आजूणो—आजका ।

२१—अवल्ल—उमदा । हवल्ल—हाल ।

२२—घर इ०—जहाँ ढाँगो नामक रेतके टीबेकी जमीन है, जहाँ आलमजी नामक देवता सरक्षक हैं, और जहाँ प्रचुर जलवाली लूणी नदी पासमे ही है, अैसे राडधडाका निवास जिनके भाग्यमे लिखा है उन्हो को मिलेगा ।

(५) हास्य और व्यंग

हास्य और व्यंग

रावण

राजा रावण जनमियो, दस मुख, अेक सरीर ।
जननीने साँसो भयो, किण मुख घालूँ खीर ॥ १ ॥

जनरल प्रतापसिंह

दाढी-मूँछ मुँडायकै सिरपर धरियो टोप ।
प्रतापसी तखतेसरा, (थारे) वाको घटै लँगोट ॥ २ ॥

महाराणा सज्जनसिंह

आगे-आगे वाजता हिंद-हहरा सूर ।
अब देखो मेवाड़पत तारा हुया हजूर ॥ ३ ॥

मारवाड़ी रेल

नहीं तार, नहिं टैम है, नहीं वतीमे तेल ।
आ चालै मनरे मते मारवाड़री रेल ॥ ४ ॥

हास्य और व्यंग

१—जननीने—माताको चिंता हो गई कि किस मुखमें दूध पिलाऊँ ।

२—तखतेसरा—तखतसिंहके बेटे । वाको इ०—फिर ढंडी स्वामी बननेमें कोई कसर नही ।

३—आगे इ०—सज्जनसिंहजीको सितारे-हिंद (G C S I) की उपाधि मिलनेपर चारण कविका कथन—पहले समयमें तो मेवाड़के राणा हिंदु आ सूरज कहलाते थे पर देखो अब ये हिन्दके तारे बन गये हैं। पाठान्तर—घटत-घटत अैसे घटे तारा भये हजूर ।

४—टैम—टाइम, आने जानेका नियमित समय । वती—बत्ती, रोशनी भी ठीक नही । आ इ०—यह मारवाड़की रेल अपने ही मनके अनुसार चलती है ।

मारवाड़

बाळूं, बाबा, देसड़ो पाणी ज्यां कूवांह ।
आधीरात कुहक्कडा, ज्यूं माणस मूवांह ॥ ५ ॥
बाळूं, बाबा, देसड़ो पाणी-संदी तात ।
पाणी-केरे कारणे प्रिव छंडै अधरात ॥ ६ ॥
बाबा, मत देइ मारुवां, वर कूंवारि रहेस ।
हाथ कचोळो, सिर घड़ो, सींचंती य मरेस ॥ ७ ॥
बाबा, मत देइ मारुवां सूधा गोवाळांह ।
कंध कुहाड़ो, सिर घड़ो, वासो मंझ थळांह ॥ ८ ॥
जिण भुंय पन्नग पीवणा, केर-कंटाला रूंख ।
आके-फोगे छांहड़ी, हूंछां भांजै भूख ॥ ९ ॥

५—बाळूं इ०—हे बाबा उस देशको जला दूं जहां पानी कुवोंमें मिलता है और पानी निकालनेवाले आधीरातसे ही अैसा शोर करने लगते हैं मानो कोई मनुष्य मर गया हो ।

६—पाणी इ०—जहां पानीका कष्ट है और पानीकी खातिर प्रियतम आधीरातको ही छोड़कर चला जाता है। (पानी निकालेवाले रात रहते ही कुऍपर चले जाते हैं)।

७—बाबा—हे बाबा, मारवाडके निवासीके साथ मेरा विवाह न करना चाहे मैं कुमारी भले ही रह जाऊं । हाथमें कटोरा और सिरसर घडा इस प्रकार वहां मैं दिन-रात पानी ढोती-ढोती ही मर जाऊंगी ।

८—सूधा इ०—मारवाड़के निवासी सीधेसादे गाय चरानेवाले हैं। वहां कधेपर कुल्हाड़ी और सिरपर घडा रखना होगा तथा थली (मरुस्थल) के बीच वास करना होगा ।

उस मारवाड़की भूमिमें पी जानेवाले सांप होते हैं,
ही पेड़ हैं, आक और फोगके नीचे ही छाया मिल
बीजोंसे भूख दूर करनी पड़ती है, पहनने-ओढ़नेको
पुरसकी (अेक पुरस कोई तीन हाथका होता है)
वहांके लोग अेक स्थानपर टिककर नहीं रहते और
ो दूध मिलता है ।

पहरण-ओढण कामळा, साठे पुरसे नीर ।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर-छाळी खीर ॥१०॥
मारवाडके देसमे अेक न भाजै रिड्ढ ।
ऊचाळो, क अवरसणो, कै फाका, कै तिड्ढ ॥११॥
पढै गुणै नहि पेखवै, च्यारूं वरण निचत ।
मारवाडरी मूढता मिटसी दोरी, मित ॥१२॥

ढूँढाड (जयपुर)

गाजर मेवो, काँस खड, पुरख ज पून-उघाड़ ।
ऊँधा ओझर अस्तरी, अइ हो धर ढूँढाड ॥१३॥

आबू

धर चंगी, नर चोरटा, वागरियाँरे वेस ।
भालडियाँ घिसता फिरै, अइ हो आबू देस ॥१४॥
जव खाणो, भखणो जहर, पाळो चलणो पंथ ।
आबू ऊपर बैंसणो भलो सराह्यो, कंथ ॥१५॥

११—भाजै—दूर होता है। रिड्ढ—अरिष्ट, कष्ट । ऊचालो—अकालके समयमें अपने पशुओं सहित दूसरे देशको चला जाना । क, का—या, अथवा । अवरसणो—अवर्षा। फाको—टिड्डियोंके बच्चोंका दल। ऊचालो इ०—जहाँ ऊचाला, अवर्षा, टिड्डीदल, या फाकेका आगमन—इनमें से कोई अेक या अधिक उत्पात अवश्य होते हैं ।

१२—पेखवै—देखते हैं । निचत—निश्चित । दोरी—कठिनतासे । मित—हे मित्र ।

१३—जहाँपर गाजर ही मेवा है, जहाँ खेतोंमें काँस नामक घास पैदा होता है, जहाँके पुरुष चूतडोंको ढकते ही नहीं और जहाँ उलटे पेटवाली स्त्रियाँ हैं, हे अैसे ढूँढाड देश, तुझे धन्य है ।

१५—हे पति, आबूके निवासको आपने अच्छा सराहा जहाँ खानेको जौ मिलते हैं, जहर-सा पानी पीना पडता है, और पैदल मार्ग चलना पड़ता है ।

जेसलमेर

पग पूगल, धड़ कोटड़े, बाहू बायड़मेर ।
फिरतो-घिरतो वीकपुर, ठावो जेसलमेर ॥१६॥

मालवो

बालूँ, बाबा, देसड़ो ज्याँ फीकरिया लोग ।
अेक न दीसै गोरियाँ, घर-घर दीसै सोग ॥१७॥
बालूँ, बाबा, देसड़ो ज्याँ पाणी सेवार ।
ना पणियारी झूलरो, ना कूवे लैकार ॥१८॥

विभिन्न देश

पंडितने पूरब भली, ग्यानीने पंजाब ।
मारवाड़ भलि मूर्खने, कपटीने गुजरात ॥१९॥
आतम ध्यानी आगरो, जारे वीकानेर ।
राग-दोख गुजरातमें, निंदक जेसलमेर ॥२०॥

विभिन्न जातियाँ

चाँपा पालन चारणाँ, ऊदा पालन डूम ।
मेहा पालन बामणाँ, भाटी सदाई सूम ॥२१॥

१६—अकालका कथन—मेरे पैर पूगलमें, धड़ कोटड़ेमें और भुजाएँ बाडमेरमें रहती हैं, घूमता-घामता वीकानेर भी पहुँचता रहता हूँ पर जेसलमेर में तो निश्चितरूपसे मिलूँगा ।

१७—ज्याँ—जहाँ । फीकरिया—फीके, नीरस । दीसै—दिखाई देती हैं । गोरियाँ—सुंदरी स्त्री । सोग—शोक, मातम (काले कपड़े पहनेका रिवाज होनेसे) ।

१८—सेवार—सेवाल । ना इ०—न तो पनिहारियाँ झुंड बनाकर पानी लानेको चलती हैं और न कुओंपर चलानेवालोंका सुरीला शब्द ही होता है (जैसा कि मारवाड़में हुआ करता है) ।

२१—चाँपावत चारणोंके पालक हैं, ऊदावत डूमोंके, और मेहा ब्राह्मणोंके पर भाटी राजपूत सदा ही कंजूस रहे हैं (वे किसीको नहीं पालते) ।

(६) प्रेम

प्रेम-महिमा

पोथा तो थोथा भया, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेमका, पढ़ै स पंडित होय ॥ १ ॥
साजन, वे़ल सनेहरी, किणसूँ कही न जाय।
जैसें छहियाँ फूलकी, माँहोमाँह समाय ॥ २ ॥
प्रेम-कहाणी कहत हूँ, सुणो सखी री आय।
पिव ढूँढणको हम गई, आई आप हिराय ॥ ३ ॥
प्रीत-रीतके काज, पंछी पण बंधण सहै।
तीतर बहरी बाज, गगन गया क्यूँ वावड़ै ॥ ४ ॥

प्रेम निर्वाहकी कठिनता

सब कोइ प्रीत वटावते, सब कोइ करते भाव।
सम्मन, वै कुण रूँखडा, ज्याँ न झकोलै वाव ॥ ५ ॥
प्रीत-प्रीत सब कोइ कहै, कठिन प्रीतकी रीत।
आद-अंत निवहै नहीं, ज्यों बालूकी भींत ॥ ६ ॥
प्रीत-प्रीत सब कोइ करै, कहा करय़ेमे जात।
करबो और निभायबो, वड़ी कठिन या वात ॥ ७ ॥

प्रेम महिमा

२—किणसूँ—किसीसे भी। छहियाँ—छाया। माँहोमाँह—भीतर ही भीतर।

३—आप—खुदको ही। हिराय—खोकर।

४—पण—भी। बहरी—अेक पक्षी। वावडै—लौट आते है। गगन इ०—नही तो आकाशमें उड जानेके बाद भी फिर क्यों लौट आते हैं?

५—वटावते—लेनदेन करते है। भाव इ०—मोलचाल करते हैं। कुण—कौन। ज्याँ—जिनको। वाव—वायु। झकोलै—झकझोरता है।

७—करयेमें—करयेमें। कहा जात—क्या जाता है।

खड्ग-धारपर काय, चालै तो चलवो सहल।
मुसकल जगरे मांय नेह निभावण, नागजी ॥ ८ ॥
प्रीत निभावण कठन है, प्रीत करो मत कोय।
भाँग भखण है सहज पण, लहराँ मुसकल होय ॥ ९ ॥
जाणै सोई जाणसी, प्रीत-रीतको भेद ।
बंध्या पीर प्रसूतको, कहा बतावै खेद ? ॥१०॥
अकथ कहाणी प्रीतकी, कही न मानै कोय ।
जाणै सो जाणै, अरे, जिण सिर बीती होय ॥११॥

सच्चा प्रेम

प्रीत करै ऐसी करै, करके क्यों छिटकाय।
जैसें रोगी नीमकूँ छाण-घोट पी ज्याय ॥१२॥
ऐसो नेह लगाइये, जैसो काळो रंग ।
मैलो हुवै न मँद पड़ै, धोयो धुपै न अंग ॥१३॥
केसरको रँग जरद है, चूनेको रँग सेत ।
दोनूं मिल लाली करै, ऐसो राखो हेत ॥१४॥
सम्मन, ऐसी प्रीत कर, ज्यों हिन्दूकी जोय।
जीताँ-जी तो सँग रहै, मरयाँ पै सत्ती होय ॥१५॥
साजन, ऐसी प्रीत कर, निस अर चंदे हेत ।
चंदे विन निस साँवळी, निस विन चंदो सेत ॥१६॥

८—काय—कोई, कभी। सहल—सहज।

९—कठन—मुश्किल। लहराँ—भंगकी तरंगें।

१०—जाणसी—जानेगा। बंध्या—बंध्या स्त्री प्रसूतिकी पीडाके क[ष्ट]
क्या बता सकती है।

१२—छिटकाय—छोड़ें। नीमकूँ—खारा होनेपर भी।

१३—मँद—मद, कम। धुपै—धुलता है।

१५—जोय—स्त्री। जीताँ जी—जीते हुए। मरयाँ प—मरनेपर।

१६—निस इ०—जैसा प्रेम रात्रि और चन्द्रमामें है। साँवळी—का[ली,]
दुखी। सेत—श्वेत, कांतिहीन, मलिन।

बडोंका प्रेम

प्रीत भली पारै वडा, रूपै रूडा मोर ।
प्रीत करै नै परहरै, माणस नहि वै चोर ॥१७॥
पहली परत न कीजिये, ऊँच-नीचसूँ प्रीत ।
कर पीछे कहिये नही, रहिये अेकहि रीत ॥१८॥
सदा ज नवलो नेह, जिण-तिणसूँ करणो नहीं ।
आगलडारे छेह, आप-तणो दीजै नहीं ॥१९॥
सम्मन, प्रीत न जोडिये, जोड न तोडो कोय ।
तोडयाँ पीछे जोडियै, गाँठ-गंठीली होय ॥२०॥
सठ-सनेह, जीरण वसन, जतन करंताँ जाय ।
चतर-प्रीत, रेसम-लछा, घुलत-घुलत घुल जाय ॥२१॥
प्रीत पुराणी ना पडै, जो उत्तमसूँ लग्ग ।
सो जुग जो जलमे रहै, पथरी तजै न अग्ग ॥२२॥
संत प्रीत जासों करै, अवस निभावै अंत ।
बोल वचन पलटै नहीं, गिरा रेख गजदंत ॥२३॥

१७—पारै—पालते है, निभाते हैं । वडा—वडे लोग । नै—और । परहरै—छोड देते हैं । माणस—मनुष्य । वै—वे । पाठांतर, पारेवडा—कबूतरोंकी ।

१८—परत—भूलकर भी ।

१९—सदा इ०—नित्य नया प्रेम जिस किसीसे बिना सोचेबिचारे नही करना चाहिअे, और सामनेवालेके (दूसरेके) छेह देनेपर स्वय अपना छेह नही देना चाहिअे । छेह देना—अत देना, क्रुद्ध होना ।

२०—गाँठगॅठीली—अनेक गाँठोंवाली ।

२१—जीरण वसन—पुराना वस्त्र । जतन इ०—यत्न करते हुअे भी । रेसम-लछा—रेशमके लच्छे । घुलनो—गहरा हो जाना ।

२२—लग्ग—लगती है । पथरी—चकमक पत्थर । अग्ग—आग ।

२३—जासों—जिसमे । अवस—अवश्य । गिरा इ०—उनके वचन हाथी-दाँतपरकी लकीर है जो कभी नही मिटती ।

गरवा आदर ना करै, करै प्रीत पाळ्ंत ।
शंकर विख,सायर वहनि, कोर मधर धारंत ॥२४॥
जळ न डुबोवत काठकूँ, कहो काहेकी प्रीत ।
अपणा सींच्या जाणकर, यही वडोंकी रीत ॥२५॥

आदर्श प्रेमी

डीघी पाळ तळावरी, हंसा बैठ्या आय ।
प्रीत पुराणी कारणे, चुग-चुग काँकर खाय ॥२६॥
ताल सूख परपट भयो, हंसा कहूँ न जाय ।
प्रीत पुराणी कारणे, चुग-चुग काँकर खाय ॥२७॥
हाय दई, कैसी भई, अणचाहतको संग ।
दीपकके भावै नहीं, जळ-जळ मरै पतंग ॥२८॥
आव, पतंग, निसंक जळ, जळत न मोड़ो अंग ।
पहली तो दीपक जळै, पीछे जळै पतंग ॥२९॥

२४—गरवा—बड़े। करै—यदि आदर करते हैं, अपनाते हैं। शकर—जैसे शकर विषको और समुद्र अग्निको हृदयके भीतर रखते हैं।

२५—डबोवत—डुबोता है। अपणा इ०—यह जानकर कि मैंने ही इसे सींचकर बड़ा किया है।

२६—तालाबकी ऊँची पारपर हस आकर बैठ गये हैं और पुरानी प्रीतिके कारण चुग-चुगकर कक्कर खाते हैं (पानीके सूख जानेपर भी हस पुराने प्रेम को नहीं भूलते)।

२८—हाय विधाता ! यह कैसी बात हो गई जो नहीं चाहनेवालेका सग हुआ। बेचारा पतिगा तो जल-जलकर मरता है पर दीपकके लिअे कुछ भी नहीं।

२९—ऊपरके दोहेका उत्तर—हे पतिगे, तू आ और निश्शक होकर जल, (याद रख) पहले दीपक स्वय जलता है तब कहीं तेरे जलनेकी बारी आती है।

पय-पाणीकी प्रीतडी, किस विध बाँध्यो नेह।
नँदनरहरिया, आप जरि, वाकी राखी देह ॥३०॥

पय उवरयो, पाणी जरयो, तब दुध चल्यो रिसाय।
नँदनरहरिया, तो रहै, पाणी राखै आय ॥३१॥

आग लगी वनखंडमे, दाझ्या चंदण-वंस।
हम तो दाझ्या पंख विन, तूँ क्यों दाझै, हंस ॥३२॥

पान मरोड्या, रस पिया, बैठ्या अेकण डाल।
तूम जलो, हम उठ चलै, जीणो कितोक काल ? ॥३३॥

ओछोका प्रेम

डूँगर-केरा वाहला, ओछाँ-केरा नेह।
वहता वहै उतावला, छिटक दिखावै छेह ॥३४॥

सीच्या हा गुण जाणके, इण न करी कुल-कौण।
छातीपर पैडा किया, ओछेकी पहचाँण ॥३५॥

३०—पय-पाणी—दूध और पानी। नन्द नरहरिया—कविका नाम। आप जरि—पानीने स्वय जलकर। वाकी—दूधकी। नोट—दूधको गर्म करते है तो पहले उसमें जो पानी होता है वह जलता है और उसके जलनेके वाद दूध जलने लगता है।

३१—पाणी राखै इ०—यदि फिर पानी आकर रोके (उफनते दूधमें पानी डाल दिया जाय तो वह बैठ जाता है)।

३२—दाझ्या—जल गये। चन्दण व स—चन्दन और बाँसके पेड। हम तो इ०—पेड़ोंका कथन वही रहनेवाले हसके प्रति। दाझै—जलता है।

३३—मरोड्या—मरोडे। बैठ्या इ०—अेक ही डालपर बैठे। तूम इ०—भला तुम जलो और हम तुम्हे छोडकर चले जायँ ! जीणो इ०—जीना कितने दिनोंका जो इसके लिअे मित्रको छोडकर चल दे।

३४—पहाडोंके नाले ओर ओछोका प्रेम चलते समय (आरम्भमें) तो खूब तेजीसे चलते हैं पर तुरन्त ही अपना अन्त दिखा देते है। (तुरन्त ही उनका अन्त आ पहुँचता है)

३५—सीच्या हा—सीचे थे। इण० इ०—इन्होंने कुलकी कानका ध्यान भी न रखा, छातीपर रास्ता वनाया।

सींच्या हा गुण जाणकै, निकस्या निहचै काट।
देखो प्रीत अजाणकी, सिरपर वाही वाट ॥३६॥

प्रीत करी छी नीचसे, पले ज बँधियो कीच।
सोस काट आगे धरयो, रह्यो नीच-को-नीच ॥३७॥

प्रेमका नाश

पय-पाणीकी प्रीतड़ी, पड़्यो ज कपटी लूँण।
खंड-खंड करि मन गयो, बहुरि मिलावै कूँण ॥३८॥

अगन सोर, गज केहरी, पाव-पदम सिर-मोड़।
उदैराज, कैसे वणै, प्रीत-कपट अेक ठोड़ ॥३९॥

काच-कटोरो, नैण-जल, मोती, दूध, र मन्न।
इतरा फाट्या ना मिलै, लाखूँ करो जतन्न ॥४०॥

मन, मोती, चख, मेर, पाको घट, मूँगो, मुकुर।
फूटा अेता फेर मेल्या मिलै न, मोतिया ॥४१॥

मोती फाट्यो वींधता, मन फाट्यो अेक बोल।
मोती फेर मंगाय लो, मन तो मिलै न मोल ॥४२॥

मन फाट्या, कण-कण हुआ, फेर घड़ै तो राम।
हरीदास जन यूँ कहै, नहीं ओरका काम ॥४३॥६८७॥

३६—निकस्या—निकले । निहचै—निश्चय ही । सिरपर इ०—सिरपर रास्ता बनाया। पले इ०—पल्लेमें बँधा, हाथ आया।

३७—छी—थी।

३८—पय—दूध। लूँण—नमक। बहुरि—फिर। कूँण—कौन।

३९—अग्नि और शोरा, हाथी और सिंह, चरण और माथेका मुकुट, तथा प्रेम और कपट—ये अेक ठौर कैसे रह सकते हैं।

४०—र—और। इतरा इ०—इतने फटनेके बाद नहीं मिल सकते।

४१—चख—आँख। पाको घट—पक्का घड़ा। मूँगो—मूँगिया। मुकुर—काच। अेता—इतने। फेर—फिर। मेल्या इ०—मिलाये जानेपर नहीं मिल सकते।

४२—वींधतां—बेधते हुअे। अेक बोल—अेक कटु-वचनसे।

४३—कण-कण—कन-कन, टुकड़े-टुकड़े। फेर—फिर ज्योंका-त्यों बना दे अैसा तो अेक ईश्वर ही है।

(७) शृंगार रस

१—प्रियतम

साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जड़ी ।
साजन फूल गुलाबरो, निरखूँ घडी-घड़ी ॥ १ ॥
साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जड़ी ।
मजन लिखा लूँ चूडले, वाँचूँ घड़ी-घडी ॥ २ ॥
साजन, तुम-मुख जोय जग सारो ही जोइयो ।
अैसो मिल्यो न कोय, ज्यां देख्यां तुम्ह वीसरूँ ॥३॥
सम्मन, चूडी काचकी कोडी-कोडो देख ।
जब गल लागी पीवके, लाख टकांकी अेक ॥ ४ ॥
साजन खारा खाँड-सा, केसर जिसा कुरंग ।
मैला मोती सारसा, ओछा जांण समंद ॥ ५ ॥
साजन अैसा कीजिये, जामें लखग बतीस ।
भीड पड़्यां विरचै नहीं, सीस करै बगसीस ॥ ६ ॥
साजन अैसा कीजिये, जैसा रेसम रंग ।
सिर सूली, धड कांगरे, तोड न छूटै संग ॥ ७ ॥

१—प्रियतम

१—साजन—प्रियतम । जीव-जडी—प्राणोंके लिअे सजीवनी बूटी ।

२—चूडले—चूडेपर । सजन—साजन यह शब्द ।

३—जोय—देखकर । जोइयो—देखा । ज्यां इ०—जिसे देखनेसे तुम्हे भूल जाऊँ ।

४—कोडी इ०—कौडीके मूल्यमें बिकती देख पडती है वही ।

५—प्रियतम खाँड जैसे खारे है, केशरके समान कुरग (बुरे रग के) है मोतीके समान मैले हैं, और समुद्रकी तरह ओछे है (आकर्षण और वर्णन वैचित्र्यके लिअे विरोधात्मक कथन) ।

६—लखण—लक्षण, सामुद्रिकमे बत्तीस लक्षण प्रसिद्ध हैं । भीड—कष्ट विरचै—छोडे । बगसीस—बख्शीश, त्याग ।

साजन अैसा कीजिये, जैसा कूवे कोस ।
पग दे पाछा ठेल दे, रती न मानै रोस ॥ ८॥
साजन इसा न चाहिअे, जैसा झाड़ी-बोर ।
ऊपर लाली प्रेमकी, हिरदा माँय कठोर ॥ ९॥
हूँ बलिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बलिहार ।
हूँ सज्जण पग-पानही, सज्जण मो गल-हार ॥१०॥
जलहर वसै कमोदणी, चंदो वसै अकास ।
जो ज्याँहीके मन वसै, सो त्याँहीके पास ॥११॥
ससनेही समदाँ-परे, वसत हिया मंझार ।
कुसनेही घर आँगणे, जाँण समंदाँ पार ॥१२॥

२—नायिका

गति गंगा, मति सरसुती, सीता सील-सुभाइ ।
महिलाँ सरहर मारुवी कलिमें अवर न काइ ॥१॥

८—कूवे कोस—कुअेसे पानी निकालनेको चमड़ेका पात्र (चरस), जिसको पानी उंडेल लेनेके बाद निकालनेवाला पैर मारकर फिर कुअेमें डाल देता है। रती—थोड़ा भी। रोस—रीस।

९—इसा—अैसे। बोर—बेर।

१०—मैं प्रियतमपर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझपर बलिहारी है। मैं प्रियतमके पैरोंकी पगरखी हूँ और प्रियतम मेरे गलेके हार है।

११—जलहर—जलाशय।

१२—सच्चे प्रेमी समुद्रके पार भी रहते हों तो भी हृदयमें ही रहते हैं। और जो प्रेमी सच्चे नहीं हैं वे घरके आँगनमें रहते हुअे भी मानो समुद्रके पार रहते है।

२—नायिका

१— गति गंगा—गतिमें गगाके समान। सरसुती—सरस्वती। महिला—इस कलियुगमें मारुवणीकी बराबरी करनेवाली महिला दूसरी कोई नहीं है।

गति गयद, जव केलम्रभ, केहर जिम कटि वंक।
हीर दसन, विद्रुम अधर, मारू भ्रकुटि मयंक ॥२॥
मारू-घूँघट दिट्ठ में, अेता सहित फुणिंद।
कीर, भमर, कोकिल, कमल, चन्द, मयंद, गयंद ॥३॥
कीर, कवल, अर कोकिला, अहि, गज, सिंह, मराल।
उदैराज, देख्या इता लूंब्या अेकण डाल ॥४॥
मृगनयणी, मृगपतिमुखी, मृगमद-तिलक निलाट।
मृगरिपु कटि सुन्दर वणी, मारू अैहै धाट ॥५॥
कद थे नाग विसासिया, नैण लिया मृग-भल्ल।
मान-सरोवर कद गया हंसाँ सीखण हल्ल ? ॥६॥
थल भूरा, वन भंखरा, नही स चाँपो जाय।
गुणे सुगन्धी मारुवी महकी सहु, वणराय ॥७॥

२—गति इ०—मारुवणीकी गति हाथी जैसी, जघा केलेके भीतरी भाग जैसी कोमल, कमर सिंहकी-सी बाँकी, दाँत हीरों जैसे, अधर मूँगे जैसे और भ्रकुटी द्वितीयाके चद्रमा जैसी है।

३—मारू इ०—मारुवणीके घूँघटके भीतर मैंने इतने पदार्थ देखे। फणीद्र—साँप अर्थात् वेणी। कीर—सुग्गा अर्थात् नासिका। भमर—भ्रमर अर्थात् बाल। कोकिला—अर्थात् कोयल जैसी वाणी। कमल—अर्थात् मुख या नेत्र। चद—ललाट। मयद—सिंह अर्थात् कमर। गयद—हाथीकी-सी चाल। रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

४—कीर—नासिका। कँवल—मुख, या नेत्र। कोकिला—वाणी। अहि—वेणी। गज—चाल या जघा। सिंह—कटि। मराल—चाल। लूंब्या—लटकते हुअे। उदैराज – कविका नाम।

५—मृगपति—चद्रमा। मृगमद—कस्तूरी। निलाट—ललाटपर। मृगरिपु—सिंह। अैहै घाट—अैसे गठनकी।

६—कद थे—तुमने नागोंको कब अपना विश्वासपात्र बना लिया कि वे आकर तुम्हारे केश बन गये, तुमने मृगोंके कब नेत्र छीन लिये, और हसोंसे चाल सीखनेके लिअे तुम कब मानसरोवर गई थी।

७—भूरा—बालुका-मय। भखरा—भखाड। चाँपो—चंपक। जाय—पैदा होता है। गुणे—नायिकाके गुणोंकी सुगंधिसे।

उर चवड़ी, कड पातली, झीणी पाँसलियाँह ।
कै मिलसी हर पूजियाँ, हीमाळे गळियाँह ॥८॥

उर चवडो, कड़ पातली, ठावो-ठावो मंस ।
ढोला, थारी मारुवी पाबासररो हंस ॥९॥

मारू देस उपन्नियाँ सर ज्यूँ पध्धरियाँह ।
कडवा बोल न जाँणही, मीठा बोलणियाँह ॥१०॥

मारू देस उपन्नियाँ, ताँका दन्त सुसेत ।
कूँझ-बचाँ गोरंगियाँ, खजन जेहा नेत ॥११॥

देस सुहावो, जळ सजळ, मीठाबोला लोय ।
मारू-कामण भुइँ दिखण जे हर देय तो होय ॥१२॥२५॥

३—प्रेम-पीड़ा

प्रीत करी सुख कारणे, जोको जळन भयो ।
आस मिटी न तृखा बुझी, उलटो भरम गयो ॥ १ ॥

निणको हो तो तोड लूँ, प्रीत न तोड़ी जाय ।
प्रीत लगी छूटै नहीं, ज्याँ लग जीव न जाय ॥ २ ॥

८—कड—कमर। झीणी—कोमल। कै—या तो। हीमाळे—या हिमालय-में गलनेसे।

९—ठावो—उचित स्थानोंपर। पाबासर—मानसरोवर।

१०—उपन्निया—उत्पन्न हुई। सर—बाणकी तरह सीधी।

११—कूँझ—क्रौंचके बच्चोंकी तरह गोरांगियाँ होती हैं। नेत—नेत्र।

१२—मारू इ०—मारवाडकी जैसी सुंदरी स्त्री दक्षिणकी भूमिमें भगवान ही दे तो मिल सकती है।

३—प्रेम-पीड़ा

१—कारणे—वास्ते। तृखा—तृषा, लालसा। भरम—प्रतिष्ठा।

नोज किणाँसूँ लागज्यो वैरी-छीणो नेह ।
धुकै न धूँवो नीसरै, जळै सुरंगी देह ॥ ३ ॥
नैण, पटक दूँ ताळमे, छींट्-छींट हुय जाय ।
मैं तने, नैणाँ, कद कह्यो मन पहली मिल जाय ॥ ४ ॥
नैण लगै तो लगण दे, तूँ मत लगियो चित्त ।
वै छूटैंगे रोय, तूँ बँध्यो रहैगो नित्त ॥ ५ ॥२६

४—विरह

और रग सब ऊतरै ज्यूँ दिन वीत्या जाय ।
विरह प्रेम-चूटा रचै दिन-दिन वधै सवाय ॥ १ ॥
मन, प्रवीण, कुंदन मुहर, प्रेम प्रगासै जोत ।
विरह-अगिनज्यूँ-ज्यूँ तपै त्यूँ-त्यूँ कीमत होत ॥ २ ॥३१

५—प्रियका प्रवास

सजन सिपाही, हे सखी, किस विध बाँधूँ नेह ।
रात रहै, दिन उठ चलै, आँधी गिणै न मेह ॥ १ ॥
सीयाळे तो सी पडै, ऊनाळै लू वाय ।
वरसाळे भुँय चीकणी, चालण रुत्त न काय ॥ २ ॥

३—नोज—मत । किणाँसूँ—किसीसे भी । धुकै—सुलगती है ।

४—छींट-छींट—टुकडे-टुकडे । तने—तुझे । कद कह्यो—कब कहा कि मनके मिलनेके पूर्व ही तू प्रियतमसे मिल जाना ।

४—विरह

१—ज्यूँ—जैसे-जैसे । वधै—सवाया बढता है ।

२—मन इ०—प्रवीण कहता है कि मन सोनेकी मुहर है जो प्रेमकी ज्योतिसे प्रकाशमान् है । वह विरहकी अग्निमें ज्यों-ज्यों तपता है त्यों-त्यो मूल्यवान् होता जाता है ।

५—प्रियका प्रवास

१—आँधी इ०—न आँधीकी पर्वाह करता है न मेहकी ।

२—जाडेमें शीत पडता है, गर्मीमें लू चलती है, बरसातमें पृथ्वी कीचडसे भरी होती है अत. हे प्यारे, प्रवास करनेके योग्य ऋतु कोई नही है ।

थल तत्ता, लू सामुही, दाझोला, पहियाह ।
म्हांको कहियो जो करो, घर बैठा रहियाह ॥ ३ ॥

वर्षा

कप्पड़, जीण,कमाण-गुण भीजै सब हथियार ।
इण रुत साहब ना चलै, चालै तिका गँवार ॥ ४ ॥
डूँगरिया हरिया हुवा, वने झिँगोरय्या मोर ।
इण रित तीने नीसरै, जाचक, चाकर, चोर ॥ ५ ॥
नदियाँ, नाला, नीझरण, पावस चढिया पूर ।
करहो कादम तिलकस्यै, पंथी, पूगल दूर ॥ ६ ॥
अंत घण ऊनम आवियो, झाझी रिठ, झड़, वाय ।
बग ही भला ज बापड़ा, धरण न मेल्हइ पाय ॥ ७ ॥
मेहा वूठा, अन वहल, थल ताढा जल-रेस ।
करसण पाका, कण खिरा, तद को वलण करेस ? ॥ ८ ॥

३—भूमि गर्म है, लू सामने है, हे पथिक, तुम जल जाओगे। यदि हमारा कहा करो तो घर ही बैठे रहो।

४—जीण—जीन। गुण—धनुषकी डोरी। साहब—प्रियतम, सच्चे प्रेमी। तिका—वे।

५—झिगोरय्या—बोले। रित—ऋतु। तीने—तीन ही। नीसरै—निकलते है।

६—नीझरण—झरने। करहो—ऊँट (जिसपर चढ़कर प्रियतम जाना चाहता है)। कादम—कीचडमें। तिलकस्यै—फिसलेगा। पूगल—अेक स्थान, जहाँ प्रियतम जा रहा है।

७—घण—बादलोंकी घटा। ऊनम आवियउ—उमड़ आया। झाझी रिठ—बड़ा भारी शीत। वाय—हवा। बग इ०—बेचारे बगुले ही अच्छे। धरण न मेल्हइ पाय—(१) पृथ्वीपर पैर नही रखते। (२) चलनेके लिअे पृथ्वीपर पैर नही देते।

८—वूठा—बरसा। अन—अन्न। वहल—बहुल, बहुत। ताढा—ठंढा। जल रेस—जलके कारण। करसण—कृषि। कण खिरा—अन्नकण गिरने लगे। तद इ०—तब कौन प्रस्थान करता है ?

धनस चढावै सो धरा इंद्र कढावै आण ।
करै न सावण मासमे, पंथी, पंथ पयाण ॥ ६ ॥
तीज रमैं छै तीजण्याँ, साजण ले-ले लार ।
चढो कियाँ छो चाकरी, साईनाँ सरदार ॥१०॥
सावण लागाँ, सायबा, गाणा-माणा, रंग ।
आणा घर, जाणा नहीं, ठाणाँ बाँध तुरंग ॥११॥
गह घूमी, लूमी घटा, पावस उलट्या पूर ।
सावण महिने, सायबा, कदे न राखूँ दूर ॥१२॥

शीत

जिण रित मोती नीपजै सीप समंदाँ माँय ।
तिण रित ढोलो ऊमह्यो, इम को माणस जाय ॥१३॥
जिण रुत नाग न नीसरै, दाझै वनखँड दाह ।
जिण रुत, हे साहब कहो, कुण परदेसाँ जाह ॥१४॥
प्रीतम, प्यारा प्राणकूँ, मत होवो न्याराह ।
थाँ विन पलक न आलगै, तन तूटै म्हाराह ॥१५॥
साजन, गहरा समँद-सा, गुण-जल भरियो गात ।
ओछा नाडा ज्यूँ इयाँ कियाँ करो छो वात ॥१६॥

१०—धनस—इन्द्रधनुष । आण—आन, शपथ । पयाण—प्रस्थान ।

११—तीजणयाँ—तीजका त्यौहार मनानेवाली स्त्रियाँ । लार--पीछे, साथ । साईनाँ—वयस्य, अेक उम्रके साथी, साथी । चढो इ०—हे प्रियतम, आप नौकरीके लिअे प्रवास करनेको क्यों सवार हो रहे हैं ।

१२—लूमी—झुकी, घिरी । पावस इ०—वर्षाजलसे नाले उमड पडे ।

१३—रित—ऋतु । ढोलो—प्रियतम, नायक । ऊमह्यो—उमडा, चलनेको तय्यार हुआ ।

१४—साहव—प्रियतम । जाह—जाता है ।

१५—आलगै—लगते हैं । म्हाराह—मेरे ।

१६—गुण-जल—शरीरमें गुण-रूपी जल भरा है । ओछा नाडा इ०—छिछले तालावकी तरह अब कैसे बातें करते हो ।

सम्मन प्रीत लगाइकै दूर देस मत जाव ।
वसो हमारी नागरी, हम माँगैं, तुम खाव ॥१७॥

(२)

थे सिध्धावो, सिधकरो, बहु-गुणवंता नाह ।
सा जीहा सतखंड हुय, जेण कहीजै जाह ॥१८॥
सिधो, सिधावो, सिधकरो, रहो त थाँरी दाय ।
इण लाखीणीं जीभसूँ कींकर कहूँ, सिधाय ॥१९॥
थे सिध्धावो, सिध करो, पूजो थाँकी आस ।
मत वीसारो मन-थकी हूं छूं थाँकी दास ॥ २० ॥

(३)

सजन सिकाराँ जावसी, नैणा मरसी रोय ।
विधना, ऐसी रैण कर, भोर कदे ना होय ॥२१॥
सजन सिधासी, हे सखी, प्रात उगंते भाण ।
वधज्ये, म्हारी रातड़ी, कदे न होय विहाण ॥२२॥
आज, सखी, हम यूँ सुण्यो, पो फाटत पिय-गोण ।
पो अर हिवड़े होड है, पहली फाटै कोण ॥२३॥

१७—नागरी—नगरी ।

(२)

१८—सिध्धावो—सिधाओ, पधारो। सिधकरो—सिद्धि करो, प्रस्थान करो। नाह—नाथ । सा जीहा इ०—वह जीभ सौ टुकडे होय जो यह कहे कि 'जाओ' ।

१९—सिधो—पधारो । दाय—इच्छा । लाखीणी—लाख मोलवाली । कींकर—कैसे । सिधाय—'सिधाइये' यह शब्द ।

२०—पूजो—पूरी होवे । आस—आशा । थकी—से ।

(३)

२१—विधना—हे विधाता । कदे—कभी ।

२२—भाण—सूर्य । वधज्ये—बढ़ना । विहाण—प्रात ।

२३—पो फाटत—पौ फटते ही । गोण—गमन, प्रस्थान । हिवड़े—हृदयमें । पहली—पहले ।

(४)

ढोलो हल्लाणो करै, धण हल्लवा न देय।
झब-झब भूंबै पागड़े, डब-डब नयण भरेय ॥२४॥

सायधण हल्लण सांभलै, ऊभी आँगण-छेह।
काजल-जल भेला करी, नाँखी-नाँख भरेह ॥२५॥

जोडै ज्यूँही जोड, विणजारारा व्याज ज्यूँ।
तनक जोड मत तोड, नातो-ताँतो, नागजी ॥२६॥

डूँगर-केरा वाहला, ओछाँ-केरा नेह।
वहता वहै उँतावला, छिटक दिखावै छेह ॥२७॥

पिव खोटाँरा अेहवा, जेहा काती मेह।
आडंवर अत दाखवै, आस न पूरै तेह ॥२८॥

वाजण लाग्यो वायरो, ऊडण लागी खेह।
चढणे लागया साजना, टूटण लाग्यो नेह ॥२९॥

---

(४)

२४—ढोलो इ०—पति जानेको करता है पर प्रिया जाने नही देती। वह घोडेकी रिकावको पकडकर झब-झब झूमती है और डब-डबाकर आँखे भर लेती है।

२५—प्रिया आँगनके कोनेमे खड़ी हुई प्रस्थानकी बात सुन रही है और नेत्रोंका काजल और आँसू इकट्ठे कर-करके बार-बार गिरा रही है और फिर नेत्र भर रही है।

२६—विणजारा—अेक जाति विशेष, जो व्यापारकी वस्तुअें बैलोंपर लिये हुअे देश-विदेश घूमती है। अब इनका महत्त्व बिल्कुल नष्ट हो गया है। नागजी—हे प्रियतम।

२७—वाहला—नाले, झरने। ऊँतावला—तेजीसे। वहता वहै—चलते हुअे (अर्थात् आरभमे) तेजीसे चलते है। छिटक—छिटककर थोडीही देरमें अपना अत दिखा देते है।

२८—खोटाँरा—भाग्यहीनोंके (या खोटे)। कातीमेह—शरद् ऋतुके मेघ। दाखवै—दिखाते है। तेह—वे।

२९—वायरो—हवा। खेह—धूलि। चढण—प्रस्थानके लिअे घोडेपर चढने।

फिट, हीया, फाट्यो नही, किस विध बाँध्यो नेह ।
विछड़त ही सारो रह्यो, ताँबे-जड़ियो लोह ॥३०॥
धावो, धावो, हे सखी, कोइ दावण, कोइ लाज ।
साहब म्हाँको ऊमह्यो, जे कोइ राखै आज ॥३१॥
सजण सिधाया, हे सखी, वाज्या विरह-निसाण ।
हाथाँ चूडी खिस पडी, ढीला हुआ सँधाण ॥३२॥
सजण सिधाया, हे सखी, ऊभी आँगण वीच ।
नैणाँ चाल्या चोसरा, काजल माच्यो कीच ॥३३॥
सजण सिधाया हे सखी, वै घुडले-असवार ।
वैणाँ हुयो न बोलणो, नैणाँ चाली धार ॥३४॥
सजण सिधाया, हे सखी, पाछा फिर-फिर झाँख ।
जोय-जोय ऊठी जावताँ, रोय-रोय फूटी आँख ॥३५॥
सजण सिधाया, हे सखी, आडा देग्या पहाड़ ।
नव कोटी नगरी वसै, म्हाँरे भाँव उजाड़ ॥३६॥
सजण सिधाया, हे सखी, पाछे पीली पज्ज ।
नव पाडा नग्गर वसै, मो मन सूनो अज्ज ॥३७॥
सजण सिधाया, हे सखी, सूना करे अवास ।
गलै न पाणी ऊतरै, हिये न मावै साँस ॥३८॥

३०—फिट—धिक्कार है । सारो—ज्यों-का-त्यों ।

३१—दावण—लगाम (या दामन) । लाज—लगाम (कोई दामन पकडो, कोई लगाम पकड़ो) ।

३२—निसाण—नगारे । सँधाण इ०—शरीरकी सधियाँ शिथिल हो गईं ।

३३—चोसरा—नाले । काजल इ०—काजलका कीचड़ मच गया ।

३५—झाँख—देखते हैं । ऊठी—आँखे उठ आईं ।

३६—म्हाँरे भाँव—हमारी तरफ से, हमारे लिअे ।

३७—पज्ज—पाल (तालाबका ऊँचा किनारा) । पाडा—मुहल्ले । अज्ज—

३८—करे—करके । अवास—महल ।

सजण सिधाया, हे सखी, वाजै वाजा रंग ।
जिण वाटे सज्जण गया, सो वाटड़ी सुरंग ॥३९॥
सजण सिधाया, हे सखी, झीणी ऊडै खेह ।
हियड़ो वादल छाइयो, नैण टवूकै मेह ॥४०॥
सजण सिधाया, हे सखी, नयणे कीयो सोग ।
सिर साड़ो, गल काँचुवो, हुवा निचोवण जोग ॥४१॥
साल्ह चलंता, हे सखी, गोखे चढ मैं दीठ ।
हियडो वाँहीसूँ गयो, नैण वहोडया नीठ ॥४२॥
सज्जणिया ववलाइ कै गोखे चढो लहक्क ।
भरिया नैण कटोर ज्यूँ, मूँधा हुई डहक्क ॥४३॥
साजणिया ववलाइकै मंदर वैठी आय ।
मंदर कालो नाग ज्यूँ हेला दे-दे खाय ॥४४॥
ढोलो चाल्यो, हे सखी, वडरी डाहल मोड़ ।
हियो, कलेजो, कालजो, तीनूँ ले गयो तोड़ ॥४५॥
साल्ह चलंते परठियाँ आँगण वीखडियाँह ।
सो मैं हिये लगाड़ियाँ भर-भर मूठडियाँह ॥४६॥

३९—रग—रगके साथ, धूमधामसे । वाटे—रास्ता ।

४०—टवूके—टपटप बरसते हैं ।

४१—नयणे—नेत्रोंने शोक किया (रोये)। गल इ०—गलेकी चोली । निचोवण जोग—निचोड़ने योग्य (रोते-रोते सब वस्त्र भी भीग गये ।)

४२—साल्ह—प्रियतमका नाम । दीठ—देखा । गयो—उनके साथ गया । वहोडया—लौटा पाये । नीठ—कठिनतासे ।

४३—ववलाइकै—भेजकर, विदा करके । कटोर—पानीका कटोरा । मूँधा—मुग्धा, प्रिया । डहक्क—डबडबाई हुई आँखोंवाली ।

४४—मदर—महल, मकान । हेला दे दे—पुकार-पुकार कर ।

४५—डाहल इ०—डालीको मोड़कर ।

४६—परठिया—वनाये । वीखडियाँ—पैरोंके चिह्न । मूठडियाँ—मुट्ठियाँ ।

सालह चलंते परठियां आंगण बीखड़ियांह ।
कूवा-केरी कुहड़ ज्यूं हिवड़ै होइ रहियांह ॥४७॥
खूंटे जीण न मोजड़ी, कडयां नहीं केकांण ।
साजनिया सालै नहीं, सालै आही ठांण ॥४८॥
भूली मारम-सद्दड़ै, जांणै करहो थाय ।
धाई-धाई थल चढी, पग्गे दाधी, माय ॥४९॥
बाबा, बाळूं देसड़ो, जिहां डूंगर नहि कोय ।
तिण चढ मूकूं धाहड़ी, हीयो उरळो होय ॥५०॥
सज्जण देसंतर हुवा, जे दीसंता नित्त ।
नयणां तो वीसारिया, तूं मत विसरे, चित्त ॥५१॥
सज्जण अळगा तां लगे, जां लग नयणे दिट्ठ ।
जब नयणांसूं वीछड़्या, तब उर मांझ पइट्ठ ॥५२॥
चाल, सखी, तिण मंदरां, सज्जण रहिया जेण ।
कोइक मीठो बोलड़ो लाग्यो होसी तेण ॥५३॥
रे मंदर, रे मालिया, हिव तुझ डग न भरेस ।
जिण कारण हम आवता, सो चाल्या परदेस ॥५४॥

४७—कुहड—कुहरा । होइ रहियाह—छा गये ।

४८—मोजड़ी—जूती । कडयां—घोड़ेके बाँधनेका स्थान । कंकाण—घोडा । ठाण—घोडेके घास चरनेकी जगह ।

४९—भूली इ०—सारसका शब्द सुनकर मुझे भ्रम हुआ कि मेरे प्रियतमका ऊंट होगा । प्रियतमको आया समझ में नगे पैर ही बाहर दौड पडी और देखनेके लिये ऊपर चढने लगी तो मेरे पैर जल गये ।

५०—बाळूं—उस देशको जला दूं जहां कोई पहाड तक नही । मूकूं इ०—धाह मारूं । उरलो—हलका ।

५१—देसतर—प्रवास । दीसता—दीखते थे ।

५२—दिठ—आँखोंसे दीखते रहते हैं । पइट्ठ—प्रवेश कर जाते है ।

५३—जेण—जहाँ, जिसमें । तेण—उसमे शायद अभी तक लगा मिलेगा ।

५४—मालिया—ऊपरका महल । डग इ०—तेरे पास नही आऊँगी ।

सांवल् कांय न सिरजिया, अंबर लाग रहंत ।
वाट चलंता साल्ह पिव ऊपर छाँह करंत ॥५५॥
बांवल् कांइ न सिरजिया मारू मंझ थलांह ।
प्रीतम वाढत कांवडी, फल् सेवंत करांह ॥५६॥ ॥८७॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

(१)

कूक करूँ तो जग हँसै, चुपके लागै लाय
अैसे कठन सनेहको किण विध करूँ उपाय ? ॥ १ ॥
आह करू तो जग जल्ै, जंगल् भी जल् जाय ।
पापी जिवड़ो ना जल्ै, यामे आह समाय ॥ २ ॥
घटमें रही न घाटमे, घरमें रही न व्हार ।
वन-वन तन भटक्यो फिरै मनमोहनकी लार ॥ ३ ॥
जेठा, घडी न जाय, जम्मारो किम जावसी ।
विलखतडी रह जाय, जोगण करगो, जेठवा ॥ ४ ॥
बै दीसै असवार घुड़लांरी घूमर कियां ।
अबलारो आधार, जको न दीसं, जेठवा ॥ ५ ॥
ताल़ा सजड़ जड़ेइ, कूँची ले कीने थयो ।
खुलसी तो आयेह, जडिया रहसी, जेठवा ॥ ६ ॥

५५—सांवल—कालो बदली । कांय न—क्यों नही ।

५६—बांवल्—कीकरका पेड । मारू इ०—मारवाडकी थलीके बीच । वाढत—काटते । कामडी—छडी । करांह—हाथोका, हाथोंमें रहनेका ।

६—विरहिणी-विप्रलाप

१—कूक—रुदन । लाय—चुप रहनेसे आग-सी लगती है । कठन—असह्य ।

२—आह—नि श्वास ।

४—जाय—बीतती है । जम्मारो इ०—सारा जीवन कैसे बीतेगा ।

५—घुड़लांरी इ०—घोडोको घुमाते हुअे । जको—जो, वह ।

६—सजड—सुदृढ । जडेह—बद है । कूँची—कुजी । कीने थयो—कहां गया ? तो आयेह—तेरे आनेपर ही ।

साहिब, संख समुद्दको मैं सुणियो वाजंत ।
नीर मितके कारणे घर-घर धाह दियंत ॥ ७ ॥

आडा डूँगर वन घणा, जहाँ महारा मित्त ।
देय विधाता, पाँखड़ी मिल-मिल आऊ नित्त ॥ ८ ॥

आडा डूँगर, दूर घर, वणै न जाणे भत्त ।
सज्जण-संदे कारणे हियो हिलूसे नित्त ॥ ९ ॥

जिम-जिम साजन साँभरै, तिम-तिम लागै तीर ।
पंख हुवे तो जाय मिल मनाँ वँधाड़ाँ धीर ॥१०॥

आडा डूँगर, भुँय घणी, सज्जण रहै विदेस ।
माँगी-तांगी पाँखड़ी केती वार लहेस ॥११॥

पाँखडियाँ ही किउँ नहीं, देव अवाड़ू ज्याँह ।
चकवीके है पाँखडी, रैण न मेलै त्याँह ॥१२॥

आडा डूँगर, भुँय घणी, तियाँ मिलीजे अेम ।
मनहूं खिणय न मेल्हियै, चकवी दिणयर जेम ॥१३॥

ज्यूँ अै डूँगर सम्मुहा, त्यूँ जे सज्जण हुंत ।
चंपावाड़ी भमर ज्यूँ नैण लगाइ रहंत ॥१४॥

७—समुद्दको—समुद्रसे उत्पन्न । सुणियो—सुना । वाजत—बजता हुआ । नीर मित—मित्र पानी, जिससे वह बिछुड गया है । धाह इ०—धाड मारकर विलाप करता है ।

९—वणै—जानेका उपाय नहीं बनता । सदे—के । हिलूसे—व्याकुल होता है ।

१०—साँभरै—याद आते हैं । मनां इ०—मनको धीरज बँधावे ।

११—भुँय—फासला । सजण—प्रियतम । केती वार—कितनी बार ।

१२—किउँ नहीं—कुछ नहीं । अवाड़ू—बाधक, प्रतिकूल । रैण इ०—तो भी रात्रिके समय प्रियसे उसका मिलाप नहो होता ।

१३—तियाँ इ०—उनसे अैसे मिलना चाहिअे । मनहूँ—मनसे । मेल्हियै—दूर कीजिये, विसारिये । दिणयर—सूर्य, जैसे चकवो दूर रहती हुई भी सूर्यको नहो भूलती ।

१४—डूगर—पहाड़ी । सम्मुहा—आँखोंके सामने । जे—यदि । हुत—होते । भमर—भँवरा । नैण इ०—अेकटक देखती रहती ।

जिण देसे सज्जण वसइ, तिण दिस वज्जउ वाव ।
उवाँ लगे मो लगसी, ऊ ही लाख-पसाव ॥१५॥
सो कोसाँ वीजल खिवै, ज्याँसूँ किसो सनेह ।
किसना, तिसना जद मिटै, आँगण वरसै मेह ॥१६॥
कउवा, दिऊँ वधाइयाँ, प्रीतम मिलवै मुझ ।
काढ कलेजो आपणो भोजन दिउँलो तूझ ॥१७॥
कागा, नैण निकास दू, पीव पास ले जाय ।
पहली दरस दिखायके पीछे लीजो खाय ॥१८॥
हे सखिअे, परदेस प्री, तनह न जावै ताप ।
बाबहियो आसाढ जिम, विरहिण करै विलाप ॥१९॥
बाबहियो ने विरहणी, दोनूँ अेक सुभाव ।
जब ही वरसै घन घणो, तवही कहै प्रियाव ॥२०॥
बाबहिया, तूँ चोर, थारी चाँच कटावसूँ ।
रात ज दोनी लोर, मै जाण्यो प्रिव आवियो ॥२१॥
बाबहिया, पिउ पिउ न कहि, पिउको नाम न लेय ।
काइक जागे विरहणी, तड़फ-तड़फ जिउ देह ॥२२॥

१५—वज्जउ—चलो। वाव—वायु, हवा। उवां इ०—हवा उनके लगकर मुझे लगेगी। ऊही—वही प्रियका स्पर्श की हुई हवाका स्पर्श)। लाख-[पसा]व—लाख रुपयोंका दान (लाख पसाव अेक प्रकारका दान होता है जो राजा [लो]ग प्रसन्न होकर कविजनोंको दिया करते थे। इसमे या तो नकद लाख रुपये दिये [जा]ते थे या लाख रुपयेकी जागीर या सपत्ति। आरभमें वस्तुतः लाखका धन दिया [जा]ता था पर पीछे लाखका नाम-ही-नाम रह गया।

१६—किसना—कविका नाम। तिसना—तृष्णा, प्यास, लालसा।

१७—मिलवै—मिलावे। दिउँली—दूँगी। तूझ—तुझे।

१९—तनह—शरीरका। बाबहियो इ०—पपीहा जैसे आषाढमें बादलको [दे]खकर पुकारता है।

२०—प्रियाव—१ प्रिय+आव २ पपीहेकी पी आ, पी आ अैसी बोली।

२१—चोर—दुष्ट, कपटी। चाँच—चोंच। कटावसूँ—कटाऊँगी। लोर—शब्द किया तो मुझे भ्रम हुआ कि प्रियतम आ गये।

बाबहिया, निल-पंखिया, वाढत दे-दे लूण ।
पिउ मेरो, मैं पीउकी, तूँ पिउ कहै स कूण ॥२३॥
पीहू-पीहू करणरी बुरी, पपीहा, वाण ।
थारो सहज-सुभाव ओ, म्हांरे लागै बाण ॥२४॥
अरे पपैया बावरा, आधीरात न कूक ।
होलै-होलै सुलगती, सो तैं डारी फूँक ॥२५॥
सिर काटूँ, रे मोरिया, काटूँ सिररो फूल ।
ढलती रात ज गहकियो, हिवड़े पाड़यो सूल ॥२६॥
मोरा, मैं तने वरजियो, मत चढ बोल खजूर ।
थारा जलहर टहूकड़ै, म्हारा साजन दूर ॥२७॥
म्हे मगरेरा मोरिया, चक चढ चूण करांह ।
रुत आये ना बोलस्याँ, तो हिय फूट मरांह ॥२८॥
रात, सखी, इण तालमें काँइज। कुरली पंखि ।
वा सर, हूँ घर आपणे, बेहुं न मेली अंखि ॥२९॥

२३—निलपखिया—नीली पाँखोंवाला। वाढत इ०—नमक लगा-लगाकर घाव करता है। तू इ०—तू 'पी' यों कहनेवाला कौन ?

२५—होलै इ०—जो विरहाग्नि धीरे-धीरे सुलग रही थी सो तूने फूँककर अेकदम प्रज्वलित कर दी। फूल—मोरके सिरकी कलँगी। ढलती—ढलती हुई, आधीरातके पीछेकी रात। गहकियो—बोला। पाड्यो—पैदा किया। वरजियो—मना किया।

२७—तने—तुझे। जलहर—मेघ। टहूकडै—बोलते हैं।

२८—मगरेरा—मगरेके, मगरा स्थान विशेष, ऊसरको भी मगरा कहते हैं (अत· मरुस्थल)। चूँण कराँ—दाना खाते हैं। रुत इ०—बोलनेकी ऋतु आनेपर यदि नहीं बोलेंगे तो।

२९—काँइज—कोई। कुरली—करुण स्वरसे बोली। पखि—पक्षी। सर—सरोवरमें। बेहुँ न इ०—दोनोंकी ही आँख नही लगी।

रात ज सारस कुरलिया, गूँजि रहे सब ताल ।
ज्यांरी जोडी वीछड़ी ज्यांरा कवण हवाल ॥३०॥
कुरजडियाँ कुरला रही देख विरगा ताल ।
जिणकी जोड़ी वीछडी, जिणका कवण हवाल ॥३१॥
कूँझडिया करलव कियो घर पाछले वनाँह ।
सूती साजन साँभरया, द्रह भरिया नैणाँह ॥३२॥
कूँजाँ, द्यो ने पाँखड़ी, थाँको विनो वहेस ।
सायर लंघी पिव मिलूँ, पिव मिल पाछी देस ॥३३॥
म्हे कुरजाँ सरवर-तणी, पाँखाँ किणहि न देस ।
भरिया सर देखी रहाँ, उड आघेरि वहेस ॥३४॥
उत्तर दिस उपराठियाँ, दक्षिण सामुहियाँह ।
कुरझाँ, अेक सँदेसडो ढोलाने कहियाह ॥३५॥
माणस हवाँ, त मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँझडियाँह ।
पिउ सँदेसो पाठविम, लिख दे पंखड़ियाँह ॥३६॥

३०—ताल—सरोवर । ज्याँरी—जिनकी । ज्याँरा—उनके ।

३१—कुरजडियाँ—क्रौंच या कराँकुल पक्षी । हवाल—हाल ।

३२—करलव—कलरव, मीठा करुण शब्द । वनाँह—वनमें । साँभरया—याद किये । द्रह—हौद । नयणाँह—आँखोंमें ।

३३—कूजाँ—हे क्रौंच पक्षियों । विनो इ०—वेश बनाऊँगी । सायर इ०—सागर पार करके प्रियसे मिलूँगी और प्रियसे मिलकर तुम्हारी पाँखे वापिस दे दूँगी ।

३४—किणहि इ०—किसीको नहीं देंगी । भरिया इ०—पानीसे भरे हुओ तालाब देखकर ठहर जाती हैं और फिर उडकर दूर चली जाती है ।

३५—उपराठियाँ—पीठ पीछे देकर । ढोला—प्रियतम ।

३६—माणस इ०—मनुष्य होवें तो मुखसे कहे पर हम तो कुरजे हैं । ठविस—यदि भेजती है तो ।

पाँखे पाणी थाहरे जळ काजळ गहिल्याइ ।
सयणाँ-तणाँ सँदसड़ा मुख-वचने काहिवाइ ॥३७॥
या तन की जूती करूं, काढ रगाऊ खाल ।
पाँयनसूँ लिपटी रहूँ आठूँ पहोर, जमाल ॥३८॥
जे जलमूं उण देसमें, करियो यूं करतार ।
पिउ-पिउ करताँ नीसरै जिउ-जिउ मरती वार ॥३९॥
कागा, सब तन खाइयो, खइयो चुण चुण माँस ।
दो नैणाँ मत खाइयो, पीव मिलणरी आस ॥४०॥
बाबल, ताल फुड़ाय दे, कुंजाँ दे मरवाय ।
मिंदर काळो नाग ज्यूँ झाला दे-दे खाय ॥४१॥

(२)

प्रीतम दुखिया कर गया, सुखकूं लेग्या साथ ।
रैण-बिछावा कर गया, मळता रह गइ हाथ ॥४२॥
छाती माँहे साल खण-खणमे खटकै घणा ।
करसाँ कवण हवाल, मिळियाँ विन मिटसी नहीं ॥४३॥
मालण लाई चोसरा फूल अनोखा पोय ।
मन मुरझायो देखताँ, ऊतर दीनो रोय ॥४४॥

३७—थाहरे—ठहरता है, या तेरे। काजल—स्याही। जळ इ०—जल लगनेमे स्याही बह जायगी। सयणाँ—प्रेमियोंके। मुख—मौखिक ही कहे जाते हैं।

३८—पहोर—पहर।

३९—जलमूं—जन्म लूं। उण—उस (जहाँ प्रियतम है)। नीसरै—निकले।

४१—मिंदर—महल, घर। झाला देदे—डुला-बुलाकर।

४२—बिछोवा—बिछोह, वियोग। लेग्या—ले गये।

४३—साल—शल्य। करसाँ—करेंगे।

४४—मालण—मालिन। चोसरा—चार लड़ोंकी माला। पोय—पोकर, गूँथकर। ऊतर दीनो—जवाब दिया, मना किया।

मालण, थारा चोसरा क्योंकर आवै दाय ।
पीव विनासूँ पापणी जीव अमूझ्यो जाय ॥४५॥
वैरण, प्रीतमके विना, सालै देखत शूल ।
पहर रिझाऊँ कूँणने, अै ले, मालण, फूल ॥४६॥
ऊपर आँबा मोरिया, तल नीझरण झरंत ।
साजण पाँखे दीहडा ताढा तोय तपंत ॥४७॥
आँखड़ियाँ डंबर हुई, नयण गमाया रोय ।
सो साजण परदेसमें, रह्या विडाणा होय ॥४८॥
गया सनेही दूर, कुसनेही मंडल घणा ।
रहु रहु, हिया, न भूर, कर कायर काठो हियो ॥४९॥
ऊभी थी रायंगणे, सायव साँभरियाह ।
च्यारुंइ पल्ला चूनडी आँसू-जल भरियाह ॥५०॥
रानि ज रूनी निसह भर, सुणी महाजन लोय ।
हाथाली छाला पड्या चीर निचोय-निचोय ॥५१॥
सज्जण वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार ।
सूकण लागी वेलडी, गया ज सींचणहार ॥५२॥
सज्जण, गुणे-समुद्द तूँ, तर-तर थक्की तेण ।
अवगुण अेक न साँभरै, रहूँ विलूँबी जेण ॥५३॥

४७—मोरिया—मुकुलित हुअे । तल—नीचे । नीझरण—झरने । पाखे—विना । दीहडा—दिन । ताढा—ठंडे हैं तो भी ।

४८—डवर—लाल (सध्याकालीन बादलों जैसी) । विडाणा—पराये ।

४९—काठो हियो—हृदय मजबूत कर ।

५०—रायगणे—राजांगणमें, आँगनमें । सायव इ०—प्रियतम याद आगये ।

५१—रूनी—रोई । महाजन—गुरुजन । लोय—लोग ।

५२—वल्ले—चले । वल्लणहार—जानेवाले हैं ।

५३—सज्जण इ०—हे प्रियतम, तुम गुणोके समुद्र हो, उस समुद्रको तैर-तैर करके मै थक गई पर उसका अन्त नही मिला । साँभरै—याद आता है । विलूँबी इ०—जिसका सहारा लूँ ।

पिव कारण सब अरपियो, तन, मन, जोवन, लाल।
पिया पीड जाणे नहीं, किणसूँ कहूं जमाल ? ॥५४॥
साजण विसराया भला, सुमरयाँ करै बेहाल।
देखो, चतर, विचारके, साची कहै जमाल ॥५५॥
सारसड़ो मोती चुणं, चुणं त कुरलै कांय।
सगुण पिय रा साजना मिलै त विछड़ै कांय ॥५६॥
हित विण, प्यारा सज्जणा, छल कर छेतरियाह।
पहली लाड लडायकै पाछै परहरियाह ॥५७॥

(३)

ढोला, ढीली हेत कियाँ मूक्या मनह विसार।
संदेसोय न पाठवै, जीवाँ किसे अधार ? ॥५८॥
कहो कनक कागद भया, मसि भई माणक मोल ? ।
लाख टका लेखण भई ?, नहीं लिख्या दो बोल ॥५९॥
कागल नहीं, क मस नहीं, नहीं क लेखणहार।
संदेसा ही नाविया, जीवूं किस आधार ? ॥६०॥
कागल नहीं क मस नहीं, लिखताँ आलस थाय।
कै उण देस सँदेसड़ा, मूँघे मोल विकाय ? ॥६१॥
वायस वीजो नाम, ते आगल लखो ठवै।
जे तूँ हुवै सुजाण, तो तूँ वहिलो मोकलै ॥६२॥

५६—चुणै—चुगती है। काँय—किस लिये।

५७—हित—प्रेम। छेतरियाह—ठगा, धोखा दिया। परहरियाह—छोड दिया।

५८—ढीली ह०—प्रेमको शिथिल करके। मूक्या—मनसे भुलाकर छोड दिया। सदेसो य—सदेशा भी। पाठवै—भेजता है।

५९—कनक इ०—क्या कागद सोनेके मोलका महँगा हो गया। टका—रुपया।

६०—कागल—कागज। मस—स्याही।

६१—थाय—होता है। मूँघे—महँगे।

६२—वायस—वायसका जो दूसरा नाम है (अर्थात् काग) उसके आगे ल कार लगाकर (अर्थात् कागल यानी पत्र) शीघ्र भेजना।

संदेसा जिन पाठवै, मरिस्यूँ हीया फूट।
पारेवाका भूल ज्यूँ, पड़नै आँगण त्रूट ॥६३॥
संदेसा मति मोकलो, प्रीतम, तूँ आवेस।
आँगलड़ी ही गल गई, नैण न वाँचण देस ॥६४॥
कागदिया मत मोकलो मूघा मोल ज लेह।
आखर भीना आँसुवाँ, नयण न वाँचण देह ॥६५॥
फागण मास, वसंत रुत, आयो जे न सुणेस।
चाचरके मिस खेलती, होली झंपावेस ॥६६॥
जो तूँ, साहब, नावियो, मेहाँ पहले पूर।
विचे वहेसी वाहला, दूर स दूरे दूर ॥६७॥
वीजुलियाँ जालो मिल्याँ, ढोला, हूँ न सहेस।
जो आसाढ न आवियो, सावण समक मरेस ॥६८॥
जे तूँ, साहब, नावियो सावण पहली तीज।
वीजल तणे झबूकड़े मूँध मरेसी खीज ॥६९॥
जे तूँ ढोला नावियो काजलियारी तीज।
चमक मरेसी मारवी देख खिवंताँ वीज ॥७०॥

६३—जिन—मत। पारेवा—कबूतर। भूल—घोंसला। त्रूट—टूटकर।

६४—मोकले—भेजना। आवेस—आना। देस—देगे।

६६—सुणेस—सुनूँगी कि तू आ गया)। चाचर—नाच विशेष (सं० चर्चरी)। होली इ०—होलीकी आगमें कूद पड़ूगी।

६७—विचे इ०—बीचमें नाले वहने लगेगे और जो दूर है वह और भी दूर जायगा।

६८—जालो मिल्याँ—जालमें मिली हुई, वहुतसी अेक साथ होकर चमकती हो हुई। समक—चौंककर।

६९—वीजल—विजलीके चमकते ही यह मुग्धा खिजकर मर जायगी।

७०—काजलियारी—कजलीकी। मारवी—नायिका (अक्षरार्थ—मारू देश की स्त्री)। मारु, मरवण, मारवण, मारवणी, मारवी, मारुवी, सायधण, धण ये नायिका या स्त्रीके पर्याय शब्द है। खिवता—चमकती हुई। वीज—बिजली।

घरघर चंगी गोरड़ी, गावै मंगळचार।
कंथा, मती चुकावजो, तीजाँ—तणो तिवार ॥७१॥

(४)

वर्षा

ऊनमियो उतर दिसाँ, गाज्यो गहर गंभीर।
मारवणी प्रिव संभरयो, नैणाँ वूठो नीर ॥७२॥
ऊनमियो उत्तर दिसाँ, मेड़ी ऊपर मेह।
हूँ भीजूँ घर आँगणे, पिव भीजै परदेह ॥७३॥
आज धरा दिस ऊनम्यो, महलाँ वरसै मेह।
बाहर था जे ऊबरे, भीजाँ माँझ घरेह ॥७४॥
ऊनम आई वद्दळी, ढोलो आयो चित्त।
यो वरसै रितु आपणी, नैण महारा नित्त ॥७५॥
वीजळियाँ पारोकियाँ नीठ ज नोगमियाँह।
अजे न सज्जण वहुड़े, वळि पाछी वळियाँह ॥७६॥
जळथळ थळ जळ हुय रह्यो, बोलै मोर किंगार।
सावण दूभर, हे सखी, कहाँ मुझ प्राण-अधार ॥७७॥

७१—तीजाँ-तणो—सावण मासकी तृतीयाका, यह राजस्थानका अेक जातीय त्यौहार है।

७२—ऊनमियो—मेह उमड़ा। वूठो—बरसा।

७४—मेड़ी—अटारी। परदेह—परदेशमें।

७५—धरा-दिस—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। भीजाँ—घरके भीतर भीग रही हैं (आँसुओंकी वर्षासे)।

७६—पारोकिया—परकीया (गाली)। नीठ ज इ०—बड़ी कठिनतासे गई थीं। वाहुडे—लौटे। वळि इ०—पर ये फिर लौट आई (दूसरी वर्षा आ गई पर प्रियतम नहीं आये)।

७७—किंगार—कगूरोंपर। दूभर—असह्य।

चहुदिस दामण, सघन घण, पीव तजी तिण वार।
मारू मर चातग भये, पिव-पिव करत पुकार ॥७८॥
सावण आयो, साहबा, हरिया-हरिया व्रन्न।
हरियो हुयो न अेकलो, प्यारी धणरो मन्न ॥७९॥
प्रीतम, कामणगारियाँ, थल-थल बादलियाँह।
घण वरसंते सूकियाँ, लू-सूँ पाँगुरियाँह ॥८०॥
भादरवेकी रुत भली, भली घटा वरसंत।
मेरा साजन है नहीं, मेरा तन तरसंत ॥८१॥
वड़कत-तड़कत बीजली, धड़कत-तडकत गाज।
कोप करो आवै घटा आ कुण ऊपर आज ? ॥८२॥
गाज नगारो, चमक खग, वरसत बाण तड़ाक।
घटा नहीं, या कामकी आवै फोज लड़ाक ॥८३॥
बीज नहीं अै खागवल, बूँद नहीं अै बाण।
घटा नहीं, या काम की आई फोज अचाँण ॥८४॥
हरियारी भूमी भई, भरिया सायर खाल।
आ कुणने अछी लगै, विन प्रीतम वरसाल ॥८५॥

७८—मारू इ०—ये चातक पी-पी करते हुअे पुकार करते हैं। पूर्व-जन्ममें ये मारू थे जो प्रिय के वियोगमें पी-पी रटती हुई मर गई और मरकर फिर चातक बनी और अब भी पी-पी पुकार रही है।

७९—हरियो—१ हरा, २ प्रफुल्लित। धण—प्रियतमा।

८०—कामणगारियाँ—जादू करनेवाली। घण इ०—वे पानी वरसनेसे सूख जाती हैं और लू-से जो उठती है (गर्मीसे बादल बनता है और वरसनेपर नष्ट हो जाता है।

८२—गाज—मेघकी गर्जना।

८३—खग, खाग—तलवार। अचाँण—अचानक, सहसा।

८४—सायर—सागर। खाळ—खड्डे, गड्ढे। कुणने—किसे। वरसाळ—र्षा ऋतु।

घन गाजै, व़िजली खिवै, व़रस व़ादल़वार।
साजन व़िन लागै, सखी, अँगपर बूँद अंगार ॥८६॥
फोज घटा, खग दामणी, बूँद लगै सर जेम।
पावस पिव व़िन, वल्हा, कहि, जीवीजै केम ? ॥८७॥
तीज नवेली तीजण्यां, तीज नवेली वीज।
तीज नवेली व़ादल़ी, मोपर व़रसत वीज ॥८८॥
नाल़ा नदियांसूँ मिल़ै, नदियाँ सरवर जाय।
व़िरछाँसूँ वे़लाँ मिल़ै, असी सही न जाय ॥८९॥
काल़ी-पील़ी व़ादल़ी, व़रस भीजियो गात।
ताजनिया लागा तिका साजनिया व़िन सात ॥९०॥
मोर सोर कर-कर मसत तरवर बैठ्या जाय।
घन वूठै, छूटै घटा, मो तन ऊठै हाय ॥९१॥
पड़-पड़ बूँद पलंगपर, कड़-कड़ वीज कड़क्क।
आज पिया व़िन अेकली, धड़-धड़ जीव धड़क्क ॥९२॥
नैणां व़रसै सेजपर, आँगण व़रसै मेह।
होडा-होडी झड़ लगी, उत सावण इत नेह ॥९३॥
पावस आयो, साहबा, बोल़ण लागा मोर।
कंता, तू घर आव नवि जोबन कीधो जोर ॥९४॥
मेह वूठा, ह़रिया हुवा, सब व़न पाँगरियाह।
बाकरिया माता हुवा, आवो ठाकरियाह ॥९५॥

८७—वल्हहा—हे प्यारे। जीवीजै—जिया जाय। केम—कैसे।
८८—तीजणयाँ—तीज मनानेवाली स्त्रियाँ। बीज—द्वितीया। वीज—बिजली।
९०—ताजनिया—चाबुककी चोट। तिका—वे। साजनिया—प्रियतम।
९१—मसत—मस्त। वूठै—बरसता है। हाय—हाहाकार।
९३—होडाहोडी—होड़ लगाकर बरस रहे हैं। सावण—सावनकी वर्षा।
९४—आव नवि—आ न।
९५—पाँगरियाह—अंकुरित हुअे। बाकरिया—बकरे-बकरियाँ। ठाकरियाह—हे ठाकुर, हे प्रियतम।

सावण आयो, सायबा, सब वन पाँगरियाह।
आव, विदेसी पावणा, अै दिन दूभरियाह ॥६६॥

ऊँचो मंदर अति घणो, आव, सुहावा कंत।
वीजल लियै भबूकडा, सिखराँ गल लागंत ॥६७॥

वीजुलियाँ नीलज्जियाँ, जलहर, तू ही लज्ज।
सूनी सेज, विदेश प्रिय, मधुरो-मधुरो गज्ज ॥६८॥

सावण आयो, सायबा, पगाँ विलूँबो गार।
तराँ विलूंबी वेलडयाँ, नराँ विलूँबी नार ॥६६॥

सावण आवण कह गया, कर गया कोल अनेक।
गिणताँ-गिणताँ घिस गई, आँगलियाँरी रेख ॥१००॥

घर-घर चंगी गोरडी, गावै मंगलचार।
कंथा, मती चुकावज्यो तीज्याँ-तणो तिवार ॥१०१॥

आज धराऊ धूँधला, मोटी छाँटीं मेह।
भीजी पाग पधारस्यो, जद जाणूँली नेह ॥१०२॥

६६—पावणा—पाहुने। दूभरियाह—असह्य।

६७—वीजळ इ०—बिजली चमक-चमककर पर्वत-सिखरोंके गले लगती है।

६८—वीजुळियाँ इ०—हे मेघ, ये बिजलियाँ तो निर्लज्ज है जो मुझे वियोगाकुल देखकर भी चमक रही है और मेरी व्यथा बढा रही है, पर तू तो लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है, प्रियतम विदेशमें हैं, इसलिअे धीरे-धीरे गरज।

६६—विलूँबी—लग गई, लिपट गई। गार—कीचड़।

१००—कोल—कौल, प्रतिज्ञा।

१०२—धराऊ—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। धूँधला—धूम-मय, बरसते हुए बादल धुवे जैसे ज्ञात होते हैं। भीजी इ०—भीगी हुई पगड़ीके साथ आवोगे तो समझूँगी कि तुम मुझे प्रेम करते हो। जाणूँली—जानूँगी कि आप प्रेम करते हैं।

(५)

वसंत

तरत झरत, सुकत सरत, दादर मरत दुरंत।
प्रीतम घर नन पेखताँ वैरण वणी वसंत ॥१०३॥
वन जरिया हरिया हुवा, आँबे-आँबे मोर।
कूक-कूककर कोयली करत पिया विन सोर ॥१०४॥

(६)

ग्रीष्म

कहो, लूवाँ, कित जावस्यो पावस धर पड़ियाँह।
हिये नवोढा नारके वालम वीछड़ियाँह ॥१०५॥
सर-सरिता जल खूटिया, मरिया दादर जीव।
तन जरिया, लागी तपत, अब घर आवो, पीव ॥१०६॥

(७)

पग परसणकूँ कर तपै, श्रवण सुणनकूँ वैण।
हिदो तपै तुम मिलणकूँ, मुख देखणकूँ नैण ॥१०७॥

१०३—तरत इ०—तरुओंके पत्ते झड़ते हैं, तालाब सूखते है। दादर—मेंढ़क। दुरत—बहुत। नन पेखताँ—न देखकर।

१०४—जरिया—जले हुए। मोर—मजरी।

१०५—कहो इ०—हे लुओं, जब पृथ्वीपर वर्षा ऋतु आ जायगी तो तुम कहाँ जाओगी (तुम्हें कहाँ शरण मिलेगी)? लुएं उत्तर देती हैं कि उस समय हम उस नवविवाहिता नववधूके हृदयमें जाकर रहेंगी जिसका पति बिछुड़ गया है (उसका हृदय घोर सतापसे जलता होगा, सैकड़ों वर्षाऋतु आकर भी वहाँ हमारा नाश नहीं कर सकतीं)।

१०६—खूटिया—सूख गया। दादर—मेंढ़क। तपत—गर्मी, सताप।

१०७—परसणकूँ—छूनेके लिए। हिदो—हृदय।

साजन थाँ किसड़ी करी, किणसूं--कहूं सुणाय ।
नहीं मिटणरी या कदे हिवड़े लागी लाय ॥१०८॥

तन तरवर, मन माछलो, पडी विरहके जाल ।
तलफ-तलफ जिव जात है, वेगा मिलो, जमाल ॥१०९॥

प्यारा वै दिन खूब था, विच न समातो हार ।
अब तो मिलवो कठन है, वीच रहे वहु पहार ॥११०॥

मन सींचाणो जे हुवै, पाँखाँ हुवै त प्राण ।
जाय मिलीजै साजणाँ, डोहीजै महराण ॥१११॥

सज्जण, कागद मोकले, मत कछु लिखो वणाय ।
जे-जे सुख हम-तुम किये, ते-ते सालत आप ॥११२॥

मो मन लागो तो मनाँ, तो मन मो मन लग्ग ।
दूध विलग्गा पाणियाँ, पाणी दूध विलग्ग ॥११३॥

साजन, दुर्जनके कहे तुम मत विरचो मोय ।
ज्यों मस लागी कागदाँ, त्यों हित लग्यो तोय ॥११४॥

साजन, तुम मत जाणियो, विछड्याँ प्रीत घटाय ।
व्यापारीके व्याज ज्यूँ, वधत-वधत वध जाय ॥११५॥

धूँध न चूकै डूँगराँ, कडवातण नींवाह ।
प्रीत न चूकै सज्जणा देस-विदेस गयाँह ॥११६॥

१०८—लाय—अग्नि । थाँ—आपने । किसडी—कैसी ।

१०१०—विच इ०—मिलाओ—

हारो नारोपितो कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्-सागर-भूधरा: ॥

१११—सींचाणो—बाज । साजणाँ—प्रियतमसे । डोहीजै—पार किया जाय । महराण—समुद्र ।

११२—मोकलो—भेजो । सालत—याद आकर सताप देते है ।

११३—विरचो—छोडो । हित—प्रेम । तोय—तुझसे ।

११४—चूकै—भूलकर भी अलग होता है । डूँगराँ—पहाडोंसे । कडवातण—कडुआपन ।

चलताँ-हलताँ, चींत, सूताँ-बैठाँ सारखी ।
पड़ै न जूनी प्रीत नैण लग्योड़ी, नागजी ॥११७॥

नागा, नागरवे़ल पसरै फूलै नहीं ।
बाल्पणेरी प्रीत, विछडै तो भूलै नहीं ॥११८॥

मन-माणक गरहण कियो, मित, तुम्हारे पास ।
नेह-व्याज अत मंडियो, नहि छूटणरी आस ॥११९॥

हंसा तो सरवर रटै, घनकूँ रटै ज मोर ।
हम तुमसें मिलणा रटै, जैसे चंद चकोर ॥१२०॥

दीधी अपणी बाँह, चँवरी चढ, कर मेल्ताँ ।
पण जिम तनरी छाँह, तिम नवि राखी तो कने ॥१२१॥

साजन, तुम मत जाणियो, तोय विछड़त मोय चैन ।
जैसे धुई अतीतकी, सुलगत है दिन-रैन ॥१२२॥

साजन तुम जत जाणज्यो, दूर देसका वास ।
खोड़ हमारी याँ पड़ी, प्राण तुम्हारे पास ॥१२३॥

जेती जे मन माँय, पंजर जे तेती पुलै ।
मन वैराग न थाप, वा्लम वीछडियाँ-तणी ॥१२४॥

साजन, तुम दरियाव हो, मैं ओगणकी जहाज ।
अबकी पार लँघाय दे कर पकड़ेकी लाज ॥१२५॥

११९— गरहण कियो—लिया। मडियो—चढ़ गया। छूटणरी—उऋण होनेकी।

१२१—दीधी इ०—विवाह-मडपमें हाथ मिलाते समय अपना हाथ तुम्हे दिया। नवि इ०—तुमने अपने पास नहीं रखी। कने—पास।

१२२—धुँई—आग, जो सन्यासी तापा करते हैं। अतीत—सन्यासी।

१२३—खोड—देह। याँ—यहाँ।

१२४—जेती—मन जितना चलता है, उतना शरीर भी यदि चले तो प्यारोंके बिछुड़नेकी अरुचि मनमें न हो।

१२५—दरियाव—समुद्र। कर पकडेकी—विवाहके समय जो हाथ पकडा था उसकी।

सर सूक्यो, वे़ळू हिली, कहुं न रह्यो विसराम ।
अब सुध लो, घन, मीन की, फिर वरस्याँ के काम ॥१२६॥२१३॥

७—संदेश

ढाढी जे प्रीतम मिलैं, यूँ कहि दाखवियाह ।
पंजर नहि छै प्राणियो, थाँ दिस झल़ रहियाह ॥ १ ॥
पंथी, अेक संदेसडो भल माणसने भक्ख ।
आतम तुझ पासे अछै, ओल़ग रूडा रक्ख ॥ २ ॥
ढाढी, अेक सँदेसडो प्रीतम कहिया जाय ।
सायधण बल़ कोयला हुई, भसम ढंढोले़ आय ॥ ३ ॥
ढाढी, अेक सँदेसडो ढोले लग पहुँचाय ।
तन-मन उत्तर वालि़यो, दिक्खण वा़जो आय ॥ ४ ॥
ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय ।
जोबन जावै प्राहुणो, वे़गेगो घर आय ॥ ५ ॥
ढाढी, अेक सँदेसडो ढोले लग पहुचाय ।
जोवन खीर-समुद्र हुय, रतन ज काढो आय ॥ ६ ॥

१२६—वेळू—वेला, तट । वरस्याँ इ०—वरसनेसे क्या लाभ ?

७—संदेश

१—ढाढी—अेक गाने-बजानेवाली जाति । यूँ कहि दाखवियाह—यों कहकर बात कहना । पजर इ०—प्राण शरीरमें नहीं है किन्तु आपकी ओर भागे जा रहे है ।

२—भलमाणसने—उस भलेमानुसको । भक्ख—कह । आतम इ०—दूर भले ही रख पर प्राण तुम्हारे पास हैं ।

३—बळ—जलकर । ढंढोळे—टटोलना (देर करके आओगे तो भस्म ही मिलेगी) ।

४—उत्तर इ०—उत्तरी हवाने जला दिया । दिक्खण इ०—दक्षिणी हवा बनकर चलो ।

५—पाहुणो—यौवनरूपी पाहुना जा रहा है । वेगेरो—जल्दी ।

ढाढी, अेक सँदेसडो ढोले लग पहुँचाय ।
जोबन चाँपो मोरियो, कळी न चूँटै काय ॥ ७ ॥
ढाढी, अेक सँदेसड़ो ढोले लग पहुँचाय ।
जोबन-कँवळ विकासियो भमर न वैसो आय ॥ ८ ॥
ढाढी, जे साहब मिळै, यूँ दाखविया जाय ।
आँख्यां सीप विकासियां, स्वात ज वरसो आय ॥ ९ ॥
ढाढी, अेक सँदेसडो, ढोले लग ले जाय ।
जोबण फट्टि तलावड़ी, पाळ न बाँधो काय ॥ १० ॥
ढाढी, अेक सँदेसडो ढोले लग पहुँचाय ।
धण कुमळाणी कमदणी, सिसहर ऊगो आय ॥ ११ ॥
पही, भमंतो जो मिळै, कहे अम्हीणी वत्त।
धण कणेररी काँब ज्यूँ सूकी तोय सुरत्त ॥ १२ ॥
भरै, पलट्टै, भी भरै, भी भर भी पलटेह ।
पंथी-हाथ सँदेसडो धण विलळंती देह ॥ १३ ॥

७—चाँपो—चपकका पेड मुकुलित हुआ है। चूटै—चुनता है, तोडता है। न काय—क्यों नहीं ।

८—भमर इ०—भ्रमरके समान आकर क्यों नहीं बैठते ?

९—स्वात--स्वाति नक्षत्रके मेघ बनकर ।

१०—फट्टि—फट गई। पाळ—मट्टीका ऊँचा करार ।

११—कुमलाणी—कुम्हला गई । कमदणी—कुमुदिनी । सिसहर—हे शशधर, चंद्र ।

१२—पही—हे पथिक, घूमता हुआ यदि तू प्रियतमसे मिल जाय तो हमारी यह बात कहना कि प्रियतमा कनेरकी डडीके समान तुम्हारी यादमें सूख गई है ।

१३—भरै इ०—सदेशा कहती है, फिर बदल देती है, फिर कहती है, फिर कहकर बदल देती है। इस प्रकार पथिकके हाथमें वह प्रियतमा अपना सदेशा रोती हुई देती है।

पंथी-हाथ संदेसडो, धण विलल्लंतो देह ।
पगसूँ काढै लोहटो उर आँसुवाँ भरेह ॥१४॥२२७॥

८—पत्र-लेखन

कर कलमाँ पाती लिखूँ, प्रीतम चतर सुजाण ।
अेक-अेक आखर वारदूँ, तन, मन ओर पराँण ॥ १ ॥
पाती आधो मिलण है, रह दरसणकी प्यास ।
वाँचत ही सुख ऊपजै, फेर मिलणकी आस ॥ २ ॥
कागद थोडो, हित घणो, कैसे लिखूँ वणाय ।
सागरमे जल भोत है, गागरमे न समाय ॥ ३ ॥
पतरीमे कितरी लिखूँ हितरी, चितरी, वात ।
इतरी तितरी ऊपजै, कागदमे नहि आत ॥ ४ ॥
पाती तहाँ पठाइये, जो साजन परदेस ।
निज मनमे साजन वसै, ताकूँ का उपदेस ॥ ५ ॥
साजन, पतियाँ तो लिखूँ, जो कछु अंतर होय ।
हम-तुम जियरा अेक है, देखणकूँ तन दोय ॥ ६ ॥
अनंत-संदेसा जीवका, लिख राख्या मन माँय ।
मिलियाँ मालम कीजसी, कागद लिख्या न जाय ॥ ७ ॥

१४—पग इ०—पैरोंकी रेखा खीचती है और हृदयको आँसुओंसे भरती है ।

८—पत्र-लेखन

१—पराँण—प्राण ।

४—कितरी—कितनी । हितरी—प्रेमकी । चितरी—चित्तकी । इतरी—इतनी । तितरी—वहाँकी (आपके विषयकी) ।

६—जियरा—जीव, प्राण ।

७—अनंत—अनत । कीजसी इ०—मिलनेसे ही मालूम होंगे ।

प्रीतमकूँ पतियाँ लिखूँ, लिखूं विसूर विसूर।
ये तुमको कौणे कही, यापर डारत धूर ॥ ८ ॥
पाती लिखताँ पीवने हिवड़ो उभ्कल गयो।
आँसूँ पड़ अँखियानसूँ कागद भीज गयो ॥ ९ ॥
आँसू नैणाँ उभ्कल्कर, मेह-भ्कड़ी मच जाय।
पाती लिखताँ पीवने छाती सूँ भर जाय ॥१०॥
घर-गोखाँपर बोलियो पपिहो ताहि घड़ी।
कागद लिखताँ कंतने करसूँ कलम पड़ी ॥११॥२३८॥

९—प्रतीक्षा

१

धण जोवै नित राजरी वाटाँ विस्वा वीस।
किण दिन आय करावस्यो घर लीलाँरी हींस ? ॥ १ ॥
ऊँची चढ-चढ गोखड़े, ऊँची-ऊँची होय।
जोऊँ मारग राजरो, आवो किण दिन होय ? ॥ २ ॥

८—कौणे—किसने। डारत धूर इ०—अक्षर सुखानेके लिये स्याहीपर धूल डाली जाती है।

९—पीवने—प्रियतमको। हिवडो—हृदय। उभ्कळ गयो—उमड आया, भर आया।

१०—उभ्कळकर—उमडकर।

११—गोखाँ—गवाक्ष, भ्करोखा। पपिहो—पपीहा। पडी—गिर गई (पपीहेकी आवाजसे अेकाअेक व्याकुलता छा गई)।

९—प्रतीक्षा

१—राजरी—आपकी। वाटाँ—मार्ग। लीलांरी—घोड़ोंकी। हींस—घोड़ोंका हिनहिनानेका शब्द।

२—आवो—आना।

आलीजा, घर आवज्यो पी प्याला मद पूर ।
उण दिन धणरे ऊगसी सोना-हंदो सूर ॥ ३ ॥
धन वेळा, ने धन घडी, धन दिन, धन ते मास ।
नैणाँ दरसण देखसूँ, ते दिन फळसी आस ॥ ४ ॥
साजण आयाँकी कहै कोई अचानक आण ।
तो, सजनी, ताको हरख देऊं वधाई प्राण ॥ ५ ॥
मन तूठ्यो, आसा मिटी, नैणाँ खूट्यो नीर ।
ओळूँ कर-कर आपरी सूक्यो सकळ सरीर ॥ ६ ॥
दिस चाहंदी सज्जणाँ, नेहाळंदी मग्ग ।
साधण क्रूंभ-बचाह ज्यूँ लाँबा हूया पग्ग ॥ ७ ॥
दिस चाहंदी सज्जणाँ नेहाळंदी मुंध ।
सायधण कुम्भ-बचाह ज्यूँ लाँबी हुइ त कंध ॥ ८ ॥
ऊलंबे सिर हथ्थडा चाहंदी रसलुध ।
ऊँची चढ चात्रंग ज्यूँ माग निहाळै मूँध ॥ ९ ॥

२

प्यारा, आज्यो पावणा, प्यारो धणरे देस ।
साजन, म्हाँरा पिहरमें थाँरा कोड हमेस ॥१०॥

—धन—धन्य । वेळा—समय ।
—आण—आकर । सजनी—हे सखी ।
—खूट्यो—समाप्त होगया । ओळूँ—याद ।
—दिस इ०—प्रियतमके आगमनकी दिशाको देखती हुई और मार्गको प्रियमताके पैर क्रौंचके बच्चेके समान लम्बे होगये (प्रियतमा उभक-ह देखती थी) ।
मुध—मुग्धा, प्रियतमा । कध—गरदन ।
ऊलवे इ०—सिरको हाथपर रखे हुए और प्रेमके रसमें लुब्ध वह मुग्धा ति ऊँची चढकर मार्गको देखती है ।
पिहर—पीहर । कोड—चाव

सुसरो, सासू, सालियाँ, साळा सख्यां सभीह।
जोवै वाटां राजरी, पीहर आज्यो, पीव ॥११॥२४६॥

१०—प्रेमीकी उत्सुकता

मेह वूठा, हरिया हुवा, भरिया होद-निवाँण।
अधपतियाँ अरजी करै, दो नी सीख, दिवाँण ॥ १ ॥

ऊठ धरा उतरादसूँ चहूँ कला छिटकात।
मन उमँग्यो मारू धरा, वा चंगा वरसात ॥ २ ॥

वीजळियां मांडेचियां खिवै हबूका लेह।
दोख न घोड़ा रावतां, राजा सीख न देह ॥ ३ ॥

'उतरादो घन गरजियो, मोटी छांटां मेह।
दोस न घोड़ा गावतां, राजा सीख न देह ॥ ४ ॥

वादळ चमकै वीजळी, गाजै, वरसै मेह।
काग उडावै कांमणी, राजा सीख न देह ॥ ५ ॥

आज धरादिस ऊनम्यो, काळी घड सिखरांह।
वा देसी धण ओळभा, कर-कर लांबी बांह ॥ ६ ॥२५५॥

११—सभीह—सारे ही। राजकी—आपकी।

१०—प्रेमी की उत्सुकता

१—निवाँण—नीची भूमि। अधपतियाँ—राजासे। दोनी सीख—दे दीवान, विदा (छुट्टी) दें।

२—उतराद—उत्तर दिशा। मन इ०—मारू देशके लिये मन उमंगित हो उठा (प्रवासी मारवाड़का निवासी है)।

३—दोख इ०—सरदारके घोड़ेको दोष नहीं क्योंकि उसका मालिक राजा जानेकी आज्ञा नहीं देता।

४—काग उडावै—जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो काग उड़ाया जाता है।

६—धरादिस—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। घड—घटा। ओळभा देसी—उलहना देगी।

११—स्वप्न-दर्शन

सपना, तूँ सुम्भागियो, उत्तम थारी जात।
सो कोसाँ साजन वसैं, आण मिलावै रात ॥ १ ॥
सुपने प्रीतम मुझ मिल्या, हूँ गल लागी धाय।
डरपत पलक न खोलही, मत सुपनो हुइ जाय ॥ २ ॥
हुंता साजन हीयड़े साजन-हंदा हत्थ।
जो सुपनो साचो हुवै, सुपनो वडी वसत्त ॥ ३ ॥
सुपना आया, फिर गया, मैं सर भरिया रोय।
आव, सुवागण नींदडी, वलि पिउ देखूँ सोय ॥ ४ ॥
सपनेमे साजन मिल्या, कर न सकी दो वात।
सोती थी, रोती उठी, मींजत रह गइ हात ॥ ५ ॥
जद जागूँ जद अेकली, जद सोऊँ जद बेल।
सुहिणा, तैं मने छेतरी वीजी भीजी हेल ॥ ६ ॥
सुहिणा, तोय मरावस्यूँ, हिये दिराऊँ छेक।
जद सोऊं जद दोय जन, जद जागूँ जद अेक ॥ ७ ॥
जब सोऊँ तब जागवै, जब जागूँ तब जाय।
मारू ढोलो साँभरैं, इण परि रैण विहाय ॥ ८ ॥२६३॥

११—स्वप्न-दर्शन

१—सुम्भागियो—अच्छे भाग्यवाला, अच्छा। आण—लाकर।

२—मत इ०—कहीं सपना-ही न हो जाय।

३—हुता इ०—प्रियतमाके हृदयपर प्रियतमके हाथ थे (स्वप्नमें)। वसत्त—वस्तु।

४—फिर गया—चला गया। सर भरिया—इतनी रोई कि तालाब भर गये। सुवागण—सौभाग्यवती। वलि—फिर।

६—बेल—दो।

७—सुहिणा—हे सुपने। छेतरी—ठगी, धोखा दिया। छेक—छेद करा दूँ।

८—जागवै—सपनेमें आकर प्रियतम जगाता है। जाय—चला जाता है। साँभरैं—प्रियतमा प्यारेको याद करती है। इण परि इ०—इस भाँति रात बीतती है।

१२—शकुन

खिवै निमाणी आँखड़ी, बोलै काग निलज्ज।
सो कोसाँ साजन वसै, सो किम आवै अज्ज ॥ १ ॥
आज फरूकै आँखियाँ, नाभ, भुजाँ, अहराह।
सखी ज, घोडा सज्जणाँ सामा किया घराँह ॥ २ ॥
अहर फरक्कै, तन फुरै, तन फुर नैण फुरंत।
नाभी मंडल सहु फुरै, साँझै नाड़ मिलंत ॥ ३ ॥
बाँवों अंग फरकण लगो, फरकत बाँवीं आँख।
साजन आसी, हे सखी, चढ चोबारे झाँख ॥ ४ ॥२६७॥

१३—प्रियतमका आगमन

काग उडावण वण खड़ी, आयो पीव भडक्क।
आधी चूडी काग गल, आधी गई तड़क्क ॥ १ ॥
उठ, दासी, कस ढोलियो, गहरा दीपक जोय।
दड़वड़ माची देहराँ, सायत साजन होय ॥ २ ॥

१२—शकुन

२—घोडा—प्रियतमने अपने घोडे घरकी ओर किये (घरकी ओर प्रस्थान कर दिया है)।

३—अहर—होठ। फरक्कै, फुरै—फडकता है। सहु—सब।

४—साँझै इ०—सध्याको प्रियतम मिलेगे। बाँवो—वाँया। झाँख—देख।

१३—प्रियतमका आगमन

१—भडक्क—अचानक। तड़क्क—तडककर टूट गई। नोट—नायिका काग उडा रही थी। उसका शरीर प्रिय-वियोगसे वहुत दुर्वल होगया था पर ज्योंही प्रियतमको आया सुना वह अेक दम मोटी होगई और हाथ मोटा होनेसे हाथकी चूडी तड़क गई। हाथ ऊँचा किया हुआ था अतएव टूटी हुई चूडीका ऊपरवाला आधा हिस्सा उछलकर कौवेके गलेमें जा पडा।

२—सायत—शायद (अथवा, आनेकी शुभ वेला)।

सायब आया, हे सखी, काँई भेंट कराँह ?
गजमोतियनको थाल़ ले, ऊपर नैण धराँह ॥ ३ ॥
सायब, आया हे सखो, तोडो नवसर हार ।
लोक जाणैं मोती चुगै, झुकझुक करो जुहार ॥ ४ ॥
साजन आया, हे सखी, मंगल़ चोक पुराय ।
गावो मॅंगल़ाचार मिल, गहरो ढोल घुराय ॥ ५ ॥
साजन आया, हे सखी, मोत्याँ थाल़ भराय ।
डोढ्यॉं साम्ही दोड अब लावाँ चाल वधाय ॥ ६ ॥
साजन आया, हे सखो सॅंग साईना लेर ।
पाई नवनिध नार, अब नगर वधाई फेर ॥ ७ ॥
साजन आया, हे सखी, कज्जा सह सरियाह ।
पूनिम-केरे चाँद ज्यू दिस च्यारे फल़ियाह ॥ ८ ॥
साजन आया, हे सखो, ज्याँकी हूँतो चाय ।
हियडो हेमागर भयो, तन पिंजरे न माय ॥ ९ ॥
साजन आया, हे सखी, हुंता मूझ हियाह ।
आजूणे दिन ऊपरै, बीजा बलि़ कीयाह ॥१०॥
साजन आया, हे सखी, हुंता मूझ हियाह ।
सूका था सु पाल्हव्या, पाल्हविया फल़ियाह ॥११॥

३—नैण इ०—क्या ही सुन्दर और उपयुक्त भेंट है ।
४—नवसर—नौ लडोंका । जुहार—प्रणाम ।
५—घुराय—बजाकर ।
६—डोढी—टेवढी, अंत पुरका द्वार । साम्ही—सामने ।
७—साईना लेर—साथियोंको लेकर ।
८—कज्जा इ०—सब काज सिद्ध हो गये । च्यारे—चारों ।
९—हुंती—थी । हेमागर—हिमगिरि । माय—समाता है ।
१०—आजूणे इ०—आजके दिनपर दूसरे दिन न्यौछावर कर दिये ।
११—सूका इ०—जो मनोरथ सूख गये थे वे पल्लवित होकर सफल होगये ।

हियमें करै वधामणा, सखी, त सीधा काज।
जे सुपनंनर दीसता, नयणे देख्या आज ॥१२॥
जिणनूं सुपने देखती, प्रगट भया पिव आय।
डरती आँख न मूंदही, मत सुपनो हुय जाय ॥१३॥
सोई साजन आविया, जाँकी जोती वाट।
थाँभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥१४॥
सज्जन वारूँ कोडधाँ, या दुरजणकी भेंट।
रजनीका मेळा किया, वेंहके अच्छर मेट ॥१५॥२८२॥

१४—प्रिय-प्रिया-मिलन

ढोले जाणी वीजळी, मारू जाण्यो मेह।
च्यार आँख अेकठ हुई, सयणाँ वध्यो सनेह ॥ १ ॥
सब मुख देखै चंदको, मैं मुख देखूँ तोय।
मेरे तुम ही चंद हो, मुख देख्याँ सुख होय ॥ २ ॥

१२—वधामणा—बधाइयाँ, बधावने। सीधा—सिद्ध हुअे। सुपनंतर—जो स्वप्नमें दिखाई देते थे।

१४—थाँभा नाचै—सारा घर और घरके निर्जीव पदार्थ भी हर्षसे नाचते हुअे दिखाई देते हैं।

१५—सज्जन—इस दुर्जनके ऊपर करोडों बार सज्जनोंको न्योछावर करदूँ क्योंकि इसने विधाताके लेखको मेटकर वियोगी चकवा और चकवीको रातमें संयुक्त कर किया। नोट—यह माना जाता है कि रातमें चकवा-चकवी साथ नहीं रह सकते। अेक बहेलियेने दोनोंको पकड लिया और रातमें भी पिंजरेमें बन्द करके साथ ही रखा।

१४—प्रिया-प्रिया-मिलन

१—ढोले इ०—नायकने नायिकाको बिजली समझा और नायिकाने नायकको मेघ समझा (और दोनों मिले)। च्यार इ०—चार आँखे इकठी हुईं, नायक-नायिकाने परस्पर-दर्शन किया। सयणाँ इ०—प्रेमियोंका प्रेम बढ़ चला।

२—तोय—तेरा। देख्याँ—देखनेसे।

आवो, प्यारा, नैणमे, पलक डाक तोहे लूँ ।
ना मैं देखूँ ओरकूं, ना तोहे देखण दूं ॥ ३ ॥
केसरर क्यारा करूं, कसतूरीकी खाज ।
नैणांरा प्याला करूं, पीवो, म्हारा राज ॥ ४ ॥
या तनकी भट्टी करूं, मनकूँ करूं कलाल ।
नैणांरा प्याला करूँ, भर-भर पियो, जमाल ॥ ५ ॥
नैणनकी कर कोटडी, पुतली दिऊ बिछाय ।
पलकनकी चिक डार दूँ, साजन बैठो आय ॥ ६ ॥
म्हेनें ढोलो झूँबियो, लूँगे लक्कडियेह ।
म्हांने प्रिउजी मारिया, चंपारे कलियेह ॥ ७ ॥
म्हेने ढोलो झूँबियो, म्हांनूं आवी रोस ।
चोवा-केरी कूँपली, ढोली साहब-सीस ॥ ८ ॥२६०॥

१५—मान

गहली, गरब न कीजिये समै सुहाग ज पाय ।
जीकी जीवण जेठ ज्यूँ माह न छाँह सुहाय ॥ १ ॥
वतलावैं जद वाम, वतलाया बोलो नहीं ।
कदयक पडियाँ काम नोरा करसो, नागजी ॥ २ ॥

७—म्हेने इ०—प्रियतम लवगकी छडी लेकर मुझे झूम गया । प्रियने मुझे चपककी कलियोंसे मारा ।

८—म्हेने—जब प्रियतम मुझे झूम गया तो मुझे रीस आई और मैने चोबा (अरगजा) का पात्र स्वामीके सिरपर उँडेल दिया ।

१५—मान

१—हे पगली, समयपर सौभाग्यको पाकर गर्व मत कर। याद रख, जेठ मासमे छाया प्राणोंके लिअे जीवन-रूप होती है वही माघमें अनखावनी लगने लगती है ।

२—हे नागजी, प्रिया जब बुलाती है तब तो बोलते भी नही पर कभी काम पड़ेगा तो मनुहार करते फिरोगे ।

तन मिलिया तो क्या हुवा, मन की मिटी न प्यास ।
जैसे सीप समंद्रमे करै तिरास-तिरास ॥ ३ ॥२६३॥

१६—वर्षा-विहार

आयो घन, त्यूं ही, अली, मनचायो तन साज ।
आयो धणरो सायबो, करण सुमंगल़ काज ॥ १ ॥
काल़ा वा़दल़ व़रसिया, मोर हुवा महमंत ।
सहराँ सहराँ संचरी वा़दॅवा़द खिवंत ॥ २ ॥
कोयल करै टहूकडा, पपिया करै पुकार ।
घन धुर अंबर घुमड़ियो, धर झर मेहाँ धार ॥ ३ ॥
आइ घटा उतरादरी, भॅज सो कोसाँ वी़च ।
मेहाँ माँड्या माचणा, किल भर माच्या कीच ॥ ४ ॥
हरियाँ व़नकी कोयलाँ, हरिया व़नका मोर ।
मन जरिया हरिया करै, बोल-बोल निस-भोर ॥ ५ ॥
पियके हरी सु पाग सिर, तियके हरियो चोर ।
जल झरिया हरिया हुवा सब पट भींज सरीर ॥ ६ ॥

३—मिलिया—मिले । समद्र—समुद्र । तिरास—तृषा, प्यास (सीपकी प्यास स्वाति-जलसे ही बुझती है ।)

१६—वर्षा-विहार

१— धणरो सायबो—प्रेयसीका प्रियतम । करण—करनेवाला ।

२—महमत—मस्त । सहराँ इ०—पहाडोंके शिखर-शिखरपर बिजली होड लगाकर चमक रही हैं ।

३—धुर-अम्बर—उत्तर दिशाके आकाशमें । धर इ०—पृथ्वीपर मेघोंकी धाराएँ झर रही है ।

४—उतराद—उत्तर दिशा । सो—सौ, १०० ।

५—मन जरिया इ०—जले हुअे मनोंको हरा-भरा करते हैं ।

६—पाग—पगडी । जल झरिया—जल टपकते हुअे । भींज—भीगकर ।

कैसो लगै सुवावणो, धुरवाँ-धुरवाँ कंत।
जल झुरवाँ, सुरवाँ करै, मुरवाँ-गण महमंत॥ ७॥
लूमाँ झड़, नदियाँ लहर, वग पंगत भर बाथ।
मोराँ सोर ममोलिया, सावण लायो साथ॥ ८॥
हरणी मन हरियालियाँ, उर हालियाँ उमंग।
तीज परव, रँग त्यारियाँ, सावण लायो संग॥ ९॥
धन धोराँ, जोराँ घटा, लोराँ वरसत लाय।
वीज न मावै वादलाँ, रसिया, तीज रमाव॥१०॥
इंद्र-धनस तणियो अजव, चातक-धुन मन भाव।
वीज न मावै वादलाँ, रसिया तीज रमाव॥११॥
मोर सिखर ऊँचा मिलै, नाचै हुवा निहाल।
पिक ठहकै, झरणा पड़ै, हरिये डूँगर हाल॥१२॥
बाजरियाँ हरियालियाँ, विच-विच वेलाँ फूल।
जे भर वूठो भादवो, मारू देस अमूल॥१३॥

७—सुवावणो—सुहावना। धुरवाँ—घन-घटा। झुरवाँ—बरसता है। सुरवाँ—शोर। मुरवाँ—मोर।

८—वग पगत इ०—बाथें (भुजाएँ) भरकर (अर्थात् खूब) बगुलोंकी पाँते। ममोलिया—वीरबहूटियाँ। सावण—इतनी चीजें सावन आता हुआ साथ लाया।

९—हिरनियोंके मन हरे हो गये, कृषकोंके हृदयोंमें उमगें उत्पन्न हुई, तृतीयाका त्योहार, रँग भरी तय्यारियाँ—ये सब सावन साथमें लाया।

१०—टीबोंमें धान खूब हो रहा है, और बादलोंकी घटाएँ जोरोंसे लोरोंके साथ बरस रही है, बिजली इतनी चमकती है कि बादलोंमें नहीं समाती। हे रसिक, ऐसे समयमें तीजका त्योहार मनाओ।

११—इन्द्र-धनस—इन्द्र-धनुष। तणियो—तन गया। अजब—निराला।

१२—निहाल इ०—निहाल बने हुए। ठहकै—कूकती है। हरिये इ०—हरे पहाड़पर चलो।

१३—जे इ०—यदि भादवेमें भरपूर वर्षा हो तो मारवाड़की शोभा अमूल्य हो जाय।

घर नीली, धण पुंडरी, घर गहगहै गिमार।
मारू देस सुहावणो, सावण साँझी वार ॥१४॥
गह घूमो, लूमी घटा, पावस उलस्या पूर।
सावण महिने, सायबा, कदे न रावूँ दूर ॥१५॥
सावण आयो, सायबा, बाँधो पाग सुरंग।
महल बैठ राजस करो, लीला चरै तुरंग ॥१६॥
वादल तन कालो वरण, घुरबो आन नगाज।
मद झर जल वंगर छटा, घटा वणी गजराज ॥१७॥
है निगाज च्यारूँ तरफ, वै निगाज वरसाल।
उलटा पलटा वादला, चढत वढत कर चाल ॥१८॥
च्याराँ पासे वन घणो, वीजल खिवै अकास।
हरियाली रुत तो भली, घर संपति, पिव पास ॥१९॥३१२

१७—पखवाड़ा

पख पडवासूँ ओलरयो, कर सूती सिणगार।
नायो धणरो सायिबो, दिवो न खंडै धार ॥ १ ॥

१४—घर इ०—पृथ्वी हरी हो गई, प्रियतमाका रग निखरकर गोरा हो गया, गाँवके लोग घरोंमें बाजे बजाकर आनन्द मनाते हैं। इस प्रकार सावनकी सध्याके समय मारवाड बड़ा सुहावना बन जाता है।

१५—लूमी—झुक आई। सायबा—हे प्रियतम।

१६—राजस—राज्य। लीला—हरा घास।

१७—घुरबो—घुमडना, गरजना।

१९—च्याराँ पासे—चारों ओर। हरियाली रुत—वर्षा। घर सपति इ०—ताकि पतिको कमाने परदेश न जाना पडे।

१७—पखवाड़ा

१—पख—पक्ष, पखवाडा। पडवासूँ—प्रतिपदासे। ओलरयो—शुरू हुआ। सूती—सोई। नायो—नही आया। दिवो—दीपक। खडै इ०—स्थिर लौसे जल रहा है।

बीज स आज, सहेलियाँ, वालो ऊगो चंद ।
दाडम-हंदा दंतडा, सेज न आयो कंत ॥ २ ॥
तीज स आज, सहेलियाँ, तीजणियाँ तेहवार ।
गोरी सोहै आभरण, काजल, कूंकूं, हार ॥ ३ ॥
चोथ चमक्को पाड़ियो घण मारूरे देस ।
महलाँ वैंठी कामणी, पीव वसैं परदेस ॥ ४ ॥
पाँचम आज, सहेलियाँ, पाँचूं बंध्या ठाण ।
उलगाणारी कोटडी हुई पिलाँण-पिलाण ॥ ५ ॥
छट्ठ स आज, सहेलियाँ, तीनूं तिथ टलियाँह ।
आवै धणरो सायबो, लेसी ऊडलियाँह ॥ ६ ॥
आज, सहेली, सातम जु, सोनेरी सलियाँह ।
आसी धणरो सायबो, करसी रंगरलियाँह ॥ ७ ॥
आज, सहेली, आठम जु, ओ पख अहलो जाय ।
हिये खटूकै वालमो, काँटो अेडी माँय ॥ ८ ॥
आज, सहेल्याँ, नवम जे, ओढण नवला चीर ।
रिमझिमकर महलाँ चढी, नहि नणदलरा वीर ॥ ६ ॥
दस दसरावा पूजसाँ भर मोतीडा थाल ।
भजिया सो ही पावसी भर जोडी भरतार ॥ १० ॥

२—बीज—द्वितीया । वालो—प्यारा ।

३—कूंकूं—कुंकुम । आभरण—गहने, शृंगार ।

४—चमक्को पाडियो—बिजली चमकी । घण—बादल ।

५—उळगाणा—प्रवासी प्रियतम । कोटडी—डेरा । हुवो इ०—प्रस्थानके तय्यारी होने लगी ।

७—सळियाँह—सलाइयाँ । आसी—आवेगा ।

८—अहलो—योंही, व्यर्थ । खटूकै—खटकता है । वालमो—प्रियतम ।

६—नवला—नये । नणदलरा वीर—ननदका भाई, पति ।

१०—दस—दशमी । दसरावा—दशहरा ।

आज इग्यारस आँवली, वेह ने मंगलवार ।
प्रगडै करस्याँ पारणो मुख देख्याँ भरतार ॥ ११ ॥
बारस आज, सहेलियाँ, बाबहियो बोलंत ।
नैणाँ सावण-भादवो, होठाँ बीज खिवंत ॥ १२ ॥
तेरस आज, सहेलड़ी, तीनूँ तीखा वार ।
पिवने सोहै मूंदडी, धणने नवसर हार ॥ १३ ॥
चवदस आज, सहेलियाँ, चोक्याँ बैठा राव ।
अणचींत्या साजण मिल्या पड्या निसाणाँ घाव ॥ १४ ॥
पूनम पूरो ऊगसी, रती न खाँडो होय ।
उलगाणारी गोरडी, बैठी निरमल होय ॥ १५ ॥
धण धाई, पिव छाकिया, घोडा घास चरंत ।
पखवाड़ो पूरो हुयो, दिवला साख भरंत ॥ १६ ॥३२८॥
॥१०१५॥

११—प्रगडै—प्रात काल । पारणो—व्रतके पीछेका भोजन, पारणा ।

१२—बाबहियो—पपीहा । नैणाँ इ०—नेत्रोंमें श्रावण-भाद्रपद बरस रहा है और होठोंमे बिजली चमक रही है (दाँतोंको बिजलीकी उपमा दी जाती है)।

१३—तीखा—कठोर । मूँदडी—मुद्रिका, अगूठी ।

१४—राव—राजा । अणचींत्या—अचित्य रूपसे। निसाणाँ इ०—नगारोंपर चोट पड़ो ।

१५—पूरो—पूरा (चन्द्रमा) । खाँडो—खडित । गोरडी—गोरी, स्त्री ।

१६—धण—प्रिया । धाई—तृप्त हुई । छाकिया—छक गये । दिवला—दीपक । साख—गवाही ।

१—काल-बलीकी महिमा

समै करै, नर क्या करै, समै-समैरी वात।
केई समै-रा दिन वडा, केई समै-री रात॥ १॥
समै वडी, नर क्या वडो, समै वडी बलवान।
कावाँ लूँटी गोपकाँ, बो अरजन बै बाण॥ २॥
दीहा से कारज करै, जे वैरी न करंत।
दीह पलट्टे रावणा, पथ्थर नीर तरंत॥ ३॥
कठे जाया, कठे ऊपन्या, कठे र लडाया लाड।
कुण जाणै किण खाडमे जाय पड़ैला हाड॥ ४॥
सम्मन, साता पुरसरी रहै न अेकीसार।
तिल डूबै, पथ्थर तिरै, अपणी-अपणी वार॥ ५॥
सोनो-रूपो पहरती, मोत्याँ मरती भार।
सो कासीरे चोवटे हरचँद वेची नार॥ ६॥
मण-मण मोनी पहरती, मरती मोत्याँ भार।
सो नर जंगल वीचमे दुख पावै निरधार॥ ७॥
तन भर सोनो पहरती, गल मोत्याँरो हार।
अेक दिन अैसो आयगो, घर-घररी पणियार॥ ८॥

१—काल-बलीकी महिमा

१—समै—समय, काल। केई—किसी।

२—कावा इ०—म्लेच्छ लुटेरोंने गोपियोंको छीन लिया यद्यपि अर्जुन वही महाभारतका विजेता अर्जुन था और उसके पास वही धनुष-बाण थे जिनसे उसने महाभारतमे विजय पाई थी।

३—दीहा—दिन, काल। से—वह। पलट्टे—बदलनेपर।

४—कठे—कहाँ। जाया—जनमे। ऊपना—उत्पन्न हुअे। कुण इ०—कौन जानता है कि अन्तमे ये हड्डियाँ किस खाईमें जाकर पड़ेंगी।

५—साता—अच्छी स्थिति। अेकोसार—अेक-सी। वार—वारी, समय।

६—हरचँद—प्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द। चोवटे—बाजारमें।

८—पणियार—पनिहारी, पानी भरनेवाली।

ऊँचे टीबें ठीकरी घड़-घड़ गया कुंभार।
रावण सिरसा चल गया लंकाका सिरदार ॥ ६ ॥
जिण वन भूल न आवता गयँद-गवय गिडराज।
तिण वन जंबुक ताखड़ा ऊधम मंडै आज ॥१०॥
जिणरे खाँधे कूदता, करता लाड हजार।
लाडणहारा रह गया, गया लडावणहार ॥११॥
महिपत देता मोज, घर बैठाँ घोड़ा घणा।
रोस्याँ-केरो रोज, निजराँ देख्यो, नोपला ॥१२॥
भावै नहीं ज भात, लागै विणज विडावणा।
रीरावै दिन-रात, रोस्याँ कारण, राजिया ॥१३॥
गढ-कोटाँ, पोली-पगाँ, ऊँचा-ऊँचा धाम।
आया जम,जिव ले चल्या, कोइ न आया काम ॥१४॥
ज्यूँ लारलडा वह गया, वरतमाण वह ज्याय।
काल़-कल़तमें कल़ रह्या, ठीक न, विसना, ठाय ॥१५॥
पाछा मिलण न पावसी, पड़ सरवरसूँ पात।
देह छूटाँ मिलणो पछै है नहिं, विसना, हांत ॥१६॥
सदा न संग सहेलियाँ, सदा न राजा देस।
सदा न जुगमें जीवणा, सदा न काल़ा केस ॥१७॥
आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वल़े।
साईनाँरो साथ वल़े न आसी बींजरा ॥१८॥

१०—गयँद—हाथी। गवय—रोझ। गिडराज—गृध्रराज। जंबुक—सियार। तारवडा—उपद्रवी। मंडे—करते हैं।

११—लाडणहरा—जिनका लाड़-प्यार होता था।

१२—मोज—रीझमें, रीझकर। रोज—रोना,भींकना। निजराँ—आँखों।

१४—पगा—पगार, चहारदिवारी।

१५—लारलडा—पीछेवाले। वरतमाण—वर्त्तमान, जो अब हैं।

१७—जुग—जगत। काल़ा केस—काले केश अर्थात् यौवन।

१८—सावनका महीना फिर लौट आवेगा, वर्षा ऋतु भी लौट आवेगी पर

२—संसारकी अनित्यता

पान झड़ंता देखकर, हँसी ज कूँपलियाँह।
मो वीती तुझ वीतसी, धीरी बापड़ियाँह ॥ १ ॥
गहरी लाली देखकर, फूल गुमान भयाँह।
किनरा वाग जहानमें, लग-लग सूख गयाह ॥ २ ॥
बँधी गठडिया धूलकी रही पवनसे फूल।
गाँठ जतनकी खुल गई, अंत धूल-की-धूल ॥ ३ ॥
दस दुवारको पींजरो, तामें पंछी पौन।
रहण अचूँबो है, जसा, जाण अचूँबो कौण ॥ ४ ॥
जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुँमलाय।
जो चिणिया सो ढह पडै, जो आया सो जाय ॥ ५ ॥
पाणी-केरा बुदबुदा, इसी मिनखरी जात।
अेक दिनाँ छिप जावसी, ज्यूँ तारा परभात ॥ ६ ॥

आज बचपनमें जिन साथियोंके सग खेलते-कूदते हैं, उनका साथ फिर कभी नहीं मिलेगा।

२—संसारकी अनित्यता

१—कूँपलियाँह—कोंपले। मो वीती इ०—पत्तोंने उत्तर दिया कि अरी वेचारियों, ठहर जाओ, जो हमपर बीती है वही तुमपर भी बीतेगी।

२—कितरा—न-जाने कितने। गुमान भया—गर्वमें भर गये।

३—बँधी गठडिया—शरीर मिट्टीका वना है। पवन—जीव । जतनको—यत्नसे बाँधी हुई।

४—दस दुवार—शरीरमें दस छिद्र हैं—दो आँखोंके, दो नाकके, अेक मुँहका दो गुह्यस्थानोंके और अेक मस्तिष्कमे ब्रह्मांडका । पौन—पवनरूपी पक्षी उसमे रहता है। पींजरो—अर्थात् शरीर। रहण इ०—अैसे पिंजरेमें अैसा पक्षी रहे यही आश्चर्य है, वह चला जाता है यह तो कोई आश्चर्यकी वात नही। जसा—जसवत-सिंह (कविका नाम)।

आया सोही जावसी, राजा-रंक-फकीर ।
कोई सिंघासण वैठ, कोइ पाँव लगी जंजीर ॥ ७ ॥

ऊमररे उणसार, टिगट मिल्या जग-रेलमें ।
कै वेगा, कै वार, ठेसण-ठेसण उतरसी ॥ ८ ॥

ज्यूं वादल मिल वीछडै, आप-आपसूँ आय ।
दिन दसका मेला भया, रहणा निहचै नांय ॥ ९ ॥

नदी-किनारे देखिये, सम्मन, सव संसार ।
कै उतरया, कै ऊतरैं, (कै) बुगचा बांध तयार ॥१०॥

चलणा है, रहणा नहीं, चलणा विसवा बीस ।
अैसे सहज सुहागपर कूंण गुथावै सीस ? ॥११॥२९॥

३—यौवनापगम

जोवन था जब रूप था, गाहक था सब कोय ।
जोवन-रतन गमायके, वात न पूछै कोय ॥ १ ॥

जोवन जोगी हो गया, फेरी देग्या द्वार ।
मैं पापण ताकत रही, फिरया न दूजी वार ॥ २ ॥

यहि अँगना, यहि देहरी, यही ससुरको गाँव ।
दुलहन-दुलहन टेरतां, बुढिया पड़ गयो नाँव ॥ ३ ॥३२॥

७—कोइ इ०—पुण्यात्मा सिंहासनपर बैठकर और पापी बँधे हुअे ।

८—उणसार—अनुसार । कै इ०—कोई जल्दी और कोई देरसे । ठेसण—टेसन, स्टेशन ।

९—आप-आपसूँ—अपने-आप, स्वत. । निहचै—निश्चय ही ।

१०—कै—कई । तयार—जानेके लिअे उद्यत ।

११—विसवा वीस—बीस विस्वे अर्थात् अवश्य ही । सहज—साधारण । सुहाग—अर्थात् सांसारिक जीवन । सीस गुथाना—चोटी-पटी तय्यारियां करना ।

३—यौवनापगम

२—देग्या—दे गया । पापण—पापिनी, अभागी । फिरया—लौटा ।

३—टेरतां—पुकारते-पुकारते ।

४—चेतावनी

ऊठ, फरीदा, जाग रे, जागणकी कर चूँप ।
यो दम हीरा लाल है, गिण-गिण रबकूँ सूँप ॥ १ ॥
ऊठ, फरीदा, जाग रे, झाड़ू देय मसीत ।
तूँ सोवै, रब जागता, किस विध वणै पिरीत ॥ २ ॥
मिनख-देह प्रापत भई, सब प्रापतकी मूल़ ।
ज्यांमें हरि प्रापत नहीं, सब प्रापतपै धूल़ ॥ ३ ॥
जब ही राम विसारिये, जब ही झंपै काल़ ।
सिर ऊपर करवत वहै, आय पड़ै जम-जाल़ ॥ ४ ॥
जसवँत, सीसी काचकी, अैसी नरकी देह ।
जतन करंतां जावसी, हर भज लाहा लेह ॥ ५ ॥
जसवँत, वास सरायका, क्या सोवै भर नैण ।
सांस-नगारा कूचका, वाजत है दिन-रैण ॥ ६ ॥
काल़ांके हलहल भई, धोल़ा बैठा आय ।
हरीदास, गढ पाल़ट्या, गुण गोविंदका गाय ॥ ७ ॥
रे, थोड़ी ऊमर रही, काय न छोडै कूड़ ।
हिय-अंधा, तूँ नाख अब धंधां ऊपर धूड़ ॥ ८ ॥

४—चेतावनी

१—चूँप—उत्साह, प्रबल इच्छा । दम—सांस । रब—परमात्मा । सूँप—सौंप दे ।

२—मसीत—मसजिद । पिरीत—प्रीति ।

३—प्रापत—प्राप्ति ।

४—जब ही झपै इ०—तभी काल झपटता है । वहै—चलता है ।

५—लाहा—लाभ । लेह—ले ले, उठा ले ।

७—कालांके—काले केश चलनेको तय्यार हुअे । गढ पालट्या—गढव अधिकार बदल गया ।

८—काय—किस लिअे । कूड़—झूठ । नाख—डाल ।

जात वळंते सौंसड़े जो दीजै सोइ लम्भ ।
विच ही वाव विलावसी, राख थयेसी सम्भ ॥ ६ ॥
हर भज, रे हरदासिया, दाखै ईसरदास ।
मोल लियाँसूँ नहि मिलै, कोट मोहर इक साँस ॥१०॥
हाथाँ परवत तोलता, समँदाँ घूँट भरैह ।
ते जोधा दीसै नहीं, तूँ क्यों गरब करैह ॥११॥
चल वैभव, संपत सुचल, चल जोब्रण, चल देह ।
चलाचलीके खेलमें, भलाभली कर लेह ॥१२॥
जात वळै नहि दीहड़ा, जिमि गिर-निरझरणाह ।
उठ, रे आतम, धरम कर, सुवै निचंता काह ॥१३॥
वहते जळ, कालू कहै, लीजै अंग पखाळ ।
वळे न, हंसा, आवसो, इण सरवररी पाळ ॥१४॥
सबसूँ हँस-हँस बोल, पर-दुखमें साथी वणो ।
मेनख-जूण अनमोल, च्यार दिनाँरी चानणी ॥१५॥
नाम अमररो चाय, तो हो भल कर पर-भला ।
माटीमें मिल जाय, काया काची मिनखरी ॥१६॥

९—जात वळंते इ०—साँसके जाते-आते । लम्भ—लाभ । वाव—वायु, प्राण । विलावसी—विलीन हो जायगी । थयेसी—होगा । सम्भ—सब कुछ

११—हाथाँ इ०—पर्वतोंको हाथोंमें उठाकर तोल सकते थे तथा समुद्रोंको अेक-ही घूँटमें पी जाते थे । करैह—करता है ।

१२—चल—चचल, अस्थायी ।

१३—वळै—लौटते हैं । दीहड़ा—दिन । गिर इ०—पहाड़ी झरने । आतम—हे जीव । निचता—निश्चिन्त । काह—क्या, किसलिअे ।

१४—पखाळनो—धोना, मजन करना । वळे—फिर । हसा—हे जीव । इण—इस । पाळ—पार या तटपर ।

१५—मिनख-जूण—मनुष्य जन्म । चार इ०—चांदनीकी भाँति चार दिन तक रहनेवाली अर्थात् अस्थायी है ।

१६—चाय—इच्छा । तो इ०—तो भले होकर पराया भला करो ।

पिंड पड़ै, पुन ना पड़ै, परलै पतित न होय ।
रज्जब, संगी जीवका सुकृत सिवाय न कोय ॥१७॥

दिन दस दौलत देखकर गरब्यो कहा, गँवार ।
जोडत लागा वरस सौ, जात न लागै वार ॥१८॥

आया खाली हाथ, माया जोडी जनम भर ।
सुई न चालै साथ, खाली हाथाँ जावसी ॥१९॥

काया अमर न कोय, थिर माया थोडो रहै ।
इणमें वाताँ दोय, नामा कामा, नोपला ॥२०॥

सम्मन रोवै कूँणकूँ, हँसै स कूँण विचार ।
गया स आवणका नहीं, रह्या स जावणहार ॥२१॥

हरीदास, लीजै नहीं, कंचन वदलै काच ।
जो कुछ गया स जाण दे, तूँ रहतासूँ राच ॥२२॥

माया मेरे रामकी, धरणीधरकी देह ।
पूँजी साहूकारकी, जस कोई कर लेह ॥२३॥ ॥५५॥

५—पश्चात्ताप

रात गमाई सोयकर, दिवस गमायो खाय ।
हीरा जलम अमोल था, कोडी वदले जाय ॥ १ ॥

१७—पिंड—शरीर । पुन—पुण्य । पड़ै—नष्ट होता है । परलै—प्रलयमें भी । सुकृत—धर्म, पुण्य ।

१८—गरब्यो—गर्वमें भर गया । वार—देरी ।

१९—माया—सम्पत्ति । जावसी—जावेगा ।

२०—थिर इ०—सम्पत्ति थोड़े ही समय तक स्थिर रहती है ।

२१—कूँणकूँ—किसलिअे । कूँण विचार—क्या विचार करके । गया—जो चले गये । स—सो, वे । रह्या—जो पीछे रह गये हैं । इणमें इ०—इसमें तो दो ही बातें सारकी हैं—नाम कर लेना और कर्त्तव्य कर लेना ।

२२—रहताँ—जो बच गये हैं । राच—प्रेम कर, सतोष कर ।

५—पश्चात्ताप

१—जलम—जन्म । वदलै—बदलेमे ।

दादू, पछतावा रह्या, सक्या न ठाहर लाय ।
अरथ न आया रामके, ओ तन यूँही जाय ॥ २ ॥

दादू, जैसा नाम था, तैसा लीया नाँय ।
काती करस्याँ खेत ज्यूँ हौंस रही मन माँय ॥ ३ ॥

सुमरणका साँसा रह्या, पछतावा मन माँय ।
दादू, मीठा राम-रस सगऴा पीया नाँय ॥ ४ ॥

तुऴसी, या संसारमें सरयो न अेको काम ।
दुबधामें दोनूँ गया माया मिऴी न राम ॥ ५ ॥

धीरम, धरिया ही रह्या का-पुरसाँका माल ।
सुकरित-सोदा कर गया, जे साँईका लाल ॥ ६ ॥

हरीदास, संकट पड़्या, सगा न दीसै कोय ।
राम सगा सो परहरया, कुसऴ कठाँसूँ होय ॥ ७ ॥६२॥

६—हरिभक्ति

साँई, तेरी यादमें जिन तन कीया खाख ।
सोनो वाकी रूबरू है चूल्हेकी राख ॥ १ ॥

साँई, टेढो अंखियाँ, बैरी खलक तमाम ।
टुकियक झोला महरका, लक्खू करै सलाम ॥ २ ॥

२—यूँही—योंही, व्यर्थ ।

३—काती इ०—कार्त्तिक मासमें खेत जोतनेसे । हौंस—इच्छा ।

४—सगऴा—सारा । पीया—पिया ।

५—सरयौ—पूरा हुआ । दुबधा—द्विविधा, अनिश्चय ।

६—धीरम—कविका नाम । कापुरस—कायर, नीच । सुकरित-सोदा—पुण्योंका सौदा । साँईका लाल—परमात्माके प्यारे ।

७—पड़्या—आ पड़ा । सगा—बन्धु, सहायक । परहरया—भुला दिया, छोड़ दिया । कठाँसूँ—कहाँसे ।

६—हरिभक्ति

१—खाख—खाक । सोनो इ०—उसकी चूल्हेकी राख भी वास्तवमें सोना है ।

२—साँई—हे स्वामिन्, यदि तुम्हारी आँखें थोडी भी टेढी हों तो सारा ससार शत्रु हो जाता है । टुकियक—थोडा-सा । महर—दया ।

कब सबरी चौका दिया, कब हर पूछी जात ।
प्रीत पुरातन जाणकर फल पाया रुघनाथ ॥ ३ ॥

जलके न्हाये, परसरा. पतित न पावन होय ।
पावन हुवे हर-नांवसूं साध-वेद कह सोय ॥ ४ ॥

मूंदूं जाका सरवणा, फोडूं जाका नैण ।
काटूं-वाढूं जीभड़ी, हर विन उचरै वैण ॥ ५ ॥

जाके हिरदे हर वसै, हर-भगतांसूं प्यास ।
खोजी छानी क्यूं रहै कसतूरीकी वास ॥ ६ ॥

झूठा माणक-मोतिया, झूठी जगमग जोत ।
झूठा सब आभूखणा, सांचि पियाजिरी पोत ॥ ७ ॥

झूठा पाट-पटंबरा, झूठा दिखणी चीर ।
सांचि पियाजिरी गूदड़ी, निरमल रहै सरीर ॥ ८ ॥

छप्पन भोग वहाय दे, इण भोगनमें दाग ।
लूण-अलूणो ही भलो अपणे पियाजिरो साग ॥ ९ ॥

छैल विराणो लाखको, अपणे काज न होइ ।
ताके संग सिधारतां भलो न कहसी कोइ ॥१०॥

देख विराणे निवाणकूं क्यूं उपजावै खीज ।
कालर अपणो ही भलो, जामें निपजै चीज ॥११॥

३—सबरी—शबरी, भीलनी । हर—भगवान । पुरातन—पुरानी । फल पाया—जूठे फल खाये । रुघनाथ—श्रीराम ।

५—सरवणा—कान । जाका—उनके । वैण—वचन ।

६—खोजी—खोजनेपर । छानी—छिपी ।

७—पियाजी—प्रियतम, परमात्मा । पोत—माला ।

८—दिखणी चीर—दक्षिणका बहुमूल्य वस्त्र ।

९—लूण-अलूणो—नमक हो चाहे न हो ।

१०—विराणो—परायो । सिधारतां—जानेसे ।

११—निवांण—उपजाऊ जमीन । क्यों इ०—क्यों खिजाता है ? कालर—जो उपजाऊ न हो वैसी जमीन । निपज—पैदा होती है ।

भगति-भाव भादू नदी सभी उठी घहराय ।
सलता सोई जाणिये, जेठ मास ठहराय ॥१२॥

बादल-बादल बीजली, अैसे घट-घट राम ।
मूरख मरम न जाणियो, पायो नाम न ठाम ॥१३॥

लाल-लाल सब ही कहै, सबके पल्ले लाल ।
गाँठ खोल परखै नहीं, ज्याँसूँ फिरै कँगाल ॥१४॥

कसतूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै वन माँय ।
अैसे घट-घट राम है, दुनिया देखै नाँय ॥१५॥

सो साँई तनमें वसै, ज्यों फूलनमें वास ।
कसतूरीरे मिरग ज्यों, फिर-फिर सूँघै घास ॥१६॥

दिल माँही दीदार है, दूर गयाँ कछु नाँय ।
परसा, भरम न भूलियै, पति पोढ्या पुर माँय ॥१७॥

दूर कह्याँसूँ दूर है, नेड़ा तिणसूँ नाँय ।
नेड़ा तिणसूँ, परसरा, जो खोजै दिल माँय ॥१८॥

ना घर भला, न वन भला, जहाँ नहीं निज नाम ।
दादू, उनमन मन रहै, भला त सोई ठाम ॥१९॥

भँवरा लुबधी वासका, मोहै नाद कुरंग ।
दादूका मन रामसू, दीपक-जोत पतंग ॥२०॥

श्रवणा राच्या नादसूँ, नैणा राच्या रूप ।
जिभ्या राची स्वादसूँ, दादू, अेक अनूप ॥२१॥

१२—भादू-नदी—भादोंकी नदी, अैसी नदी जो वर्षामें उमड़ पडे पर बादमें सूख जाय । सलता—नदी ।

१५—कुण्डलि—नाभिमें ।

१७—दीदार—दर्शन । पति—परमात्मा रूपी प्रियतम । पोढ्या—सोये हैं ।

१८—नेड़ा—निकट ।

१९—निज—अर्थात् परमात्माका । उनमन—परमात्माके विरहमें व्याकुल ।

२०—लुबधी—लोभी । वास—सुगन्ध ।

२१—श्रवणा—कान । राच्या—अनुरक्त हुअे । जिभ्या—जीभ ।

सुन्न सरोवर, हँस मन, मोती आप अनंत।
दादू, चुग-चुग चाँचभर, यूँ जन जीवै संत ॥२२॥८४॥

७—ईश्वर-विरह

मन चित चात्रॅग ज्यूँ रटै, पिव-पिव लागी प्यास ।
दादू, दरसण कारणे पुरवौ मेरी आस ॥ १ ॥

विरहिण कुरलैं कुंज ज्यूँ, निस दिन तड़फत जाय ।
राम सनेही कारणे, रोवत रैण विहाय ॥ २ ॥

दादू, इण संसारमें मुझ-सा दुखी न कोय ।
पीव मिलणके कारणे मैं सर भरिया रोय ॥ ३ ॥

विरही जन जीवै नहीं, कोट कहै समझाय ।
दादू, गहला हो रहै, तड़फ-तडफ मर जाय ॥ ४ ॥

देख्याँका अचरज नहीं, अणदेख्याँका होय ।
देख्याँ ऊपर दिल नहीं, अणदेख्याँकूँ रोय ॥ ५ ॥

सबद तुमारा ऊजला, चिड़िया क्यों कारी ।
तुँ ही-तुँ ही निसदिन करूँ, विरहाकी मारी ॥ ६ ॥६०॥

८—परमात्माका भरोसा

दिया सिराणे ठीकरा, रह्या नचींता सोय ।
धीरम, आसा अलखकी, ताकी होड न होय ॥ १ ॥

२२—आप अनन्त—स्वयं परमात्मा । चाँच—चोंच ।

७—ईश्वर-विरह

१—चात्रॅग—चातक । कारणे—लिये । पुरवौ—पूरी करो ।

२—कुरलै—करुण शब्द करती है । कुज—क्रौंच । रेण—रात । विहाय बीतती है ।

४—कोट—करोडों । गहला—पागल ।

५—अणदेख्याँका—नही देखे हुओंका ।

६—ऊजला—उजला । तुँ ही-तुँ ही—(१) तूही है तूही है (२) लैलह नामक चिड़ियाकी बोली ।

८—परमात्माका भरोसा

१—सिराणे—सरहाने । नचींता—निश्चित होकर । धीरम—कविका नाम अलख—परमात्मा । होड—होड, बराबरी ।

सुख मानै तो सुक्ख है, दुख मानै तो दुक्ख ।
सच्चा सुखिया सोय है, दुख मानै ना सुक्ख ॥ २ ॥

रिजक न पल्ले बाँधता, पंछी औ दरवेस ।
जिनका तकिया रब्ब है, तिनके रिजक हमेस ॥ ३ ॥

साँसा मत कर, मूरखा, सिरपर है साँई ।
जो कुछ लिख्या लिलाटमें, भेजेगा याँई ॥ ४ ॥

साँसा मत कर, मूरखा, सिरपर है किरतार ।
वोही सारे जगतका साँसा मेटणहार ॥ ५ ॥

जण-जणरो मुख जोय जाचक भटकै जगतमें ।
सबरो दाता सोय, उणसूँ ही पूरा पड़ै ॥ ६ ॥

कीड़ीने कणको, मणको भोजन मैंगलाँ ।
करता जण-जणको, भेजै जुगमे भैरिया ॥ ७ ॥

खग इण साकरखोरके संग न साकर गूण ।
सब दिन पूरै साँइया चाँच दई सो चूण ॥ ८ ॥

कोण किसीको देत है, देत करम झकझोर ।
उलझै-सुलझै आपही धजा पवनके जोर ॥ ६ ॥६६॥

३—रिजक—निर्वाहके साधन, धन-दौलत । दरवेस—फकीर, साधु । तकिया—सहारा । रब्ब—परमात्मा ।

४—साँसा—सोच-फिक्र । मूरखा—हे मूर्ख । याँही—यहीं ।

६—सोय—वही परमात्मा । उणसूँ ही—उसीसे ।

७—कीड़ीने—चींटीके लिअे । मणको—अेक मनभर । मैंगलाँ—हाथियोंके लिअ । करता ज[illegible]नन-जनका कर्त्ता अर्थात् परमेश्वर । जुग—जग ।

८—ख[illegible]—इस शकरखोरे पक्षीके साथ शक्करका बर्त्तन कभी नहीं रहता फिर भी परमात्मा सदा उसे शकर खानेको देता है । जो चोंच देता है सो चून भी देता है, जिसने मुँह दिया है वह खानेको भी देगा ।

६—धजा—ध्वजा, झडी । करम—कर्म ।

९—साधु

साधू सत कर बैठ ज्या', साधू वो ही ठीक ।
वाको साधू मत कहो, घर-घर माँगै भीख ॥ १ ॥
माया देख्याँ मन खुसी, मुलक पसारै हाथ ।
हरीदास, तूँ मत करथे वाँ चोराँको साथ ॥ २ ॥
लांबा तिलक लगाय, फटक धजा उठती फिरै ।
खोटो दाणो खाय कीया तिरसी, केलिया ॥ ३ ॥
साधू वही सराहिये, दुखै दुखावै नाँय ।
फल-फूलन छेड़ै नहीं रहै वगीचे माँय ॥ ४ ॥
वहता पाणी निरमला, बँध्या गदेला होय ।
साधू जन रमता भला, दाग न लागै कोय ॥ ५ ॥
साँईसूँ साँचा रहो, बंदाँसूँ सतभाव ।
भावैं लाँबा केस रख, भाँवै घोट मुँडाव ॥ ६ ॥
साधू माई-बाप है साधू भाई-बन्द ।
साध मिलावै रामकूँ, काटै जमका फन्द ॥ ७ ॥१०६॥

१०—भगवानकी महिमा

धरती सब कागद करूँ, कलम करूँ वणराय ।
सात समँद स्याही करूँ, हरि-गुण लिख्या न जाय ॥ १ ॥

९—साधु

१—बैठ ज्या'—बैठ जाता है ।

२—खुसी—प्रसन्न । मुलक—मुसकुराकर । तू मत इ०—ऐसे लोग साधु नहीं, चोर हैं, उन चोरोंका साथ तू कभी मत करना ।

५—गदेला—मैला, गँदला । रमता—घूमते ही ।

६—बदा—मनुष्य । भावैं—चाहे ।

१०—भगवानकी महिमा

१—वणराय—वन-राजि, जंगल । समँद—समुद्र ।

वीज भळाहळ, जळ प्रघळ, नदियाँ खळकै नीर ।
रीता सरवर कुण भरै राज विना, रघुवीर ॥ २ ॥१०८॥

११—करुण-रस

टोळीसूँ टळताँह हिरणा मनमाठा हुवा ।
वाल्हा वीछड़ताँह जीवै किण विध, जेठवा ॥ १ ॥
आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वळे ।
साईनाँरो साथ वळे न आसी, वींझरा ॥ २ ॥
त्हारा बोल-तणाह भणकारा आवै मने ।
उपजै घाट घणाह फेर न देखूँ, फारबस ॥ ३ ॥
लाख लडाया लाड सुख सो तो सपना भया।
झाझा दुखका झाड़ फळबा लागा, फारबस ॥ ४ ॥
कुरजड़ियाँ कुरळा रही देख विरंगा ताल ।
जिणरी जोड़ी वीछड़ी, जिणरा कोण हवाल ॥ ५ ॥११३॥
॥११२८॥

२—वीज इ०—बिजली खूब चमक रही है। प्रघळ—खूब। राज—आप।

११—करुण-रस

१—अपने टोलेसे बिछुड़ते ही हरिण मनमें उदास हो उठे। प्यारोंके बिछुड़ जानेपर कोई कैसे जीवित रह सकता है ?

२—सावनका महीना लौट आवेगा, वर्षा ऋतु भी लौट आवेगी परन्तु जिन समवयस्क साथियोंके साथ हम बचपने में खेले-कूदे हैं उनका साथ फिर कभी नहीं लौटेगा।

३—हे फारबस, तेरी बोली अब भी मेरे अतरमें गूज उठती है, हृदयमें अनेक भाव पैदा होते है, परन्तु तुझे फिर नही देखता हूँ (तुम मुझे नहीं दीख पडते)।

४—हे फारबस, लाखों लाड़ लडाये थे सो वे सुख तो आज स्वप्न हो गये और गहरे दुःखके झाड़ फलने लगे हैं।

५—सरोवरको बिरंगा देख कर क्रौंच पक्षी करुण स्वरसे बोल उठे। भला, जिनकी जोड़ी बिछुड़ गई उनका क्या हाल होगा ?

(६) प्रकीर्णक

१—वर्षा-संबंधी

परभाते मेह डंबरा, दोपारांह तपंत ।
रात्यूं तारा निरमला, चेला, करो गळंत ॥ १ ॥
परभाते मेह डंबरा, सांझै सीला वाव ।
डंक कहै, सुण भड्डली, काळां-तणा सभाव ॥ २ ॥
दिन-ऊगां गह डंबरा, आथण झीणी वाळ ।
सहदे कहै रे भिडळा, अै अहनाणां काळ ॥ ३ ॥
दिन-ऊगांरी चीतरी, सिझ्यारा गडमेळ ।
रात्यूं तारा निरमला, अै काळांरा खेल ॥ ४ ॥
ऊगंतेरो माछलो, आथमतेरो भोग ।
डंक कहै सुण भड्डली, नदियां चढसी गोग ॥ ५ ॥
कळसे पाणी गरम है, चिड़ियां न्हावै धूर ।
ले अंडा चींटी चढै, तो वरखा भरपूर ॥ ६ ॥

१—वर्षा-सम्बन्धी

१—सवेरे मेहका आडम्बर हो, दुपहरको गर्मी पड़े और रातमे तारे निकल आवे तो, हे शिष्य, यहाँ से चले चलो (क्योंकि अकाल पड़ेगा) ।

२—सवेरे मेहका आडम्बर हो और सध्याको ठण्ढी चले तो डंक कहता है कि हे भड्डली, ये अकालके लक्षण है ।

३—सवेरे मेहका आडम्बर हो और सध्याको बादल कम हो जायँ तो ये अकाल के लक्षण है ।

४—सवेरे छितराये हुअे बादल हों और सध्याको गहरी घटा हो और रातको आकाश साफ होकर तारे निकल आवे—ये अकालके खेल है ।

५—यदि सवेरे इन्द्रधनुष और सूर्यास्त के समय लाल किरणे दिखाई दे तो नदियों में अवश्य बाढ आवेगी ।

६—कलसेमे पानी गर्म हो, चिड़ियाँ धूलमे नहावे और चीटियाँ अंडे लेकर ऊपर चढ़ें तो (जान लो कि) भरपूर वर्षा होगी ।

धुर असाढ, पड़वा दिवस, जे अंबर गरजंत।
छत्री-छत्री जूझवै, निहचै काळ पड़ंत ॥ ७ ॥
आसाढाँरी सूद नम, घण वादळ, घण वीज।
नाळा कोठा खोल दो, राखो हळ ने बीज ॥ ८ ॥
सावण पहले पाखमें जे तिथ ऊणी काय।
कइयक-कइयक देसमें टाबर वेचै माय ॥ ९ ॥
सावण पहली पंचमी मेह न मांडै आळ।
पीव, पधारो माळवे, हूँ जाऊं मोसाळ ॥१०॥
सावण पहली पंचमी, ना वादळ ना वीज।
हल फाडो ईंधण करो, ऊभा चाबो बीज ॥११॥
कातक सुद अेकादसी, वादळ विजळी होय।
तो असाढमें, भडुळी, वरखा चोखी होय ॥१२॥
मिगसर वद आठम घटा बीज समेती जोय।
तो सावण वरसै भलो, साख सवाई होय ॥१३॥
पोस अँधेरी सत्तमी जो पाणी नहि देय।
तो अदरा वरसै सही, जळ-थळ अेक करेय ॥१४॥

७—आसाढ कृष्णा प्रतिपदाको आकाशमे बादल गरजे तो क्षत्रियोंमे युद्ध होता है और निश्चय ही अकाल पडता है।

८—आसाढ़ सुदि नवमीको खूब बादल और खूब बिजली हो तो नाले-कोठे खोल दो और हल तथा बीज पासमें रखो (वर्षा होगी)।

९—सावण वदीमें यदि कोई तिथि घट जाय तो किसी-किसी देशमें अैसा भारी अकाल पड़ता है कि माताएँ बालकों तकको वेचने लगती हैं।

१०—सावन वदि पचमीको मेह न घिरे तो हे पति तुम मालवे जाओ और मै पीहर जाती हूँ (अकाल पडेगा)।

१३—समेती—सहित। साख—फसल।

१४—अँधेरी—कृष्णपक्षकी। आदरा—आर्द्रा नक्षत्रके समय (आषाढ़में)

पोस मास दसमी दिवस वादल चमकै वीज।
तो वरसै भर भादवो, साधो, खेलो तीज ॥१५॥
माघ सुदी पूनम दिवस, चाँद निरमलो जोय।
पसु वेचो, कण सग्रहो, काल हलाहल होय ॥१६॥
होली सुक्र-सनीचरी, मंगलवारी होय।
चाक चहोड़े मेदनी, विरला जीवै कोय ॥१७॥
जेठ वदी दसमी दिवस जो सनिवासर होय।
पाणी होय न धरण पर, विरला जीवै कोय ॥१८॥
आखा रोहण वायरी, राखी स्रवण न होय।
पोही मूल न होय, तो महि डोलंती जोय ॥१९॥
मूल गल्यो, रोहण गली, आद्रा वाजी वाय।
हाली, वेचो वलदिया, खेती लाभ नसाय ॥२०॥
दो असाढ, दो भादवा, दो असोजके मांय।
सोना-चांदी वेचके, नाज विसावो, साय ॥२१॥
सुक्रवारी वादलो रहै सनीचर छाय।
डंक कहै, सुण भड्डली, विन वरस्यां नहिं जाय ॥२२॥

१५—खेलो तीज—आनद मनावो।

१६—कण—नाज। सग्रहो—जमा करो। हळाहळ काळ—भयकर अकाल।

१७—चाक इ०—पृथ्वीकी हालत भयकर होगी।

१९—आखातीजको रोहिणी नक्षत्र न हो, राखी पूनम (रक्षाबधन) को श्रवण नक्षत्र न हो और पौषकी पूर्णिमाको मूळ नक्षत्र न हो तो पृथ्वीके लोगोंको भटकते देख लो (अकाल पडता है)।

२०—मूल नक्षत्रमे पानी वरसे और रोहिणीमें पानी वरसे तथा आर्द्रा नक्षत्रमें हवा चले तो हे किसान बैल बेच दो, खेतीमें लाभ नहीं होगा।

२१—जिस वरस दो आषाढ या दो भाद्रपद या दो आसोज हों उस बरस अकाल पडेगा और अन्न सोने-चांदीसे भी महँगा हो जायगा इसलिओ हे महाजनो, सोना-चांदी छोडकर अनाज इकट्ठा करो।

२२—शुक्रका (वरसा) बादल शनिवार तक रहे तो वह विना वरसे नही जाता।

जाड़ेमें सूतो भलो, बैठो वरखा काल़ ।
गरमीमें ऊभो भलो, चोखो करै सुकाल़ ॥२३॥
मीन सनीचर, करक गुरु, जो तुल़ मंगल़ होय ।
गेहूँ—गोरस—गोरड़ी, विरला विल़सै कोय ॥२४॥
मंगल़-रथ आगे हुवै, लारे हुवै ज भाण ।
आरंभ्या यूँही रहै, ठाली रहै निवाण ॥२५॥
मिरगा वाव न वाजिया, रोहण तपी न जेठ ।
क्याँने बाँधो झूँपडा, बैठो वड़ला हेठ ॥२६॥
जेठ, दीत, भादूँ सनी, माह ज मंगल़ होय ।
परजा भटकै अन विना, विरला जीवै कोय ॥२७॥
रात्यूँ बोलै कागला, दिनमें बोलै स्याल़ ।
कै नगरी राजा मरै, (कै) पड़ै अचूको काल़ ॥२८॥

२३—द्वितीयाका चद्रमा जाडेमे सोया अच्छा, वर्षामें बैठा अच्छा और गर्मीमें खडा अच्छा, इससे सुकाल होता है।

२४—यदि शनि मीन राशिमें, गुरु कर्कमें और मगल तुलामें हो तो कोई बिरला आदमीही गेहूं, दूध-दही और प्रियतमाका आनद उठाता है (वर्षा न होने से गेहूँ नहीं पैदा होगा, न दूध-दही मिलेगा)।

२५—मंगलका रथ आगे हो और सूर्य (का रथ) पीछे हो अर्थात् मगल सूर्यसे आगेवाली राशिमें हो तो आरभ किये काम पूरे नहीं होते और जलाशय खाली रह जाते हैं (वर्षा नही होती)।

२६—मृगशिर नक्षत्रमें (सूर्यके होते समय) हवा नही चली और जेठमें रोहिणी नक्षत्रमें (सूर्यके रहते समय) गर्मी नही पडी तो फिर क्यों झोंपडियां बनाते हो, बड़के नीचे ही बैठे रहो (वर्षा नहीं होगी)।

२७—जेठमे पाँच इतवार, भादोंमें पाँच शनि और माघमें पाँच मगल हों तो प्रजा बिना अन्नके भटकती है और कोई बिरले ही जीते हैं।

२८—रातमें कौवे बोले और दिनमें सियार बोलें तो या तो नगरीका राजा मरता है या अवश्य ही अकाल पडता है।

२—कूट व पहेलियाँ

(१)

दधसुत कामण कर लिये करण हंस-प्रतिपाल ।
वीच चकोरन चुग लिये, कारण कोण, जमाल ? ॥ १ ॥
अरुणी राची करन पै, ताकी झिलकत कोर ।
पावकके भोरे भये, ताते चुगत चकोर ॥ २ ॥
गोरी दधसुत कर गह्यो, हंसनके प्रतिपाल ।
उडै न हंस, चकोर चुगै, कारण कोण जमाल ? ॥ ३ ॥
कामण जावक-रंग रच्यो, दमकत मुकता-कोर ।
इम हंसा मोती तजे, इम चुग लिये चकोर ॥ ४ ॥
वायस, राह, भुजग, हर, लिखत त्रिया ततकाल ।
लिख-लिख मेटै सुंदरी, कारण कोण, जमाल ? ॥ ५ ॥
मालन वेचत कवलकॅ, वदन छिपावत बाल ।
लाज न काहूको करै, कारण कोण, जमाल ? ॥ ६ ॥

२—कूट व पहेलियाँ

१—दधसुत—मोती। कामिनीने हसोंको चुगानेके लिअे मोती हाथमें लिअे पर हॅस उडकर पास नहीं आते है और चकोर उन्हे चुग लेते हैं। हे जमाल, इसका क्या कारण है ?

२—अरुणी इ०—हाथोंमे महँदी लगी हुई थी, उसका प्रतिबिम्ब मोतियोंपर पड रहा था इससे अङ्गारोंके धोखेमें पडकर चकोर मोतियोंको चुग रहे हैं।

४—कामण—कामिनीके हाथमें महँदी लगी थी जिसका रग मोतियोमे प्रतिबिम्बित हो रहा था इसलिअे उन्हे अङ्गार समझकर हसोंने छोड दिया और चकोरोंने चुग लिया।

५—राह—राहु।

६—माळन—मालिनी। कॅवळकॅ—कमलको। वदन—अपना मुख।

नोट—मुखचन्द्रके सामने होनेसे कमल मुरझा जाते हैं इसलिअे बाला अपना मुख छिपाती है।

सिव-अंग-भूखण कर ग्रहे, वण बैठी यों बाल़ ।
पिव कारण विग्रह करै, कारण कोण, जमाल ? ॥ ७ ॥

सजि सोरह,बारह पहिरि, चढी अटा अेक बाल़ ।
उतरी कोयल-बोल सुण, कारण कोण, जमाल ? ॥ ८॥

उमड़ घटा घन देखिकै चढी अटापर बाल़ ।
मोतिन लड़ मुखमें लई, कारण कोण, जमाल ? ॥ ९ ॥

जमला ढूंढण हौं गई, भूल पड़ी निसि ताल ।
अेक कंमल़ दो पाँखड़ी, वीचों-वीच, जमाल ? ॥१०॥

इत आवत, उत जात है, भगतनके प्रतिपाल़ ।
वं सी सजवत कदम चढ़, कारण कोण, जमाल ? ॥११॥

चंद गहण जब होत है, दुनी देत है माल ।
विरहिणि लोंग ज देत है, कारण कोण, जमाल ? ॥१२॥

त्रसावंत सुंदर भई, गई सरोवर-पाल़ ।
सर सूक्यो, आणंद भयो, कारण कोण, जमाल ? ॥१३॥

देख,सखी,अेक आचरज, सरवर पेले तीर ।
मृग जैसें पाणी पिवै, हाथ न झेलै नीर ॥१४॥

बाल़पणे धोल़ा भया, तरुणपणे भया लाल ।
व्रध्धपणे काल़ा भया, कारण कोण, जमाल ? ॥१५॥

(२)

विरह वियापी रैणभर, प्रीतम विन तन खीण ।
वीण अलापी देख ससि, किस गुण मेल्ही वीण ? ॥१६॥

८—सोरह—सोलह शृंगार । बारह—बारह आभरण ।

९—लड़—लट, लड़ी ।

१२—गहण—ग्रहण । दुनी—दुनिया ।

१३—त्रसावत—प्यासी ।

१४—पेले तीर—परले किनारे । झेलै—छूता है ।

१५—धोळा—स्वेत । उत्तर—अफीम ।

१६—विरह इ०—विरहसे आकुल नायिकाने विनोदार्थ वीणा बजाना आरम्भ किया पर चन्द्रमाको देख करके उसे किस लिअे रख दिया ?

वीण अलापी देख ससि रयणी नाद सलीण ।
ससहर-मृग-रथ मोहियो, तिम हँस मेल्ही वीण ? ॥१७॥
सुन्दरि चोरे संग्रही, सब लीधा सिणगार ।
नकफूली लीधी नहीं, कह सखि, कोण विचार ?॥१८॥
अहर-रंग रातो हुवै, मुख-काजल मसि व्रन्न ।
जाण्यो, गुंजाहल अछै, तेण न हृथ्यो मन्न ? ॥१६॥
परदेसाँ प्री आवियो, मोती आण्या जेण ।
धण कर-कमलाँ झालिया, हँसकर नाख्या केण ? ॥२०॥
कर राता, मोती नृमल, नयणे काजल-रेह ।
धण भूली गुंजाहले, हँसकर नाख्या तेह ॥२१॥
बहु दिवसे पिव आवियो, सझिया त्री सिणगार ।
निजर दिखाई आदरस, किम सिणगार उतार ? ॥२२॥
इन्द्री-वाहण नासिका, तास-हणे उणिहार ।
तस भख हूवो पाहुणो, तिम सिणगार उतार ॥२३॥

१७—वीण इ०—उसका वीणा बजाना सुनकर चन्द्रमाके रथके मृग मुग्ध हो गये और वे चलना भूल गये। यह देखकर नायिकाने हँसकर वीणाको रख दिया ।

१८—सुन्दरि इ०—चोरोंने किसी सुन्दरीको पकडकर उसके सब श्रृंगार छीन लिये, पर नकफूली (नाकका अेक गहना) नही ली इसका क्या कारण ?

१६—अहर इ०—अधरका रंग लाल था, मुखपर लगे हुअे काजलका रंग काला था । दोनोंका प्रतिबिम्ब नकफूलीके मोतीपर पड रहा था इससे चोरोंने उसे गुंजा समझा और छोड दिया ।

२०—परदेसाँ इ०—परदेशसे प्रियतम आया जो प्रियतमाके लिअे मोती लाया। प्रियतमाने उन्हे हाथमें लिया पर हाथमे लेते ही हँसकर फेंक दिया । सो क्यों ?

२१—कर इ०—हाथका रंग लाल था, मोती सफेद रंगके थे, आँखोंमे काजलकी रेखा थी जिसका रंग काला था । सफेद मोतियोंपर हाथका लाल और काजलका काला रंग प्रतिबिम्बित हो रहा था जिससे प्रियतमाने उन्हें भूलसे गुंजाफल समझा और फेंक दिया ।

२३—इन्द्रा इ०—इन्द्रका वाहन हाथी, उसकी नासिका यानी सूँडके आकार वाला अर्थात् सांप । तस इ०—पाहुना यानी प्रियतम उसका भक्ष्य बन गया ।

वणिआणी रहसी नहीं, रहसो सूथारी ।
सोनारी जासी परी, (कह) भावज कूँभारी ॥२४॥५२॥

(३)

अजा सहेली ता रिपू ता जननी भरतार ।
ताके सुतके मीतको सिवरू वारंवार ॥ १ ॥
ससिको सुत घटमें नहीं, मोह-रिपुको नहीं लेस ।
भवन-जीव-सुतसों हियो, काह करूँ उपदेस ? ॥ २ ॥
सम्मण, वै फल कूण-सा, जो पाके कड़वास ।
काचा लगें सुवावणा, गद्दर करै मिठास ? ॥ ३ ॥
सिवसुत तो सारँग भयो, तो सुत दीनी पूठ ।
भयँग डसण रिपु वोलियो, जठ में आई ऊठ ? ॥ ४ ॥
सारँगने सारँग गह्यो, सारग वोल्यो आय ।
जो सारँग सारँग कहै, सारँग मुखसूँ जाय ॥ ५ ॥

२४—वणिआणी इ०—इस दोहेके वणिआणी, सूथारी, सोनारी और कूँभारी शब्द श्लिष्ट हैं। वणिआणी—(१) बनियाइन (२) भावी वन आई है। सूथारी—(१) सुथारिन (२) वह तेरी। सोनारी—(१) सुनारिन (२) वह स्त्री यानी सीता। कूँभारी—(१) कुम्हारिन (२) कुंभकर्णकी।

कूँभारी भावज अर्थात् कुंभकर्णकी भाभी मंदोदरी रावणसे कहती है कि अब वणिआणी अर्थात् भावी बन आई है, वह नारी अर्थात् सीता रहेगी नहीं, जो कुछ रहेगी वही तेरी है (सू—सो, थारी—तेरी) और सो नारी (सो—वह। नारी—स्त्री) अर्थात् सीता चली जायगी।

१—अजा इ०—बकरीकी सहेली भेड़ उसका शत्रु कांटा, उसकी माता पृथ्वी, उसका पति इन्द्र, उसका पुत्र अर्जुन, उसके मित्र श्रीकृष्ण।

२—ससिको सुत—बुध, बुद्धि। मोह-रिपु—ज्ञान। हियो—प्रेम।

३—कूण-सा—कौनसे। पाके इ०—पकनेपर कड़वे हो जाते हैं।

उत्तर—मनुष्य।

लछमीपतरे कर वसै पांच अंक परवांण ।
पहलो आखर छोडकर दीजै चतर सुजाण ॥ ६ ॥
सिवसुत - माता - नांवरा आखर च्यार सुवेस ।
मध्य वरण दो छोडकर भेजो, सजन, हमेस ॥ ७ ॥
दीपक जलतां जो पडै तीन आंक परवांण ।
पहलो आखर छोडकर लाज्यो, चतर सुजाण ॥ ८ ॥
वायस-त्रीजो नाम, ते आगल लल्लो ठवै ।
जे तू हुवै सुजांण, तो तू वहिलो मोकलै ॥ ९ ॥
काजल-वरणो, अे सखी, मूवो अेक पुरस्ख ।
वालनवाला कोइ नहीं, रोवणवाला लख्ख ॥१०॥
संख सरीखो ऊजलो, गजहस्तीरो दंत ।
इणरो अरथ वतायकर रोटी जीमो, कंत ॥११॥
सीस जटा, पोथी गहै, सेत वसन गल मांय ।
जोगी-जंगम है नहीं, बामण-पंडत नांय ॥१२॥
फूल खिलै अंबर थकी, फल लागै महराण ।
जलमैं माय मुवां पछी, सो तू हमको आण ॥१३॥

६—लक्ष्मीपति—विष्णु । उत्तर—सुदरशनका पहला अक्षर छोड दिया तो दरशन हुआ ।

७—सिव इ०—शिवके पुत्रकी माता पारवती, उसके बीचके दो अक्षर छोड देनेसे पाती रहा ।

८—दीपक इ०—दीपक जलते समय काजल बनता है उसका पहला अक्षर छोड दिया तो जल रहा ।

९—वायस—वायसका दूसरा नाम काग उसके आगे लकार लगाया, कागल हुआ (कागल=कागद, चिठ्ठी) । वहिलो इ०—जल्दी भेजना ।

१०—काजल वरणो—काजलके रंगका, काला । मूवो—मरा । बालन-वाला—जलानेवाले । लख्ख—लाखों । उत्तर—कौवा ।

१२—उत्तर—लहसुन ।

१३—अंबर थकी—आकाशमें । महराण—समुद्रमे । जलमैं इ०—माके मरनेपर जनमता है । आण—ला दे । उत्तर—मोती ।

जळ जायो, थळ ऊपनो, विन डाँडी कण होय ।
गाथा राजा भोजकी विरलो वूझै कोय ॥१४॥

जनमी छी जद तीसगज, भर ज्वानीमे च्यार ।
मरती विरियाँ साठ गज, पंडत करो विचार ॥१५॥

बाळपणे बुगलो हुवो, भर जोबन सूवो ।
इणरो अरथ बताय अब, किण विध काग हुवो ॥१६॥

गहरो फूल गुलाबरो झुक-झुक झोला खाय ।
नहिं माळीके नीपजै, नहि राजाके जाय ॥१७॥

ना है खाट-खटोलड़ी, ना है जीया-जूण ।
राजा, थारे देसमे च्यार पावरो कूण ? ॥१८॥

आकासाँमे उड रही, झुक-झुक झोला खाय ।
हाड हुवै, पण माँस नहि पंडित अरथ, वताय ॥१९॥

आठ पहर जळमे रहै, वसै नगरके माँय ।
मच्छ, कच्छ, दादर नहीं, इणरो अरथ वताय ॥२०॥

च्यार खुणाँरी वावड़ी, पडी बजाराँ माँय ।
हाथी-घोड़ा डूबग्या, पिणघट खाली जाय ॥२१॥

रूँख वसै पंछी नहीं, दूध देय नहि गाय ।
तीन नैण संकर नहीं, साजन अरथ वताय ॥२२॥

१५—उत्तर—छाया (प्रातः, दुपहर और सध्या समय) ।

१६—सूवो—सुग्गा । उत्तर—अफीम ।

१७—उत्तर—सूरज ।

१८—उत्तर—सेर (तोल विशेष) ।

१९—उत्तर—पतग ।

२०—उत्तर—जल-घड़ी ।

२१—खुणाँरी—कोनोंकी । पिणघट—पनिहारी । उत्तर—शीशा (दर्पण) ।

२२—उत्तर—नारियल ।

प्याला भरिया दूधका, ऊँधाँ लीयाँ जात ।
टपको अेक पड़ै नहीं, आ अचरजकी बात ॥२३॥
पडी पण भागी नहीं, भाग हुया है च्यार ।
बिन पाँखाँके उड गई, सुरता करो विचार ॥२४॥
अेक अचूँबो देखियो, सिरपर निकल्या दांत ।
साजन, अरथ बताय दे, सब जग वाको खात ॥२५॥
केसर भरियो बाटको, पड्यो महलके हेठ ।
लाती तो लाजाँ मरूँ, देखे देवर-जेठ ॥२६॥
बाये कँवले वा खडी, सुन्दर किय सिणगार ।
झब-झब झोला खा रही, याको अरथ विचार ॥२७॥
हाल घरे, हल डूँगराँ, बलद गऊरे पेट ।
हाली हीडै पालणे, भानी पूँचो खेत ॥२८॥
वर घोडी, पिव मालवे, जीण समंदाँ पार ।
चाँदा चाबक ले रह्या, सुरता करो विचार ॥२९॥
नौ गोदी, नौ आँगली, नौ नानेरे जाय ।
मतो करू तो और जिणूँ काल पडयाँ के खाय ॥३०॥
पाँच जणा, सो आँगली, सीस पाँच, जी चार ।
चातर चाल्यो चाकरी, सुरता करो विचार ॥३१॥

२३—ऊँधा—उलटे । लीयाँ जात—लिये हुअे जाती है । उत्तर—स्तन ।

२४—भागी—टूटी । उत्तर—रात ।

२५—अचूँबो—अचभा । उत्तर—अनार ।

२६—बाटको—प्याला । उत्तर—केशरिया रंगकी पगडी ।

२७—कँवले—ओर । झोला—झोंके । उत्तर—नथ ।

३०—नौ बच्चे गोदमें है, नौ अँगुली पकड़े (चल रहे) है, और नौ ननिहाल जा रहे हैं । इच्छा करूँ तो और उत्पन्न कर सकती हूँ पर अकाल पडजाय तो क्या खायँगे ? उत्तर—काचरकी बेल ।

३१—पाँच आदमी हैं, सौ अँगुलियाँ है, पाँच सिर है, पर जीव केवल चार है । इस प्रकार चतुर अपनी नौकरीपर जा रहा है । ध्यान लगाकर इसको सोचो ।

उत्तर—चार आदमियोंके कंधेपर उठाया हुआ मृतक ।

(४)

पान सड़ै, घोड़ो अड़ै, विद्या वीसर जाय ।
रोटी जळै अंगारमें, को, चेला, किण दाय ? ॥३२॥
चरखलियो चूं-चूं करै, भूण मचड़का खाय ।
गाडो अड़यो उजाड़मे, कहो, चेला, किण दाय ? ॥३३॥
कपड़ो घड बैठै नहीं, मूंज मेळ नहि खाय ।
जाट गधो मानै नहीं, कहो, चेला, किण दाय ? ॥३४॥
गाडी पड़ी गवाडमें, पगाँ उभाँणी जाय ।
बेटी बैठी बापके, कहो, चेला, किण दाय ॥३५॥८७॥

३—वैद्यक-संबंधी

दाँताँ लूण ज वापरै, भोजन ऊनो खाय ।
डावै पसवाड़ै सुवै, जिण घर वैद न जाय ॥ १ ॥

३२—गुरू पूछता है—हे चेले, बताओ क्या कारण है कि पान सड़ता है, घोड़ा अड़ता है, विद्या भूल जाती है और अंगारोंपर रखी रोटी जल जाती है।

चेला सब प्रश्नोंका अेक साथ उत्तर देता है कि गुरूजी, फेरी कोनी (फिराया नहीं, पानोंको उलटपुलट नहीं किया, घोड़ेको फिराया नहीं, विद्याकी आवृत्ति नहीं की, बाटी उलटी नही)।

३३—चर्खा चलते समय चूं-चूं आवाज करता है कुंवेका भूण मचमचा रहा है और गाडी उजाड़में अडी पड़ी है।

उत्तर—गुरूजी, वाँग्यो कोनी (तेल नही दिया)।

३४—कपड़ा फिट नही होता, मूंज मेल नही खाती, और गधा जाट मानता नहीं।

उत्तर—गुरूजी कूट्यो कोनी (कूटा नहीं)।

३५—गाड़ी चौकमें ही पडी है, स्त्री नगे पैर जाती हैं, और बेटी बापके घर बैठी है।

उत्तर—गुरूजी, जोडी कोनी (जोडी नहीं, जोडी=(१) बैलोंकी जोडी, (२) पैरोंकी जोडी यानी जूतियाँ और (३) कन्याकी जोड़ी यानी वर)।

३—वैद्यक-संबंधी

१—जो दाँतोंमे नमकका व्यवहार करता है (नमक का मजन करता है),

हरड़, बहेड़ा, आंवला, घी-सक्करमें खाय ।
हाथी दाबै खाखमे, साठ कोस ले जाय ॥ २ ॥
धात-वधारण,बल-करण, जे, पिय, पूछो मोय ।
दूध समान तिलोकमें ओर न ओखद कोय ॥ ३ ॥ ॥६०॥

४—प्रकीर्णक

अहमद, लड़का पढ़णमे, कह, किन झोंका खाय ।
तन-घटमें विद्या-रतन, भरत हिलाय-हिलाय ॥ १ ॥
जल पीधो जाडेह, पावासररे पावटे ।
नैनकिये नाडेह जीव न धापै, जेठवा ॥ २ ॥
जगतणकूँ भगतण कहै, कहै चोरकूँ साह ।
चाकरकूँ ठाकर कहै, तीनूँ राह कुराह ॥ ३ ॥

गर्म (ताजा) भोजन खाता है और बाँयी करवट सोता है, उसके घर वैद्य कभी नहीं जाता । वह सदा नीरोग रहता है) ।

२—जो हरड, बहेडा और आँवला इनको घी और शक्करके साथ खाता है वह इतना शक्तिवाला हो जाता है कि हाथीको बगलमे दबा साठ कोस तक ले जा सकता है ।

३—हे प्रिय, यदि धातुओंकी वृद्धि करनेवाली और बलदायक औषधि मुझे पूछते हो तो दूधके समान दूसरी औषधि तीनों लोकोंमे नही है ।

४—प्रकीर्णक

१—अहमद कहता है कि कहो, लडके पढते समय झोंके क्यों खाते है (विद्यार्थी प्राय. सिर हिला-हिलाकर याद किया करते हैं) । फिर कवि उत्तर देता है कि शरीर-रूपी घडेमें विद्यारूपी रत्न हिला-हिलाकर भर रहे है । ताकि जरासी जगह भी खाली न रह जाय ।

२—मानसरोवरके बडे तालावमे जल पिया है अत. अब छोटी तलैयासे जी नहीं भरता ।

३—लोग ससारी स्त्री (वेश्या) को भगतण (भक्तिन, राजस्थानमें वेश्याको भी भगतिन करते हं) कहकर पुकारते हैं, जो वास्तवमें चोर है अैसे बनियेको शाहजी कहकर पुकारते हे और गुलामको ठाकुर नामसे सम्बोधित करते है । अैसा करनेवाले तीनों ही कुराह राहपर जा रहे है ।

साँझ पड़ी दिन आँथ्यो, चकवी दीनी रोय ।
चल, चकवा, वा देसमे, साँझ कदे नहि होय ॥ ४ ॥
साँझ पड़ी, दिन आँथ्यो, चकवी भयो वियोग ।
पणियारी यूँ भाखियो, देखो विधना-जोग ॥ ५ ॥
जा, पणियारी, भर घड़ो, कर न पराई वात ।
जिकण तुमारो दिन हर्यो, तिकण हमारी रात ॥ ६ ॥
पणघट जातां पण घटै, पणघट वाको नाम ।
कहियो, पण कैसे रहै पणहारणके धाम ! ॥ ७ ॥
पणघट जाताँ पण घटै, पणघट कह सब कोय ।
कहियो, पण कैसे घटै, जब पण घट ही होय ? ॥ ८ ॥
मात-पिता सँ वीसरै, बंधू वीसारैह ।
सूराँ पूराँ वातडी, चारण चीतारैह ॥ ९ ॥ ॥९९॥
॥१२२७॥

४—संध्या पडी, दिन छिप गया । चकवी वियोग-भयसे रो उठी और बोली कि हे चकवे, उस देशमें चलो जहाँ रात कभी नही होती (जीव और भवद्धामकी ओर संकेत) ।

५—६—सध्या पड़ी, दिन अस्त हो गया और चकवीके वियोग हुआ । उसे देखकर अेक पनिहारिन बोली कि विधाताका योग तो देखो । पनिहारिनका कथन सुनकर चकवीने उत्तर दिया कि हे पनिहारिन, तू जा, अपना घडा भर, मुझपर क्या दया करती है, अपनी ही ओर देख, जिसने तुम्हारा दिन छीन लिया उसीने हमारी भी रात छीन ली है ।

७—पनघटपर जानेसे पन (प्रतिष्ठा) घटता है, उसका नाम ही पनघट है, तब कहो पनहारिनके घर पन कैसे रह सकता है ?

८—पनघटपर जानेसे पन घटता है, सब कोई उसे पनघट कहते हैं । पर जब पन पहले ही घटा हुआ है तो पनघटपर जानेसे फिर क्या घटेगा ?

९—माता, पिता आदि सब भूल जाते है, बंधु भी भूल जाते हैं । पर पूरे शूरवीरोंकी कथाओंको चारण (कविजन) सदा स्मरण कराते हैं ।

टिप्पणी

(१) विनय

१— भगवानकी स्तुति

१—सिल ऊधरती सारि—अहल्या गौतम ऋषिकी स्त्री थी। ऋषिके शापसे वह शिला हो गई थी। रामचन्द्रजीने अपनी चरण-धूलिका स्पर्श कराकर उसका उद्धार किया था। कथाके लिअे तुलसीकृत रामायणका बाल-काड (दोहा २४२) देखो।

पिताकी आज्ञासे वनमें जाते हुए श्रीराम गंगाके किनारे पहुँचे तो उन्होंने गंगा पार करनेके लिअे धीवरसे नाव लानेको कहा पर वह बोला कि महाराज आपके चरणोंका स्पर्श करके पत्थर तक तरकर आदमी बन जाते है तो बेचारी लकडीकी नाव क्या चीज है और यदि वह तर गई तो फिर मैं अपना पेट क्योंकर पालूँगा। इस प्रसंगका बडा ही सुन्दर वर्णन तुलसीदासजीने रामायण, कवितावली आदि मे किया है।

सारि—याद करके। झीवर—धीवर। चलण—चरण। देखे—देख-कर। उत—सं० पुत्र, अब यह शब्द अपत्यवाचक प्रत्ययकी भाँति प्रयुक्त होता है।

३—गरुड—ये कश्यप और विनताके पुत्र तथा विष्णुके वाहन कहे गये है। इनकी गति बहुत तेज है। सूर्यका सारथी अरुण इनका छोटा भाई है।

वारण—ग्राहसे ग्रसित गजेंद्रकी रक्षाकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। भगवान गजेन्द्रको बचानेके लिअे चले तो उन्हे गरुडकी चाल भी धीमी जान पड़ी और उसे छोड़कर पैदल ही दोड पड़े।

४—आधख—अध्यक्षता, प्रभुता।

५—म्हारी—आधुनिक रूप थारी=तेरी।

२—गगाजीकी स्तुति

४—क्रम—सं०, कर्म राजस्थानीमें अक्षरके ऊपरका रेफ प्रायः पूर्व अक्षरके नीचे चला जाता है। अन्य उदाहरण, जैसे—ध्रम (धर्म) व्रन

(वर्ण) क्रन (कर्ण) द्रप (दर्प) आदि। ऐसा होनेपर रेफके आगेवाला अक्षर विकल्पसे द्वित्व भी हो जाता है, जैसे—ध्रम, क्रम्म, द्रप्प, व्रन्न आदि।

८—नारायण-पग-नीर इ०—गंगाजी भगवानके चरणोंसे उत्पन्न हुई है। जब भगवानने विराट रूप धारण किया था उस समय ब्रह्माजीने उनके चरणोंको पखारकर जलको अपने कमंडलुमें भर लिया था और फिर भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न होकर गंगाको पृथ्वीपर भेजा।

३—करणीजीकी स्तुति

करणी—ये चारणी थीं। इनका जन्म जोधपुर राज्यके सुयाप गाँवमे संवत् १३८७ वि० में और देहान्त १५१ वर्षकी अवस्थामें सं० १५३८ में (अन्य मतानुसार १५९५ चैत्र शुक्ल ९, गुरुवारको*) हुआ था। ये देवीका अवतार मानी जाती है और देवीके रूपमें पूजी जाती है। इनका मंदिर बीकानेर राज्यमें देशणोक नामक स्थानमें है। बीकानेरके संस्थापक राव बीकाजीकी इन्होंने बड़ी सहायता की थी। करणीजीके अन्य नाम—करणी, करनल़, कणियाँणी, महियासधू, आई, धावलि़याली़, देशणोकपत, लोवड़ियाल़ आदि है।

१—वराह इ०—पुराणोंके अनुसार भगवान कच्छप-रूपसे समस्त ब्रह्मांडको धारण किये हुअे है; कच्छपके ऊपर वराह है और वराहके ऊपर शेषनाग तथा शेषनागके ऊपर पृथ्वी है।

---

(२) नीति

१—मनस्वी पुरुष

४—कंथा करक न छाँडिये इ०—मिलाओ, सामन्य नीतिमें २२ और २३ नंबरके दूहे।

---

*यथा—पनरैसै पिच्याणवे चैत सुकल गुर नम्म।
देवी सागण देहसूँ पूगा जोत परम्म॥

८—सींहां केहा सथ्थ इ०—मिलाओ,—

सिहनके लहँडे नहीं, हसनकी नहि पाँत ।
लालनकी नहि बोरियाँ, साधु न चलै जमात ॥

२—महापुरुष

१—वडा वडाई ना करै इ०—मिलाओ,—

Saith a false diamond, 'what a jem am I!'
I doubt its value from its boastful cry.

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

३—सज्जन

२—तरवर कदे न फल भखै इ०—मिलाओ,—

पिबति नद्यः स्वयमेव नांभः स्वय न खादति फलानि वृक्षाः ।
नादंति सस्य खलु वारिवाहाः परोपकाराय सता विभूतयः ॥१॥
छायावतो गतव्यालाः स्वारोहाः फलदायिनः ।
मार्गद्रुमा महांतश् च परेपामेव भूतये ॥२॥

३—तखत विराज्या जानरा इ०—मिलाओ,—

गुरु गोविद दोनूँ खडे, काके लागूँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आप, जिण गोविद दियो बताय ॥

—कबीर

४—सच्चा मित्र

१—हर अरजनरे हेत इ०—महाभारतके युद्धमे भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनके सारथीका काम किया था ।

६—सतसगति

२—मलयागर मझार इ०—मिलाओ,—

कि तेन हेम-गिरिणा रजताद्रिणा वा ।
यत्राश्रिताश् च तरवस् तरवस् त एव ॥

मन्यामहे मलयमेव यदाऽऽश्रयेण ।
कंकोल्ल-निम्ब-कुटजान्यपि चंदनानि ॥

—नीतिशतक

१०—कुमित्र

१—मूरख मित्र न कीजिये इ०—मूर्ख मित्रसे बुद्धिमान शत्रु अच्छा। इसपर अेक कथा है कि, अेक राजाके पास अेक बंदर था जो बड़ी भक्तिके साथ राजाकी सेवा करता था। अेक दिन राजा सो रहा था और बंदर पंखा लेकर हवा कर रहा था। थोड़ी देरमें अेक मक्खी आकर राजाके वक्षस्थल पर बैठ गई। बंदरके उड़ानेपर वह उड़ गई पर तुरन्त ही फिर आकर बैठ गई। बंदर बारबार उड़ानेका प्रयत्न करता और मक्खी उड़-उड़कर फिर बैठजाती। तब मूर्ख बंदरने क्रोधमें भरकर पास पड़े हुअे खड्गको उठा लिया और मक्खीको मारनेके लिअे राजाकी छातीपर दे मारा। मक्खी तो तुरन्त उड़ गई पर राजाके दो टुकड़े हो गये।

पंचतंत्रमें इसी भावका यह श्लोक है—

पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्, न मूर्खो हितकारकः ।
वानरेण हतो राजा, विप्राश् चौरेण रक्षिताः ॥

१२—अविवेकी पुरुष

३—मच्छ गलागल—मात्स्य न्याय। इसकी परिभाषा संस्कृत ग्रंथोंमे इस प्रकार लिखी है—

(१) प्रबल-निर्बल-विरोधे सबलेन निर्बल-बाध-विवक्षायां तु मात्स्यन्यायावतारः। यथा प्रबला मत्स्या निर्बलांस्तान् नाशयति तथाऽराजकेऽमुकप्रदेशे प्रबला जना निर्बलान् नरान् नाशयंति—इति न्यायार्थः।

—रघुनाथ वर्मा

(२) परस्परामिषतया जगतो भिन्नवर्त्मनः ।
दंडाभावे परिध्वंसी मात्स्यो न्यायः प्रवर्त्तते ॥

—कामदकीय

(३) अत्र बलवंतो दुर्बलान् हिंस्युरिति मत्स्यन्यायः अेव स्याद्——इत्युक्तम् ।

—कुल्लूक-कृत मनुस्मृति-टीका

१३——मूर्ख

७—सुसैं सिंघ इ०—इसपर अेक कहानी है कि अेक सिंह किसी वनमे बहुत-से पशुओंको मारा करता था। तब सब पशुओंने मिलकर उससे कहा कि आप हम सबका संहार न करें, हम आपके भोजनके लिअे अेक पशु प्रतिदिन भेज दिया करेंगे। सिंहने इस शर्त्तको स्वीकार कर लिया और प्रतिदिन अेक पशु उसके पास आने लगा। अैसा होते-होते किसी दिन अेक खरगोशकी वारी आई। सिंहसे सव पशुओंका पिंड किस प्रकार छूटे यह सोचता हुआ वह सिंहके भोजनके समयको टालकर संध्या समय सिंहके पास पहुँचा। उसका छोटा शरीर, और फिर उसे देरसे आया, देखकर सिंह बड़ा क्रुद्ध हुआ। खरगोशने नम्रताके साथ कहा कि महाराज, मेरा छोटा शरीर देखकर पशुओंने मेरे साथ चार और खरगोश भेजे थे पर मार्गमे हमें अेक दूसरा सिंह मिला जिसने हम सबको रोक लिया और हमसे पूछा कि तुम कहाँ जाते हो ? मैंने सब हाल सुनाया तो वह क्रोधमें भरकर बोला कि वनका राजा तो मैं हू, सब पशुओंको मेरे पास बारी-बारीसे अेक पशु भेजना चाहिअे, यदि तुम्हारा सिंह वनका राजा बनना चाहे तो वह आकर मुझसे युद्ध कर ले। यह कहकर उसने उन चार खरगोशोंको रख लिया और मुझे आपके पास भेजा है।

खरगोशकी बातें सुनकर सिंह क्रोधमें भरकर बोला कि चल, बता, वह सिंह कहाँ है ? पहले उसको मारकर फिर तुझे खाऊँगा। तब खरगोश सिंहको अेक कुअेंके पास ले गया और उसके भीतर देखकर कहने लगा कि

महाराज, वह दूसरा सिह तो आपके डरके मारे इस कुअें में छिप गया है। सिहने कुअेके भीतर देखा तो उसे अपनी परछाई दिखाई दी। उसे ही दूसरा सिह समझकर वह कुअेमें कूद पड़ा और डूबकर मर गया। इस प्रकार खरगोशने अपनी बुद्धिसे दुष्ट सिहको मारकर सबके प्राण बचाये।

१५—कंजूस

१—बावन अक्खर—वर्णमालामें ५२ अक्षर होते है अतः सारे वर्णोंमें। यह कंजूसकी उक्ति है।

२०—प्रारब्ध

२—वे.ह—यह शब्द 'विधि' से बना है और इसका अर्थ विधाता है। विधाता स्त्री मानी जाती है और उसे .वेह-माता भी कहते है।

२७—अन्योक्तियाँ

२—माळी ग्रीषम मांय इ०—कविराज वांकीदासजो राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध कवि हो चुके है। वे जोधपुर-महाराज मानसिहजीके यहाँ रहते थे। प्रसिद्धि प्राप्त करनेके पूर्व, अपनी सामान्य स्थितिके समय, वे रायपुरके ठाकुर अर्जुनसिंहके आश्रयमें रहते थे। अेक दिन कविराजजी महाराज मानसिहजीके साथ हाथीपर चढ़े जा रहे थे उस समय उक्त ठाकुरने उनसे पूछा कि क्या आपको उन पुराने गाँवोंकी स्मृति बनी हुई है जहाँ आप पहले आते-जाते थे। इसपर कविराजजीने यह दूहा कहा।

८—सूवा सेमळ देखकर इ०—सेमलके पेड़में गहरे लाल रंगका फूलोंका गुच्छा आता है और उनमें फलकी जगह डोडी लगती है। गहरे रंगसे लुब्ध होकर सुग्गा आशा लगाये रहता है कि पकनेपर बड़ा मोठा और रसीला फल मिलेगा पर डोडोके फूटनेपर उसमे रसीले गूदेकी जगह रुई निकलती है। मिलाओ—

सेमर सुवना सेइया दुइ ढेंढ़ीकी आस।
ढेढ़ी फूट चटाक दे, सुवना चला निरास॥

—कबीर

२८—सामान्य नीति

२२—कलह करये मत इ०—इस संवन्धमें यह कथा प्रसिद्ध है। मारवाड़के राव चूँडाका मोहिलोंसे वैर था। अपने अंतिम दिनोंमें उसने मोहिलवंशकी अेक राजकुमारी किशोरकँवरीसे विवाह किया। रानीकी नई अवस्थापर मुग्ध होकर रावने राज्यका सारा प्रबंध रानीके हाथमे सौंप दिया। उसने घोड़ोंको जो घी दिया जाता था उसे बंद करवा दिया। यह हाल सुनकर रावजी ने यह दूहा कहा। तब रानीने आगेवाले दूहेसे इसका उत्तर दिया। रावजी चुप हो रहे। घोड़ोंका घी बंद करके रानीने सरदारोंको भोजनके साथ जो घी मिलता था उसको भी घटाना शुरू किया और अपनी कारगुजारी जतानेको रावजीसे कहा कि जहाँ ३३० मन घी प्रतिदिन उठता था वहाँ मैं केवल १ मन घी खर्च करती हूँ। रावजी ने बाहर आकर देखा तो तबेलेमे घोड़े किसी कामके न रह गये थे और सरदार अपने-अपने घर चले गये थे। तब रावजीने दुखी होकर कहा कि मोहिलाणी, तूने मेरा राज्य खोया और मुझे मारा।

३४—वांका रहज्यो वालमा इ०—मिलाओ,—

टेढ़ जानि सका सब काहू। वक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू॥ तुलसीदास।

सीधे ऊँटपर दो चढै, यह कहावत राजस्थानमे प्रसिद्ध है।

११६—भलि मरवणरी वात इ०—यहाँ ढोला-मारवणीरी वात नामक कथासे अभिप्राय है। पहले ग्वालियरके पास नरवरमें कछवाहे राजपूतोंका राज्य था। उनमें संवत् १००० के आस-पास नल नामक राजा हुआ जिसका पुत्र ढोला उपनाम साल्हकुमार था। इसका विवाह पूगलके पँवार राजा पिंगलकी कन्या मारवणीसे हुआ था। ढोला-मारूकी वातमे इन्हींकी कहानी है। यह कथा राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध थी और है। इसके अनेक दूहे अब भी लोगोंकी जबानपर मिलते है। यह कथा इस प्रकार है—

नरवरमे नल नामका राजा था। उसके ढोला नामका कुँवर था। अेक बार पूगलमें अकाल पडा तो पूगलका राजा पिंगल सपरिवार नलके

यहाँ आकर रहा। पिंगलकी रानीको ढोला बहुत पसंद आया और उसके हठसे राजाने अपनी डेढ़ वर्षकी कन्या मारवणी का विवाह ढोलाके साथ कर दिया। ढोलाकी अवस्था उस समय तीन वर्ष को थी। इसके पीछे पिंगल अपने देशको लौट गया। पूगल नरवरसे बहुत दूर था और मार्ग खतरनाक था इसलिअे ढोलेके बड़े होनेपर नलने उसका दूसरा विवाह मालवाकी राजकुमारी मालवणीके साथ कर दिया और ढोलाको पहले विवाहकी बात मालूम नहीं हुई। इधर मारवणी बड़ी हुई तो पिंगलने ढोलाके पास कई समाचार भेजे पर मालवणीने अैसा प्रबंध कर रखा था कि पूगलकी ओरसे आनेवाला कोई आदमी ढोलेके पास न पहुंचने पावे और ढोलेको मारवणीका हाल न मालूम हो। अंतमे पिंगलने कई ढाढियोंको नरवर भेजा। वे मालवणीके आदमियोंसे छिपकर ढोलाके महलके नीचे जा टिके और रातभर मांड रागके विरहोद्दीपक सुरमे मारवणीके संदेशको गाते रहे। ढोलेने यह सब सुना और उसके मनमें व्याकुलता उत्पन्न हुई। प्रातःकाल उसने ढाढियोंको अपने पास बुलाया और उनसे मारवणीका सब हाल उसे मालूम हुआ।

मारवणीका हाल सुनकर ढोला मारवणीके प्रति आकृष्ट हुआ और उसे लिवा लानेके लिअे पूगल चलनेका विचार करने लगा। पर मालवणी भी उससे बहुत प्रेम करती थी और उसके विरहको नही सह सकती थी। इसलिअे उसने ढोलाको रोकनेके बहुत उपाय किये—और लगभग सालभर ढोला रुका भी रहा—पर अन्तमे वह अपना तेज ऊंट लेकर चल ही दिया।

मार्गमें अनेक विघ्नोंके उपरांत ढोला पूगल पहुँचा। वहाँ बड़ा हर्ष हुआ। पन्द्रह दिन वहाँ रहकर वह मारवणीके साथ नरवरको चला। मार्गमें सोती हुई मारवणीको अेक पैणा सांप डस गया। ढोला उसके साथ जलनेको तय्यार हुआ पर इतनेमें अेक योगी आ निकला और उसने मारवणीको जिला दिया।

ऊमर नामका अेक सरदार था। वह मारवणीको हथियाना चाहता था। उसने देखा कि ढोला अकेला जा रहा है तो उसने मारवणीको

छीन लेनेका निश्चय किया। फौज लेकर वह भी चल पड़ा। मार्गमें ढोला मिला। ऊमरने बड़ी मनुहारे करके ढोलाको ऊँटसे उतार लिया और सब अेक जगहपर बैठकर शराब पीने लगे। ऊमरके साथ अेक गायिका थी जो मारवणीके पीहरकी रहनेवाली थी। उसे ऊमरका षड्यंत्र मालूम हो गया और उसने मारवणीको सचेत कर दिया। मारवणी ऊँटके पास बैठी थी, उसने तुरन्त ऊंटको छड़ीसे मारा। जब ऊट दौड़ा तो ढोला उसे पकड़नेको पीछे-पीछे दौड़ा। मारवणी भी दौड़कर पास पहुच गई और उसने सारा हाल ढोलासे कह दिया। तब दोनों तुरन्त ऊँटपर सवार होकर चल दिये। जल्दीमे ऊँटका पैर बँधा ही रह गया। फिर भी ऊंट इतना तेज गया कि ऊमर ढोलाका पीछा करनेमे असमर्थ रहा। इसके पश्चात् दोनों सकुशल नरवर लौट आये। [१]इस विषयका ढोला-मारू नामक दूहात्मक लोक-गीत राजस्थानमे बहुत प्रसिद्ध है।

१४१ बालक रीझै भूत—शुद्ध पाठ बाकल रीझै भूत है जिसका अर्थ यह है कि भूत बाकलोंसे रीझता है। सिझाये हुअे कोरे अन्नको बाकल कहते है।

---

(३) वीर

१—सामान्य

१—मिलाओ आगे 'विशेष वीर' में दूहा नं० १,७६ और ९०।

२—राजपूतोंकी ३६ शाखाअें कही गई हैं। छतीस शाखाअें कौन-कौन है इसपर मतभेद है। कुछ नाम ये है—(१) गुहिलोत (२) राठोड़ (३) कछवाहा (४) तँवर (५) चोहाण (६) सोलंकी या चालुक्य (७) पँवार

[१] इस काव्यका अेक सुन्दर सस्करण काशीकी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है जिसमें कथाके विविध रूपान्तर, पाठांतर, भाषान्तर, टिप्पणी, शब्दकोष, व्याकरण आदिका समावेश किया गया है

(८) पड़िहार (९) चावड़ा (१०) यादव (११) मोहिल (१२) दहिया (१३) जोइया (१) डोड (१५) झाला (१५) बाला (१६) गोड़ इत्यादि।

२२—धवळा उत्तम जातिका बैल होता है। धवळे बैलके सम्बन्धमें राजस्थानके सुप्रसिद्ध कविराज बाँकीदासने धवळ-बत्तीसी नामक रचना दूहोंमें की है जो नागरी-प्रचारिणी-सभासे प्रकाशित बाँकीदास-ग्रन्थावळीके प्रथम भागमें प्रकाशित हो चुकी है।

२८—'मैं परणंती परखियो' से आरम्भ होनेवाले कुछ और दूहे हास्य और व्यंग विभागमें देखिये (नम्बर ४६—४७)।

३३—'सखी हमीणे कंथरी' से आरम्भ होनेवाले कुछ और दूहे हास्य और व्यंग विभागमे देखिये (नम्बर ४८—४९)।

४१—मिलाओ—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

—हेमचन्द्रके प्राकृत-व्याकरणमे उद्धृत।

३—विशेष वीर

१—महाराणा प्रतापसिंह (१५९७-१६५३)—ये सुप्रसिद्ध स्वतंत्रताके पुजारी महाराणा मेवाड़के राणा साँगाके पोते तथा राणा उदयसिंहके बेटे थे। इनका जन्म सं० १५९७ की जेठ सुदी ३ को हुआ। यद्यपि ये पाटवी कुमार थे तो भी राणा उदयसिंहने छोटी राणी भटियाणीपर विशेष प्रेम होनेके कारण उसके बेटे जगमलको राज्यका उत्तराधिकारी बनाया। परन्तु मेवाड के आपत्ति-कालको देखते हुए वह राजा होनेके सर्वथा अयोग्य था इसलिअे मेवाडके सरदारोंने प्रतापसिंहको ही गद्दीपर बिठाया।

उस समय दिल्लीका बादशाह अकबर था। अेक-अेक करके राजस्थानके सभी हिन्दू राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी पर मेवाड़के राणाने अैसा नहीं किया। अकबरने मेवाड़को अधीन करनेका बहुत प्रयत्न

दी। भयंकर विपत्तियोंको सहन करते हुअे उन्होंने अपनी स्वतंत्रता कायम रखी। विशेष जाननेके लिअे नीचे लिखी पुस्तकें देखनी चाहिअे—

१—महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत राजपूतानेका इतिहास।

२—इन्हीं ओझाजीका उदयपुरका इतिहास, जिल्द पहली।

३—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द कृत प्रताप-प्रतिज्ञा नाटक।

४—हनुमन्तसिंह रघुवंशी कृत मेवाडका इतिहास।

५—टाड कृत राजस्थानका इतिहास, खण्ड पहला।

६—राधाकृष्णदास कृत राजस्थानकेशरी या महाराणा प्रताप नाटक।

७—श्रीराम शर्मा कृत महाराणा प्रतापसिंह (अंग्रेजी)

६६—बादल (१३५९ के लगभग)—यह और इसका चाचा गोरा मेवाडके सरदार थे। उस समय मेवाडमें राणा रतनसेन राज्य करता था। उसके पदमणी नामकी राणी थी जो बहुत सुन्दर थी। अलाउद्दीनने उसे प्राप्त करने के लिअे चित्तोडपर आक्रमण किया पर उसे जीत न सका। अन्तमें उसने छलसे काम निकालनेका विचार किया और राणासे कहला भेजा कि मुझे केवल अेक बार पदमणीको दिखा दीजिये, फिर मैं लौट जाऊगा। राणाने यह बात मान ली। बादशाह भीतर बुलाया गया और वहाँ उसका बडा आदर-सत्कार हुआ। दर्पणमें पदमणीके मुखकी परछाईं देखनेके बाद वह लौट गया। राणा उसे पहुँचानेके लिअे साथ गया। किलेसे बाहर निकलते ही बादशाहने राणाको पकड लिया और कैद करके साथ ले गया तथा कहलवा भेजा कि पदमणी मिलनेपर ही राणाको छोडूँगा इसपर पदमणी गोरा और बादलके पास गई और उसने उनसे सहायता मांगी। उन्होंने कपटका जवाब कपटसे देनेका निश्चय किया और बादशाहसे कहलवा भेजा कि हम पदमणीको ला रहे हैं, उसके साथमें पाँच सौ डोलियोंमें उसकी पाँच सौ सखियाँ भी आवेगी। फिर उन्होंने डोलियोंके अन्दर सशस्त्र योद्धा बिठा दिये और कहारोंकी जगह भी योद्धाओंको ही रखा। पदमणीकी डोलीमें अेक

लुहारको बिठा दिया। इस प्रकार बादशाहके पास पहुँचे और उससे कहलाया कि राणी पहले अपने पतिसे मिलना चाहती है। बादशाहकी आज्ञा मिलनेपर पदमणीकी डोली राजाके पास गई और भीतर बैठे लुहारने राजाके बन्धन काट दिये और राजा घोड़ेपर सवार होकर बादलके साथ चित्तोड़को चल दिया। पीछे गोरा और बादशाहकी सेनामें भयंकर युद्ध हुआ जिसमें गोरा काम आया। उस समय बादलकी अवस्था बारह बरसकी थी।

६९—महाराणा अमरसिंह (१६१६-१६७६)—ये महाराणा प्रतापके पुत्र थे। प्रतापकी मृत्युके उपरान्त उन्होंने स्वतंत्रताका युद्ध जारी रखा। उस समय दिल्लीका बादशाह जहाँगीर था और उसने प्रण कर लिया था कि मेवाड़को चाहे जिन शर्तोंपर, जैसे हो वैसे, अवश्य ही अपने अधीन करूँगा। उसने अपने बेटे शाहजादे खुर्रमको, जो आगे चलकर शाहजहाँके नामसे बादशाह हुआ, सेनापति बनाकर भेजा। महाराणाने यथाशक्ति बादशाही सेनाका सामना किया पर निरन्तर युद्धसे उनके बड़े-बड़े सरदार मारे गये और अैसी स्थिति उत्पन्न होगई कि राणाको या तो देश छोड़कर भागना पड़े या कैद होना पड़े। राजपूत सेना भी निरन्तर युद्धसे थक गई थी और सरदार लोग सन्धि कर लेना चाहते थे। उधर बादशाह भी उदार शर्तोंके साथ सन्धि करनेको तय्यार था क्योंकि उसे तो नामके लिअे मेवाड़को अधीन करना करना था। महाराणाने सरदारोंकी इच्छा तथा परिस्थितिको देखकर आन्तरिक इच्छाके विरुद्ध सन्धिके लिअे स्वीकृति दे दी। पर इससे उनके चित्तको बड़ा दुःख हुआ और वे राज्यकार्य युवराजको सौंपकर अकान्तवास करने लगे। उनने प्रतापसे भी अधिक लड़ाइयाँ लड़ीं और प्रतापसे कष्ट भी कम नहीं उठाये पर बादशाहसे सन्धि कर लेनेके कारण उनका वैसा नाम नहीं हुआ।

७२—महाराणा राजसिंह (१६८६-१७३७)—ये महाराणा अमरसिंहके परपोते थे। बड़े वीर और प्रतापी राजा हुअे। उस समय दिल्लीका बादशाह औरंगजेब था। किशनगढ़की राजकुमारी चारुमतीसे बादशाह विवाह

करना चाहता था पर चारुमती यह नहीं चाहती थी। उसने राजसिंहको पत्र लिखा जिसपर राजसिंह ससैन्य किशनगढ़ पहुँचे और चारुमतीसे विवाह कर उसे मेवाड ले आये। बादशाह इससे बडा क्रुद्ध हुआ। जब बादशाहने जजिया कर जारी किया तो राणाने उसका विरोध किया। जोधपुरके बालक महाराज अजीतसिंहको बादशाहने पकडना चाहा तो उसने राणाके यहाँ शरण ली। इन सब कारणोंसे बादशाहने राजसिंहपर चढाई की। बहुत दिनों तक लडाई होती रही पर महाराणाकी कोई विशेष हानि नहीं हुई। इस युद्धमें राठोड़ोंने भी पूरी सहायता दी थी। संवत् १६३७ में महाराणा कुम्भलगढ जाते हुअे ओडा नामक गाँवमे ठहरे जहाँ किसीने भोजनमे विष मिला दिया जिससे उनका देहान्त हुआ (आगे अैतिहासिक विभागमे दूहा नं० १६ देखिये)।

७४—राव जगमाल—ये मारवाडके राठोड राव मल्लिनाथ (१३८८—१४५६) के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे। इन्होंने माँडूके सुलतानको युद्धमें हराकर उसकी गीदोली नामक रूपवती राजकुमारीको छीन लिया था। युद्धमे सुलतान जगमालकी मारसे घबराकर महलोंमें भाग गया था। उस समयका यह दूहा है।

७५—राव अमरसिंह—ये जोधपुर-महाराज गजसिंहके बड़े बेटे थे। उद्धत स्वभावके होनेके कारण पिताने इनको त्याज्य पुत्र करके (सं० १६९०) छोटे बेटे जसवंतसिंहको जोधपुरका राज दिया। जोधपुरसे निकाले जानेपर वे बादशाह शाहजहाँके यहां गये। वहाँ बादशाहने उनको अपनी चाकरीमे रखकर रावके खिताबके साथ नागोरका पट्टा लिख दिया (१६९४)। नागोरकी सीमा बीकानेर-राज्यसे मिली हुई थी। किसी समय अेक मतीरे की बेल नागोरकी हदमे उगी पर बढ़कर बीकानेरकी हदमे चली गई। जब उसमें फल लगा तो नागोर और बीकानेरके आदमियोंमे झगड़ा हो गया। नागोरवाले कहते थे कि फल हमारा है, क्योंकि बेल हमारी हदमे उगी है। बीकानेरवाले कहते थे कि फल हमारा है क्योंकि हमारी हदमे

लगा है। विवाद बढ़ते-बढ़ते युद्धकी नौबत पहुँची। बीकानेरवाले विजयी हुअे और फल ले गये। अमरसिहने अपनी सेनाकी हारकी बात सुनी तो नागोरमे अपने प्रधानको लिखा कि नई सेना भेजकर मतीरा छीन लाओ। यह बात बादशाह तक पहुँची। उसने अमरसिहको सेना वापिस बुला लेनेके लिअे कहा और मामला निपटानेके लिअे अपना अेक अमीन भेज दिया। पर अमरसिहने इस आज्ञाको माननेसे इनकार कर दिया। शाही दरबारके नियमके मुताबिक प्रत्येक उमरावको नारीसे शाही ड्योढीपर पहरा देना पड़ता था। जब अमरसिहकी बारी आई तो उसने इनकार कर दिया। इससे बादशाहने क्रुद्ध होकर उनपर सात लाखका जुर्माना कर दिया। दूसरे दिन अमरसिंह दरबारमे आये तो बख्शी सलाबतखाँने जुर्माना दाखिल करनेकी बात भरे दरबारमें कही। मतीरेवाले मामलेमें भी सलाबतखाँने बीकानेरका पक्ष लिया था। बातोंही बातोंमें बात बढ़ गई और बख्शीने अमरसिंहको गंवार कहकर पुकारा। इसके पहले ही अमरसिहने अपनी कटार बख्शीके पेटमें भोंक दी। बादशाहकी ओर भी कटार फेंकी पर वह खंभेसे टकरा गई। बादशाह महलमें चला गया। अमरसिह लडते-भिड़ते बुर्जपर चढ़ गये और वहाँसे आमखासके मैदानमें घोड़े सहित कूद पड़े। घोडा तो तुरंत मर गया पर अमरसिह सकुशल घर पहुँच गये। पीछे उनके साले अर्जुन गौड़ने धोखेसे उन्हे मार डाला।

७६—दुर्गादास राठोड (१६६४—१७७५)—ये राजस्थानमें अेक प्रख्यात वीर हो चुके हैं। ये जोधपुरके महाराज जसवंतसिहके सरदारोंमें से थे। इनके पिताका नाम आसकरण था। ये बचपनसे ही बड़े तेजस्वी थे। बचपनमें अेक बार ये अपने गाँवके बाहर टहल रहे थे। उसी समय राज्य के ऊँटोंका अेक टोला वहाँसे निकला। चरवाहेकी बेखबरीसे ऊँट अेक किसानका खेत चरने लगे। बेचारे किसानने चरवाहेसे ऊँटोंको हटानेके लिअे कहा पर उसने कुछ ध्यान न दिया। इस पर दुर्गादासने उसे रोका पर वह तो राज्यके ऊँटोंका चरवाहा था। उनसे भी बिगड़ उठा और उन्हे

बुरा-भला कहने लगा। इसपर दुर्गादासने तलवार निकालकर चरवाहेका सिर धड़से उड़ा दिया। महाराज जसवंतसिंहजीके पास तक यह मामला पहुंचा पर उन्होंने दुर्गादासको कुछ नहीं कहा, उलटे उनकी प्रशंसा करते हुअे उन्हे अपनी चाकरीमें रख लिया।

अेक समय दुर्गादासजी महाराजके साथ शिकारमे गये। वहाँ शिकार से लौटनेपर वे अेक वृक्षके नीचे सो गये। थोडी देरमे उनके मुँहपर धूप आ पहुँची। यह देख स्वयं महाराजने अपने वस्त्रसे उनपर छाया कर दी। अन्य सरदारोंके यह कहनेपर कि आपको स्वयं अैसा करना उचित नहीं महाराजने कहा कि आज मैं इसपर इसलिअे छाया कर रहा हूं कि यह किसी दिन सारे मारवाडपर छाया करेगा। महाराजका यह कथन आगे चलकर पूरा-पूरा सच हुआ।

वादशाह औरंगजेब जसवंतसिंहसे प्रसन्न न था। उसने उन्हे कावुलमें नियुक्त किया। वहाँ उनकी मृत्यु होनेपर औरंगजेबने जोधपुरका राज्य खालसे कर लिया। जब उसे मालूम हुआ कि महाराजकी रानियाँ गर्भवती हैं तो उन्हे दिल्ली बुलाया। मार्गमे रानियोंके दो पुत्र हुअे। उनके दिल्ली पहुँचनेपर औरंगजेबने राजकुमारोंको अपने हाथमे करना चाहा और अपने अेक सेनापत्तिको राठोड़ोंके डेरेपर भेजा। दुर्गादासने राजकुमारोंको पहले ही निकाल दिया। वहुत-से राअपूत शाही सेनाके साथ लड़कर काम आये। दुर्गादासने बचे हुअे आदमियोंके साथ मारवाड़का रास्ता लिया और फिर राजकुमार अजीतसिंहके साथ उदयपुरके महाराणा राजसिंहके पास पहुँचे। राणाने उन्हे सहायता दी और अजीतसिंहको पहाडोमे रखा। इसके वाद शाही सेनाके साथ बहुत समय तक युद्ध होता रहा। अंतमे वादशाहको संधि करनी पड़ी। अजीतसिंहने धीरे-धीरे सारा मारवाड़ अपने हाथमे कर लिया।

अंत समयमे अजीतसिंहके वर्त्तावसे रुष्ट होकर दुर्गादास मेवाड़ चले आये जहाँ राणाने उनको अेक अच्छी जागीर देकर अपने यहाँ रख लिया।

उनका देहांत उज्जैनमें सिप्रा नदीके किनारे अस्सी वर्षकी अवस्थामें संवत् १७७५ में हुआ। अजीतसिंहके व्यवहार और दुर्गादासके मरणके संबंधमें यह आधा दूहा प्रसिद्ध है—

इण घर याही रीत, दुरगो सिपरा दागियो।

७६—वळूसिंह—जोधपुरमें चाँपावत खाँपके गोपाळदास नामक सरदार थे। उनके आठ पुत्र थे और आठों ही परम प्रसिद्ध वीर और साके करनेवाले हुअे। उनके नामों और कामोंका उल्लेख इस छप्पयमें हैं—

माँडव राघवदास[1] पिता जुध जामळ पेठो
हाथी[2] जंगळ हेत सेल वाहणूँ सहेठो
हरियो[3] वागड खेत साथ सवळाँ दळ भंजे
खेतसिंह[4] अजमेर दळाँ ऊथळ रण गंजे
आगरे वळू[5], मोपत[6] दिली[7], वीठल[8] उज्जीणीवराँ
कुल माँहि वडा साका किया रण सामँत गोपाळराँ

इनमें वळूजी नागोरके महाराज अमरसिंहजीके दरबारमें रहते थे। रावजीके कुछ पालतू मेंढ़े थे और जब वे चरने जाते थे तब ताजीमी सरदार वारी-वारीसे उनके साथ जाते थे। जब वळूसिंहकी वारी आई तो उनने कहा कि यह हमारा काम नहीं। इसपर रावजीने व्यंगसे कहा कि ये तो मेंढ़े क्या चरावेंगे, पतसाही घड़ मोड़ेगे (शाही सेनाको परास्त करेंगे)। इसपर वळूजी रुष्ट होकर वहाँसे चले आये। कुछ दिनों तक वीकानेर और उदयपुरमें रहकर बादशाहकी चाकरीमें चले गये। जब सलावतखाँके झगड़ेमें राव अमरसिंह मारे गये तो उनकी रानियोंने सती होना चाहा पर रावजीकी मृतदेह कैसे मिले यह समस्या थी। अंतमें उनने वळूजीकी शरण ली। वळूजी वीरतासे शाही सेनाको परास्त करके शरीर को ले आये और रानियाँ सती हुई। इस प्रकार रावजीके कहे हुअे व्यंग को उनने सत्य कर दिखाया। इस लड़ाईमें वळूजी काम आये।

८१—केसरीसिंह—जोधपुरके महाराज अभयसिंहके समयमें जयपुरके महाराज सवाई जयसिंहने जोधपुरपर आक्रमण किया और बिना लड़े ही उन्हे विजय प्राप्त हुई। लौटते समय बखरी-ठाकुर केसरीसिंह कहीं जाते हुअे देख पडे तो जयपुरकी सेनामेंसे किसीने गर्वसे कहा कि देखो हमारी तोपें मारवाड़से भरी-की-भरी वापिस जाती है। केसरीसिंहको यह बात चुभ गई और महाराज जयसिंहके समझानेपर भी उनने युद्ध छेड दिया और वीरतासे लड़ते हुअे काम आये। इस प्रकार जयपुरवालोंको बिना युद्धके विजयी नहीं होने दिया।

८२—कीरतसिंह सोढा—ये जोधपुरके महाराज मानसिंहजीके सरदार थे। संवत् १८६२ में ठाकुर सवाईसिंहके उपद्रवपर जब विद्रोहियोंने जोधपुरके किलेको घेर लिया तो महाराजने कहा कि अब हल्ला रुकना असंभव है। यह सुनकर कीरतसिंहने प्रण किया कि मैं अभी रोकता हूँ। यह कहकर जूझ पडे और वीरतासे लडकर काम आये। विद्रोहियोंका हल्ला हट गया।

८३—भींवसिंह—धनजी और भींवजी ये दोनों पाली-ठाकुर मुकनसिंह-जीके यहाँ रहते थे। धनजी गहलोत और भींवजी चोहाण थे तथा संबंधमें मामा-भानजा होते थे। अेक बार जोधपुर जाते समय मुकनसिंह इनकी ढाणीके पास ठहरे। वहाँ इनका रेवड़ चर रहा था। मुकनदासके आदमी उसमेंसे दो भेड़ोंको उठा लाये और उन्हे काट डाला। धनजी-भींवजीको यह हाल मालूम हुआ तो वे दोनों आये और पेडपर टँगे दोनों जानवरों को ले गये और जाते समय कहा कि राजपूतोंके जानवर खाना सहज नहीं होता। मुकनसिंहको अपने आदमियोंका यह दुर्व्यवहार मालूम हुआ तो उनने माफी माँगी और धनजी-भींवजीकी तेजस्विताको देखकर उन्हे आपने पास रखना चाहा। उनने धनजी-भींवजीसे कहा कि मैं आपसे अेक याचना करता हूँ, क्या आप देंगे? धनजी-भींवजीने राजपूती उदारता से कहा कि अवश्य। तब मुकनसिंहने उनका अपने साथ रहना माँग लिया।

फिर दोनोंको साथ लेकर वे जोधपुर पहुँचे । वहाँ छिपियाके ठाकुर प्रतापसिंह मुकनसिंहसे वैर रखते थे। अेक दिन राजमहलमें महाराजके पास जाते हुअे मुकनसिंहको अेकांतमें निश्शस्त्र देखकर प्रतापसिंहने उनको मार डाला और आप पोलमें छिप गये। धनजी और भींवजीने यह बात सुनी तो तुरंत वहाँ पोलमें पहुचे और दरवाजा तोड़कर प्रतापसिंहको मार डाला फिर राज्यकी सेनासे लड़ते हुअे काम आये ।

८७—राव काँधल—ये मारवाड़के राव रिड़मलके पुत्र तथा राव जोधाके छोटे भाई थे। कहते है कि अेक बार रावके दरबारमे काँधलजी बैठे थे। थोड़ी देरमें वीकाजी आये और काँधलजीसे धीरे-धीरे बात करने लगे। राव जोधाजीने हँसीमें कहा कि आज काका-भतीजा अैसे सलाह कर रहे हैं, मानो कोई नया राज्य स्थापित करेंगे । वीकाजी तो कुछ नहीं बोले पर काँधलजीने अरज की कि महाराजकी कृपा रही तो यह कोई बड़ी बात नहीं। फिर कई सरदारों तथा सेनाके साथ वीकाजीको लेकर चल पड़े और जोधपुर राज्यके उत्तरमें स्थित वागड़ देशपर अधिकार करके वहाँ नया राज्य कायम किया । धीरे-धीरे भटनेर और हिस्सार तकका प्रदेश अधिकारमें कर लिया। इस प्रकार अपनी वीरतासे रावजीने अेक बडा राज्य खड़ा कर दिया । सं० १५४६ में वे हिस्सारके सूबेदार सारंगखाँके साथ युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुअे। उनकी मृत्युका हाल सुनकर जोधाजी और वीकाजीकी सम्मिलित सेनाओंने सारंगखाँपर आक्रमण किया और उसे युद्धमें मार डाला।

८८—पदमसिंह—ये वीकानेरके महाराज करणसिंहके छोटे पुत्र थे। असाधारण वीर थे। इनने अेक बार युद्धमें औरंगजेबकी प्राणरक्षा की थी। इनमें इतना बल था कि अेक बार किसी नवाबके हाथीको हौदे सहित पकड़कर अपने पिताके हाथीके बराबर, जिसपर खुद भी सवार थे, खींचकर भिड़ा दिया। उनका खड्ग अभी तक राज्यके शास्त्रागारमें रखा है । वह इतना भारी है कि अेक आदमी उसे दोनों हाथोंसे भी नहीं उठा सकता। वे उसे अेक हाथसे चलाते थे

अक बार औरंगाबादमें उनके छोटे भाई मोहनसिंहके अेक पालतू हरिणको, जो फ़िर रहा था, कोतवालने पकड़ लिया। मोहनसिंह माँगने गये तो कोतवालसे झगड़ा हो गया और कोतवालने उनका सिर काट लिया। पद्मसिंहको यह मालूम हुआ तो वे तुरंत वहाँ पहुँचे। कोतवाल प्राण बचानेके लिअे दरबारमें जा बैठा। पदमसिंह भी दरबारमे जा पहुँचे और वहीं भरे दरबारमें कोतवालका सिर उडा दिया।

८६—कुसलसिंह—ये भूकरकाके ठाकुर थे जो राज श्रीबीकानेरका अेक ठिकाना है। किसी कारणसे बीकानेर-महाराज जोरावरसिंहजी उनसे अप्रसन्न हो गये थे इसलिअे वे अपने ठिकानेमें ही रहते थे। जब जोधपुर-महाराज अभयसिंहजीने बीकानेरपर आक्रमण किया तो पुरोहितजीके कहनेसे महाराजने उनको खास रुक्का भेजकर सहायताके लिअे बुलवाया। स्वामीपर संकट पडा देख, अपने अपमानपर ध्यान न देकर, वे तुरंत ५००० सवार व पैदल सेना लेकर चल पडे। उनकी वीरताके कारण अभयसिंह को विफलमनोरथ होकर लौटना पडा।

९०—महाराज मानसिंह—ये आमेर (वर्त्तमान जयपुर-राज्य) के महाराज थे और सम्राट अकबरके अेक प्रधान सेनापति थे । बादशाहके दरबारनमे इनका बहुत ऊचा ओहदा था। बंगाल और काबुल जैसे दूर-दूर के प्रांतोंको जीतकर इन्होंने मुगल-साम्राज्यमे मिलाया। ये बड़े भारी दानी भी थे। हरिनाथ कविने इनकी प्रशंसामे दो दूहे पढ़कर अेक लाख रुपये दानमे पाये—

बलि बोई कीरति लता, करण करी द्वै पात।
सींची मान महीपने जब देखी कुँमलात ॥ १ ॥
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे, हेला दे नृप मान ॥ २ ॥

कहते है कि जब इनकी सेनाने अटक नदीको पार करके म्लेच्छ भूमि में जानेके लिअे अनिच्छा प्रकट की तो इनने नीचे लिखा दूहा कहकर उसे अटक पार जानेको राजी किया—

सबै भूम गोपाल़की तामें अटक कहा।
जाके मनमें अटक है, सोई अटक रहा॥

इनका विस्तृत इतिहास जयपुर-निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० अे० द्वारा लिखित और बिड़ला-कालेज-मेगेजीन (पिलाणी) के चौथे तथा पाँचवे भागमें प्रकाशित 'महाराज मानसिंह प्रथम' नामक निबंधमें देखिये।

९१—महाराज जयसिंह—(१६६८-१७२४) ये आमेरके महाराज वड़े प्रतापी हुअे। ये शाहजहाँ और औरंगजेबके सेनापति थे। शिवाजीको समझा-बुझाकर इन्होंने औरंगजेबके दरबारमें भेजा था। हिंदीके सुप्रसिद्ध कवि बिहारीलाल इन्हींके दरबारमे रहते थे। उन्हे प्रत्येक दूहेके लिअे अेक अशर्फी इनाममें मिलती थी।

९२—राव शेखाजी—ये राजस्थानमें अेक सुप्रसिद्ध वीर हो चुके हैं। जयपुर राज्यका पश्चिमोत्तर विभाग इन्हींके नामसे शेखावाटी कहलाता है। आमेर-जयपुरके महाराज उदैकरणके पुत्र बालाजी हुअे जिनके पुत्र मोकल़जीके पुत्र राव शेखाजी थे। मोकल़जीके वडी उम्र तक कोई पुत्र नहीं हुआ जिससे वे वड़ खिन्न थे। अंतमे शेख बुरहान नामक अेक फकीरके आशीर्वादसे उन्हे पुत्रप्राप्ति हुई जिसका नाम शेखा रखा गया। यह शेख तैमूरके साथ आया था और इसलामके प्रचारार्थ यहीं रह गया था। उसकी कब्र शेखावत राजपूतोंका तीर्थस्थान है। उसी कारणसे शेखावत सुअरका माँस नहीं खाते तथा हलालका माँस खा लेते है। बच्चेके गलेमें बद्दी तथा झंडेमें नीला निशान भी उसी फकीरकी यादगार है। शेखाजीने आमेरके महाराज चंद्रसेनको पराजित कर अपनेको स्वतंत्र बना लिया। गोड राजपूतोंसे उनने ११ लड़ाइयाँ लड़ीं और अन्तमें उनकी मृत्यु गोड़ोंकी लड़ाईमें ही संवत १५६६ मे हुई। इन लड़ाइयोंका कारण इस प्रकार था कि घाटवा नामक स्थानपर गोड़ अेक तालाब खुदवा रहे थे और उनने यह नियम बना दिया था कि जो कोई उधरके मार्गसे जाय अेक टोकरी

मिट्टी खोदकर अवश्य बाहर डाल दे। अेक राजपूत अपनी स्त्रीका गौना करवा कर जाता हुआ उधर आ निकला। गोडोंने उससे मिट्टी खोदकर बाहर डालनेको कहा और उसने अैसा कर दिया। पर गोड़ोंने उसपर दबाव डाला कि उसकी स्त्री भी अैसा करे। राजपूतने इसका विरोध किया पर उद्दंड गोड़ोंने उसकी अेक न सुनी। इसपर वह वीर अपनी स्त्रीकी मानरक्षाके लिअे प्राणोंपर खेल गया। उसकी विधवा नववधूने शेखाजीके पास जाकर अपना दुखडा रोया। इसपर शेखाजीने गोड़ोंपर आक्रमण किया। गोड परास्त तो हो गये पर शेखाजी भी वीरगतिको प्राप्त हुअे।

९३—राव शिवसिंह—ये शेखाजीके वंशज और शेखावाटीके अंतर्गत सीकरके राजा थे। इनने सं० १७७८ से १८०५ तक राज्य किया। ये बडे प्रतापी और प्रभावशाली नरेश हो चुके हैं। अेक बार जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजीके साथ शिवसिंह मालवाकी ओर जा रहे थे। मार्गमे मौजाबादमें पड़ाव हुआ। वहीं अजमेरसे मारवाड़-नरेश अभैसिंहजी भी आ मिले। वर्षाऋतु थी। अेक बार सात दिन लगातार वर्षा हुई। भोजन का प्रबंध कठिन हो गया और सब लोग व्याकुल हो उठे। यह देखकर रावजीने अपने खेमेमें कडाह चढ़वाकर खीचड़ा बनवाया। रावजीका यह नियम था कि भोजन बन जानेपर नगाड़ा बजाते थे जिसको सुनकर भोजन करनेवाले लोग आ पहुँचते थे और सबके भोजन करनेके बाद स्वयं भोजन करते थे। इस बार भी अैसा ही किया और नगारेका शब्द सुनकर जयपुर तथा मारवाडके सैनिक भी उनके डेरेमें पहुँच गये और खीचड़ा खाकर तृप्त होकर लौटे। फिर रावजीने दोनों नरेशोंसे भी पधारनेकी प्रार्थना की और तीनोंने मिलकर भोजन किया। इस पर प्रसन्न होकर जयपुर-नरेशने १००) रोजानेका रसोवड़ा खर्च और ६००) वार्षिक थालका नियत कर दिया। सीकर-राज्य के करमे यह ६००) की रकम अब भी जयपुरकी ओरसे मुजरा दी जाती है। इसीपर कविने यह दूहा कहा था। इस विपयके अेकाध दूहे और यहाँ दिये जाते हैं—

अभैसिंघ, जैसिंघ, हिंदू सै भेलौ हुवो ।
सुजस लियो सिवसिंघ सारो दौलतसिंघवत ।
मारू मेवाड़ाह, सोढा, जाडेचा समा ।
ढकिया, ढूँढाड़ाह, सुजस तिहारै, सेषसी ।

९४—सादूलसिंह—ये खेतड़ीवालोंके पूर्वज बड़े प्रतापी राजा हुए। इनने झूँझणूके कायमखानी नवाब रुहेलखाँको हराकर झूँझणू छीन लिया—

सत्रह सो सत्तासियै अगहण मास उदार ।
सादै लीनी झूँझणू सुद आठम सनिवार ॥

इसी प्रकार आसपासके मुसलमान शासकोंको हराकर इनने नरहड़, सिंघाणा, सुलताना आदि स्थान अपने अधिकारमें कर लिये। इनका देहांत १७९९ में हुआ। इनके विषयमें यह छंद प्रसिद्ध है—

इण राजा सादूल पकड़ बूँढी बिचलाई ।
इण राजा सादूल लंक जिम रिणी लुटाई ॥
इण राजा सादूल लिया बैराट सिंघाणा ।
इण राजा सादूल दिया नरहड सिर थाणा ॥

९५—जुझारसिंह—ये सादूलसिंहजीके दादा और उदयपुर (शेखावाटी) के राजा दानवीर टोडरमलके पुत्र थे। इनने गुढा नामक गाँव बसाया और वहीं रहने लगे। इनके पिताने मृत्युके पूर्व केड नामक गाँवको, जो मुसलमानोंसे अधिकारमें था, अपने अधिकारमें देखनेकी इच्छा प्रकट की। इनने झट केडपर धावा बोल दिया और उसे विजय कर लिया पर लौटनेके पूर्व ही पिताकी मृत्यु हो गई। मरते समय पिता अपनी खास ढाल-तरवार जुझारसिंहको दे गये।

९६—जोरावरसिंह—ये सादूलसिंहके बड़े बेटे थे। बड़वासीके नवाब मासुमखाँके हाथसे इनके मस्तकपर घाव हो गया जिसे लक्ष्य कर कविने यह दूहा कहा।

९७—अभयसिंह—इनने १८५७ से १८८३ तक खेतड़ीमें राज्य किया। मारवाड़मे भीमसिंहजी के बाद उनके भाई मानसिंहजी गद्दीपर बैठे। उसी समय मारवाडके कई सरदारोंने धोंकलसिंह नामक अेक दूसरा गद्दीका हकदार खड़ा किया जिसे वे भीमसिंहजीका पुत्र वतलाते थे। जयपुर और बीकानेरने धोंकलसिंहका पक्ष लिया पर अमीरखांके विश्वासघातके कारण उन्हे सफलता नहीं मिली। वचपनमे धोंकलसिंहको शरण देनेका साहस और किसीको नहीं हुआ पर अभयसिंहने उसे सम्मानसहित अपने पास रखा।

९८—सुलतानसिंह—ये फतहपुर (शेखावाटी)मे रहनेवाले गोड राजपूत थे। इनको आखेटका वडा दुर्व्यसन था। आखेट जाते समय मार्गमें अेक सांभासर गांव पड़ता था जहाँ बारहठ मुकनजी चारण रहते थे। वे सुलतानजीको सदा उपालंभ देते थे। अेक दिन सुलतानजीने कहा कि यह दुर्व्यसन तो मरनेतक मुझसे न छूटेगा, कोई अैसा उपाय बताइये जिससे मेरी सद्गति हो। बारहठजीने कहा कि धर्मयुद्धमे प्राण दीजिये। पीछे फतहपुरपर पचाधोंका आक्रमण हुआ तो सुलतानजीने उनका सामना किया और वीरगति पाई।

१००—ऊगो—यह गारापुर पाटणके राजा-वालाका छोटा भाई था। जूनागढगिरनारका राजा कैवाट सरवहियो इसका मामा था। कैवाटके कई सरदारोंने उससे राज्य छीननेका विचार किया पर ऊगेकी वीरताके कारण अैसा नहीं हो सका। तबसे उसके यहाँ ऊगेका प्रभाव चढ गया। अेक वार कोई सौदागर दो बहुमूल्य ढालें लाया और राजाकी नजर कीं। उनमेंसे अेक राजकुमारने और दूसरी ऊगेने ले ली। इसपर कैवाटने कहा—भाणेज, अेक हाथसे ताली वजाते हो। ऊगेने उत्तर दिया कि मेरे तो अेक ही हाथसे ताली वजती है, आप जब चाहे परीक्षा करके देख लें। इसके बाद कोइलापुर-पाटणके राजा अणंतराय सांखलेने कपटसे कैवाटको पकड़ लिया और उसे पिंजरेमे डाल दिया। पिंजरेको जमीनमें गडवा दिया और ऊपरसे मार्ग वहने लगा। ऊगेको यह बात मालूम हुई तो उसने मैंगल भाटको कैवाटका पता लगानेको भेजा।

कैवाटने मैंगल़से कहलवाया कि ऊगेको कहो कि अब अेक हाथसे ताली बजावे। फिर ऊगेने 'शठे शाठ्यं' वाली नीतिको लेकर गुप्तरूपसे अणॅतरायके नगरमें प्रवेश करके उसपर धावा बोल दिया और उसको पराजित कर कैवाटको छुड़ाया। कैवाटकी यह कहानी राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध है। (विशेषके लिअे देखो पं० सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित 'राजस्थानी वा़र्ता' नामक पुस्तकमें कैवाट सरवहियेकी वा़त)।

१०४—तगो—कहानियोंमें यह बादशाह अलाउद्दीनका अेक सरदार बताया गया है। जाल़ोरके राजाका भाई राणकदे बादशाहके यहाँ नजरबंद था। उसकी निगरानी तगेके सुपुर्द थी। अेक दिन तगेने राणकदेको तू कहकर पुकारा। तब पास बैठे आसे चारणने यह दूहा तगेसे कहा। इसपर राणकदेने कटारसे तगेको मार डाला।

१०५—रहीम—हिंदीका सुप्रसिद्ध कवि है। यह अकबरका सेनापति था। बड़ा दानी था। यह दूहा तथा आगे 'दानवीर' के ७ और ८ नंबरके दूहे जाडा नामक चारणके कहे है (आगे अैतिहासिकमें दूहा नं० ३६ देखिये।)

४—दानवीर

१—जाम ऊनड़—यह जाड़ेचा भाटी वंशका था और सिंधका राजा था। बड़ा भारी दानी हुआ है।

२—गोड़ व़छराज—यह अजमेरका राजा था। इसने अनेक अरब-पसाव दान दिये थे।

अड़ब-पसाव—अेक प्रकारका दान जिसमें अरब रुपये नकद; या हाथी-घोडे, जागीर आदि के रूपमें अरब का धन, दिया जाय। इसी प्रकार करोड़-पसाव और लाख-पसाव नामक दान होते है।

३—साँगो—गुजरातमें नागरचाल़ नामक गाँवमें रहनेवाला गोड़ राजपूत था। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी और वह भेड़ें चराकर किसी प्रकार निर्वाह करता था। अेक बार राजस्थानके सुप्रसिद्ध बारहट ईसरीदासजी उस गाँवमें जा निकले और साँगेके यहाँ ठहरे। साँगेकी

माताने बड़े कष्टसे भोजनकी सामग्री अेकत्र करके उन्हे भोजन करवाया। सांगेने (जिसकी अवस्था उस समय केवल १४ वर्ष की थी) बारहटजीसे अर्ज की कि इस समय तो आपको भेंट देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं पर जब मेरी भेड़ोंकी ऊन उतरेगी तो उसका कंबल बनाकर भेंट करूँगा। उसके हृदयकी उदारतासे बारहटजी प्रसन्न हुअे और वहांसे आगे पधारे। अेक दिन सांगा नदीके किनारे भेडें चरा रहा था तो नदीमें बाढ़ आई और सांगाको बहा ले गई। उस समय उसे बारहटजीके कंबल देनेकी बात याद आई। प्रतिज्ञाको अधूरी रहते देख उसे बडा दुःख हुआ। तब उसने चिल्लाकर यह दूहो कहा कि शायद कोई कहीं सुन रहा हो तो उसकी मातासे जाकर कह देगा। सांगेकी मृत्युसे माता बिलकुल ही निराश्रय हो गई पर पुत्रकी प्रतिज्ञा उसे सदा याद रहती। जब बारहटजी दुबारा आये तो माताने कंबल उन्हे भेंट किया। जब बारहटजीको रसोई परोसी गई तो उनने पूछा कि सांगा कहाँ गया? माताने पहले तो कहा कि आप भोजन कीजिये, वह यहीं कहीं गया है। पर बारहटजीने आग्रह किया तो बुढ़ियाने रोते-रोते सब हाल सुना दिया। कहते है कि यह बात सुनकर बारहटजी उसी समय नदीपार गये और सांगेको आवाज दी और उस आवाजको सुनकर सांगा नदीमे बहता हुआ बाहर निकल आया।

४—जगदेव पवार— यह धारके राजा उदयादित्यका छोटा पुत्र था। सौतेली माताके व्यवहारसे दुखी होकर गुजरातके राजा सिद्धराज जयसिंह सोलंकीके यहाँ चला गया। यह बडा वीर तथा दानी हुआ है। लोक-कथाओंमे इसकी बडी प्रशसा गाई गई है। कहा जाता है कि अेक बार देवीने कंकाली भाटिनी बनकर जयसिंहके आगे जगदेवकी दानवीरताकी बड़ाई की जिसपर जयसिंहने कहा कि तु जगदेवके पाससे दान ले आ, मैं उसका चौगुना दूंगा। भाटिनीने यह बात जगदेवसे कही। जगदेवने सोचा कि और किसी दानमें तो राजासे बढ़ नहीं सकता अतः शीशदान ही देना चाहिअे। भाटिनी जगदेवका सिर थालीमें लेकर जा रही थी कि मार्गमे

जगदेवका भानजा मिला। उसने भी अपना अेक नेत्र निकालकर थालीमें रख दिया। भाटिनीने राजाके पास जाकर कहा कि अब जगदेवसे चौगुना दान दो। राजाने रानी तथा कुमारसे सलाह की पर वे अपना सिर देनेको तय्यार न हुअे। राजा पराजित हुआ।

५—करणसिंह—यह वीकानेरके महाराज लूणकरणका बेटा था। बड़ा दानी था। अेक चारणको करोड़-पसाव नामक दान दिया। जो कुछ पास था वह सब दे चुकनेपर भी जब करोड़की रकम पूरी नहीं हुई तो उसने वाकी रकमके बदले अपने दो लड़के चारणको दे दिये।

६—रायसिंह—ये वीकानेरके महाराज थे। बड़े वीर, दानी और प्रतापी हुअे हैं। अकबरके सेनापति थे तथा बादशाहके दरबारमें जयपुरवालोंके बाद उन्हींका दर्जा था। इनने अेक चारणको करोड़का दान दिया और रुपया लेनेके लिअे खजानचीके पास भेजा। खजानचीने इतनी बड़ी रकम देनेमें आनाकानी की तो चारण महाराजके पास लौट आया। तब महाराजने उसे चोथाई करोड और मिलाकर कुल सवा करोड़ रुपये अपने सामने दिलवाये।

९—किशनसिंह—ये शेखावाटीके सुप्रसिद्ध वीर सादूलसिंहजीके पुत्र और खेतड़ीके स्थापक राव भोपालसिंहजीके पिता थे। इनकी राजधानी झूंझणू थी। ये बड़े दानी और उदार थे। अपने भाईकी बेटीके विवाहमें इनने राजगढका परगना वीकानेर-नरेशको दहेजमें दिया था। सं० १८०२ में इनका देहांत हुआ।

१२—जगतसिंह—ये उदयपुरके राणा थे। इनने १६८४ से १७०९ तक राज्य किया। ये बड़े उदार और दानी थे। अनेकों देवमंदिर बनवाये तथा कई तुलादान किये। महाराणा राजसिंह इन्हींके पुत्र थे।

१६—भीमसिंह—ये उदयपुरके महाराणा (१८३४—१८८५) थे। बड़े दानी, उदार और बलवान् थे। इनकी उदारताकी कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं—

(१) अेक बार महाराणा सो रहे थे और अेक सेवक पैर दबा

रहा था। महाराणाके पैरमें सोनेका छल्ला था। सेवकने उसे निकाल लेना चाहा पर बीचमें अटक जानेसे वह नहीं निकला। तब सेवकने थूक लगाकर उसे निकाल लिया। इसपर महाराणा जाग पड़ा और बोला—छल्ला निकालना था तो यों ही निकाल लेता, मेरा पैर क्यों अपवित्र किया। फिर उठकर स्नान किया पर सेवककी निर्धन स्थिति देखकर उसे कोई दंड नहीं दिया।

(२) अेक चारण अेक बार अपनी कन्याके लिअे रुपये माँगने आया। महाराणाने उसे दे दिया। इसी तरह दो रोज फिर आया पर यह जानते हुअे भी कि यह झूठा है, महाराणा उसे रुपये देता रहा। इससे चारण लज्जित हुआ और चौथे रोज सारा धन लाकर महाराणाके सामने रख दिया और कहा कि मैं तो आपकी परीक्षा करता था, राज्यकी अैसी स्थितिमें भी आपकी उदारतामें कोई कमी नहीं हुई। यह कहकर चारण धन लौटाने लगा पर महाराणाने दिया हुआ धन वापिस नहीं लिया, उलटा उसे और भी दिया।

(३) कविता बनाकर लानेपर महाराणाके दरबारसे कई चारणोंको पुरस्कार मिला पर अेक चारणको कुछ भी न मिला। वह दूसरोंसे कहने लगा कि तुमने तो प्रशंसा करके दान पाया है मैं निंदा करके दान लूंगा। अेक रोज जब राणाजीकी सवारी कहीं जारही थी तब उसने मार्गमे खड़े होकर यह पद पढ़ा—

भीमा, तू भाठो मोटा मगरा मॉयलो।

इसपर लोगोने उसे फटकारा पर राणाने कहा कि कहने दो, शायद इसके चित्तमें कोई भारी दुःख है। तब चारणने दूसरी लाइन पढ़ी—

कर राखूं काठो सकर ज्यूं सेवा करूं॥

राणाने प्रसन्न होकर उसे औरोंकी अपेक्षा दुगुना दान देकर बिदा किया।

१८—ठाकुर खंगारसिंह— अेक बार कोई बारहट (चारण) इनके यहाँ

आकर ठहरे। आधी रातके समय उनने अपने सोये हुअे नौकरसे हुक्का भरकर लानेको कहा। नौकरको नहीं उठता देखकर ठाकुर साहब स्वयं हुक्का भर लाये। बारहटजीने देरी होनेके कारण, उन्हे अपना नौकर समझ-कर, दो-चार कोरड़े मार दिये। ठाकुर साहब कुछ नहीं बोले और जाकर सो गये। प्रात.काल बारहटजीने नौकरको फिर रातकी देरीके लिअे धमकाया। उसने कहा कि बारहटजी, मैं तो रातको उठा ही नहीं, हुक्का कौन लाया ? सच्चा हाल मालूम होनेपर उन्होंने यह दूहा कहा।

---

(४) अैतिहासिक और भौगोलिक

१—अैतिहासिक

१—हाडा –यह चोहाण राजपूतोंकी अेक शाखा है। हाडोंकी वर्त्तमान रियासतें बूँदी और कोटा है।

देवड़ा—यह भी चोहाणोंकी शाखा है। इनकी रियासत आजकल सिरोही है।

राठोड़—इनके मुख्य राज्य आजकल जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, सीतामऊ, सैलाणा आदि हैं।

रणबंका राठोड़—यह वाक्य जोधपुर-राज्यका सिद्धान्त-वाक्य अर्थात् मोटो Motto है।

२—चूडो—यह महाराणा लाखाका ज्येष्ठ राजकुमार था। यह राजस्थानका भीष्म कहा जाता है। अेक बार मारवाड़के राव रणमलने अपनी बहन हंसबाईकी सगाईका नारियल कंवर चूँडाके लिये भेजा। दरबारमें राणाने हँसीमे कहा कि जवानोंके लिअे नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढोंके लिअे कौन भेजे ? पिताकी यह बात सुनकर चूँडाने राव रणमलसे कहलाया कि अपनी बहनका विवाह महाराणाके साथ कर दीजिये। रणमलने कहा कि अैसा होनेसे मेरे भानजेको राज्य नहीं मिल

सकता क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र तो आप हैं। इसपर चूँडाने राज्यका अधिकार छोड़ देनेका प्रतिज्ञापत्र लिख दिया और पिताको उनकी इच्छाके विरुद्ध नया विवाह करनेको बाध्य किया। तबसे महाराणाकी ओरसे दिये हुअे पट्टे-परवाने तथा सनदों आदिपर भालेका चिह्न बनानेका अधिकार चूंडा और उसके मुख्य वंशधरको दिया गया।

शेखो—ऊपर वीर-रस में 'विशेष वीर' का दूहा नं० ६२ देखिये।

आमेर—जयपुर-राज्यकी प्राचीन राजधानी आँबेर थी अतः समस्त राज्य आँबेर-राज्य कहलाता था।

दूदा—यह जोधपुर बसानेवाले राव जोधोजीका पुत्र और राव बीकोजीका छोटा भाई था। इसने मेड़ताको जीतकर वहाँ अपना निवास बनाया। जोधपुरमे यह प्रसिद्ध वीर हो चुका है। चित्तोड़का रक्षक जयमल इसका पौत्र था तथा भक्तशिरोमणि मीरांबाई इसकी पौत्री थी।

बीदो—यह राव जोधोजीका पुत्र तथा राव बीकोजीका सगा भाई था। जोधोजीने इसे मोहिलवाटीका शासक नियत किया और इसने मोहिलोंको अधीन करके सारी मोहिलवाटीपर अधिकार कर लिया। यह प्रदेश इसके नामपर अब बीदावाटी कहलाता है। आगे चलकर बीदोजीने बीकोजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। बीदावत ठाकुर बीकानेरके ४ सिरायतोंमें से हैं और महाजनके बाद उसीका स्थान है।

३—पातलियो—यह प्रतापका दूसरा रूप है। रावराजा प्रतापसिंह जयपुर-महाराज उदयकरणजीके वंशज थे। वर्त्तमान अलवर राज्यकी स्वतंत्र स्थापना इन्होंने की।

माधो—महाराज माधवसिंह जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहके छोटे पुत्र थे। इनकी माता उदयपुर राजवंशकी थी जिसके विवाहके समय यह निश्चय हुआ था कि उसीका पुत्र जयसिंहके बाद गद्दीपर बैठेगा चाहे वह बड़ा पुत्र न भी हो। जयसिंहकी मृत्युके बाद सरदारोंने ज्येष्ठ पुत्र ईसरीसिंहको गद्दीपर बिठाया। मेवाड़के राणाने माधवसिंहका पक्ष लिया। बहुत समय तक

युद्ध होता रहा। अंतमें ईसरीसिंहके विष द्वारा आत्महत्या कर लेनेपर माधवसिंह राजा हुअे। इनने सं० १८१६ मे मराठोंसे रणथंभोर किला जीता।

३—बखतावर—ये खेतड़ी-नरेश अभयसिंहके पुत्र थे। सं० १८८३ से १८८६ तक इनने खेतड़ीका राज्य किया। पिताके जीवनकालमें इनने धूलाके राजावत सरदारसे बाघोरका किला जीता था।

४—नाग—यह भारतवर्षकी अेक अत्यन्त प्राचीन जाति थी जो संभवतः अनार्य थी। इसका राज्य समस्त भारतमें था अैसा जान पड़ता है। राजस्थानमें पहले इन्हींका प्रभुत्व था और नागोर इन्हींका बसाया बताया जाता है। परमारोंने इनका राजस्थानका राज्य नष्ट कर दिया।

५—पँवार—इनको प्रमार या परमार भी कहते है। प्राचीन कालमें इनका राज्य बहुत विस्तृत था। संवत् चलानेवाले विक्रमादित्य और भोज आदि सुप्रसिद्ध राजा इसी वंशके थे। मारवाड़में पहले इनके नौ राज्य थे जिससे अब भी 'नौ-कोटी मारवाड़' की कहावत प्रसिद्ध है।

६—ज्याँ पवार त्याँ धार है—इस पर अेक कथा है कि धाराके अेक पँवार राजाने जेसलमेरके अेक व्यापारीको पकडकर उसका सब धन ले लिया। छूटनेपर वह जेसलमेरके राजा देवराजके दरबारमें जाकर पुकारा। देवराजने अपनी प्रजाके अपमानको अपना ही अपमान समझा और तुरंत प्रतिज्ञा की कि जबतक धाराको न जीत लूँगा तबतक जल भी नहीं पियूँगा।

धारा जेसलमेरसे बहुत दूर थी और फिर जाते ही उसे जीत लेना भी असंभव था। तब तक बिना जल पिये रावलजी कैसे जीवित रहेंगे यह सोचकर सारे सरदार चिंतित हुअे। अंतमें अेक उपाय सोचा गया कि मिट्टीकी धारानगरी बनाई जाय और राजा उसे ही विजय कर जलपान करे तथा बादमें धारापर आक्रमण करनेकी तय्यारी की जाय। समझानेपर रावलने यह सलाह मान ली। धाराका मिट्टीका दुर्ग बनाया गया और रावलके यहाँ रहनेवाले पँवार सरदार उसकी रक्षाके लिअे

तय्यार हुअे। रावल् सेनाके साथ दुर्गको ध्वस्त करनेके लिअे आये तो पॅवार सरदार तेजसी और सारंगने सचमुचका युद्ध छेड़ दिया। लोगोंने समझाया तो बोले कि धारा हमारी मातृभूमि है, उसका नाश हम नहीं देख सकते चाहे वह कृत्रिम ही क्यों न हो, जब तक अेक भी पॅवार जीवित है तब तक रावल् इस दुर्गको विजय नहीं कर सकते—जहाँ धारा है वहाँ पॅवार है और जहाँ पॅवार है वहाँ धारा है। अंतमें लड़ते हुअे सारे पॅवार योद्धा मारे गये अेवं उसके बाद ही रावल् उस नकली दुर्गको विध्वस्त कर सके। धन्य है इन वीरोंका अभूतपूर्व मातृभूमि-प्रेम !

७—यह जूनागढ गिरनारके चूडासमा राजा खेंगारकी रानी राणक देवडीका कथन है।

राणक देवड़ी—यह सोरठ जूनागढके राणा खेंगार चूडासमाकी रानी थी। इसके विषयमे यह दूहा प्रसिद्ध है—

जाई ती देवगणा, पाळी आण कुँभार।
मन राख्यो जेसिघदे, परणी रा' खेगार॥

खेंगारकी गुजरातके राजा सिद्धराज जयसिंहके साथ शत्रुता थी। अपने भानजेके विश्वासघातसे सिद्धराजके आक्रमणमें खेंगार मारा गया और राणक देवडी सिद्धराजके हाथमे पडी। सिद्धराजने उसे अपनी रानी होनेके लिअे कहा और राणकके अस्वीकार करनेपर उसके सामने ही उसके पुत्र माणेराको मार डाला और राणकको पकड ले गया। पर अंत मे उसने उसे सती होनेकी अनुमति दे दी। इस कथापर कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीने गुजरातीमे गुजरातनो नाथ और राजाधिराज नामक दो बड़े ही सुंदर उपन्यास लिखे हैं।

गिरनार—सोरठमें अेक पहाड।

८—माणेरा—यह राणक-देवड़ीका पुत्र था। खेंगारके मारे जानेपर सिद्धराज महलोंमे घुस आया तो माणेराने अपनी छोटी-सी तलवारसे सिद्ध-राजपर वार किया। सिद्धराजने राणकके सामने ही निर्दयतासे उसे मार डाला।

१०—रावळ भोजदेव—ये भाटी राजपूत और लोद्रवा के (जिसे अब जेसळमेर कहते हैं) राजा थे। इनके चाचा जेसळ राज्यको अपने हाथ में करना चाहते थे। और कोई उपाय न देख राव जेसळ शहाबुद्दीन गोरीके पास पहुँचे और उसके सेनापति मजेजखाँको चढ़ा लाये। भीषण युद्ध हुआ जिसमें भोजदेव काम आये। ये संवत् १२०४ में गद्दीपर बैठे थे।

११—भटियाणी राणी—यह जेसळमेरके राव लूणकरणकी कन्या थी। इसका नाम ऊमादे था। जोधपुरके महाराज मालदेवके साथ इसका विवाह हुआ था (स० १५९३)। कारण-वश विवाहके बाद ही उसने पतिसे न बोलनेकी प्रतिज्ञा कर ली। महाराज विवाहके बाद लौट आये और कुछ समयके बाद बारहट आसेजीको भटियाणीको लानेके लिअे भेजा। भटियाणी आ तो गई पर अपने हठपर कायम रही। उस समय बारहटजी ने यह दूहा कहा। सुनकर रानीने हठपर दृढ़ रहनेका ही निश्चय किया और जन्म भर पतिसे संबंध न रखा। संवत् १६१९ में रावजीकी मृत्यु होनेपर उनके साथ सती हुई।

१३—ईश्वरीसिंह—ये सवाई जयसिंहके बड़े राजकुमार थे और उनके बाद जयपुरकी गद्दीपर बैठे। इनके सौतेले भाई माधवसिंहने गद्दीपर अपना दावा किया। अंतमें स्वामिभक्त मंत्री केशोदासके प्रयत्नसे संधि हो गई। पर हरगोविंद नाटाणी नामक अेक धूर्तके बहकावेमे आकर ईसरीसिंहने अपने योग्य मंत्री केशोदासको विषका प्याला पिलाकर मार डाला और नाटाणीको मंत्री बनाया। इसके बाद माधवसिंहने मराठोंकी सहायता लेकर जयपुरपर धावा कर दिया। धोखेबाज नाटाणीने महाराजको बहकावेमें रखा और सामना करनेकी कोई तय्यारी न की। जब मराठे शहरके भीतर आ गये तो महाराजको धोखेका पता चला और कोई दूसरा उपाय न देखकर स्वयं विषपान द्वारा आत्महत्या कर ली।

१५—केसरीसिंह—ये खंडेला (जयपुर) के राजा थे। इनका विवाह बीकानेरकी राजकुमारीसे हुआ था। विवाहके समय अेक चारणको यथेष्ट

दान नहीं मिला जिससे नाराज होकर उसने यह दूहा कहा। उसका यह कथन सत्य सिद्ध हुआ। अजमेरके सूबेदारने खंडेलेपर चढ़ाई की। युद्धमें केसरीसिंह वीरताके साथ लडते हुअे मरे और बीकावतजी सती हुईं (अग्निमे जली)।

१६—राणा राजसिंह—ये उदयपुरके सुप्रसिद्ध राणा औरंगजेबके समयमे हुअे थे और उससे कई लड़ाइयाँ लडे (देखो पीछे विशेषवीरमें दूहा नं० ७२)।

१७—अड़सी—इन्होंने सं० १८१७ से १८२६ तक उदयपुरका राज्य किया। राज्यके कई सरदार इनके तेज स्वभावसे नाराज होकर गद्दीके अेक दूसरे हकदार रतनसिंहके पक्षमे हो गये। रतनसिंहकी सेनामे नागोंकी पलटनें थीं। युद्धमे महाराणाकी विजय हुई और बहुत-से नागे मारे गये।

१८—मेवाडके सिरायत—सिरायत प्रधान सरदारोंको कहते हैं। मेवाडके १६ सिरायत नीचे लिखे अनुसार हैं—

(क) तीन झाला राजपूत—१ सादडी २ गोघूँदो ३ देलवाडो। (ख) तीन चोहाण—१ कोठारयो २ बेदलो ३ पारसोली। (ग) चार चूँडावत सीसोदिया—१ सलूबर २ देवगढ ३ बेगूं ४ आमेट। (घ) दो शक्तावत सीसोदिया—१ भींडर २ बानसी। (ङ) दो राठोड—१ घाणेराव २ बदनोर। (च) अेक सारंगदेवोत—कानोड। (छ) अेक पंवार—बीजोलियाँ।

१९—ईंदा—ये पडिहार राजपूत हैं। पहले मंडोर इनके अधिकारमें था। पीछे राठोड राव चूँडाके साथ इन्होंने अपनी कन्याका विवाह किया और दहेजमें मडोर दिया जो उस समयसे राठोडोंकी राजधानी हुई। पीछे जोधाजीने जोधपुर बसाया और उसे राजधानी बनाया। मंडोर हाथमे आनेके पूर्व राठोडों का राज्य अस्तव्यस्त था। छोटे-छोटे ठिकाने उनके हाथमें थे पर उनका प्रभुत्व विशेष न था। मंडोर हाथमें आनेसे उनका प्रभुत्व बढ़ गया और तभीसे वे राजस्थानमे जोर पकड़ने लगे।

२०—सीहोजी—ये कन्नोजसे मारवाड़में आये और यहाँ राठोड़ोंका राज्य स्थापित किया। भीनमालके ब्राह्मणोंपर मुसलमान अत्याचार करते थे। सीहाजीने उन्हे परास्त करके भगा दिया।

२१—चूँडोजी—ये राठोड़ राव वीरमके बेटे थे। राठोड़ोंका वास्तविक महत्त्व इन्हींके समयसे आरंभ हुआ। इनके पुत्र राव रणमल और पौत्र राव जोधा थे। जब ये छः वर्षके थे तब इनके पिता जोइयोंके युद्धमें मारे गये (सं० १४४०)। इनकी माता इनको लेकर काळाऊ ग्राममें आल्हा चारणके घर रहने लगी। उसने अपना भेद किसीको नहीं बताया। अंतमें भेद जानकर आल्हा चारणने होनहार बालकको उसके बाबा (पिताके बड़े भाई) मल्लीनाथजीके पास पहुँचा दिया जो उस समय मारवाड़के राव थे। मल्लीनाथजीने चूडाको सालवड़ी गाँव दिया। परंतु उसके सहिसिक कार्योंसे तंग आकर उन्होंने उसे बिदा कर दिया। पहले मंडोरमें पड़िहारोंका राज्य था पर मुसलमानोंने उसे छीन लिया था। सं० १४५१ में पडिहार राणा उगमसीने मंडोर मुसलमानोंसे छीन लिया पर उसकी रक्षामें अपनेको असमर्थ पाकर अपने कुटुंबी राव धवळकी कन्यासे चूँडाका विवाह करा दिया और मंडोर उसे दहेजमें दे दिया। चूँडोजीने उसे अपनी राजधानी बनाया और मारवाड-राज्यकी नवीन शाखाका प्रारंभ किया। मल्लीनाथजीके पुत्र राव जगमलके बाद उनका राज्य छोटे-छोटे टुकडों में बंट गया और मंडोरका राज्य राठोड़ोंका मुख्य राज्य हो गया। राव चूँडाने अपने राज्यका खूब विस्तार किया। भाटियों और मोहिलोंके युद्धमें ये पूगळके भाटी राव केल्हणके हाथों संवत् १४८० में मारे गये।

गोगादे—ये राठोड़ राजपूत और मारवाड़के राव चूँडाके भाई थे। गोगाजीका जोइया राजपूतोंसे वैर था। जोइयोंने उनके पिता वीरमको मार डाला था अतः गोगाजीने उनपर आक्रमण करके पिताका वदला लिया। जब गोगाजी लौट रहे थे तो मार्गमें अेक तालावपर विश्राम किया

और घोड़ोंको थका समझकर चरनेको छोड़ दिया। वे हरा घास चरते-चरते दूर निकल गये। पीछेसे जोइयोंने गोगादेजीको आ दबाया। उन्होंने घोड़ोंको बहुत बुलाया पर वे नहीं आये और गोगादेजी लडते हुअे मारे गये (सं० १४४०)।

२३—महाराज रामसिंह—ये जोधपुरके महाराजा थे। इन्होंने सं० १८०६ से १८०८ तक राज्य किया। इनके मूर्खतापूर्ण कार्योंसे तंग आकर सरदारोंने इनके चाचा बखतसिंहको नोगोरसे बुलाकर जोधपुरका राजा बनाया। रामसिंहका जीवन बखतसिंह और उनके पुत्र विजयसिंहसे लडते ही बीता। इनके विषयमें अनेक कहानियाँ लोगोंमे प्रचलित हैं।

२४—जोधपुरके बड़े-बड़े सरदार महाराज विजयसिंहजी के विरुद्ध हो गये थे। सं० १८१५ मे वे युद्ध के लिअे बीसलपुरमें अेकत्र हुअे पर महाराज उन्हे मना लाये। सं० १८१६ में महाराजके गुरु आत्मारामका किलेमे स्वर्गवास हो गया। महाराजने बड़े-बडे मुखिया सरदारोंको, उन्हे मिट्टी देनेके बहानेसे, किलेमे बुलाया और कैद कर लिया। इनके नाम इस प्रकार थे— (१) रास-ठाकुर केसरीसिंह, (२) पोकरण-ठाकुर देवीसिंह, (३) आसोप ठाकुर छत्रसिंह और (४) नीमाज-ठाकुर दोलतसिंह जो केसरीसिंहका बेटा था और नीमाज गोद गया था।

२५—महाराज रायसिंह—इन्होंने सं० १६२८ से १६६८ तक बीकानेरमे राज्य किया। अकबरके दरबारमे जयपुरवालोंके बाद इन्हीं का दर्जा था। ये बडे भारी दानी थे। इन्होंने करोडपसाव नामक दान दिया था (देखो दानवीरमें दूहा नं० ६) । जब ये दक्षिण गये तो अेक फोगके पेड़को देखा। अपने देशका बूटा समझकर घोडेसे उतरे और बूटेसे गले लगकर मिले और यह दूहा कहा।

२७—महाराज जोरावरसिंह—ये बीकानेरके राजा थे। जोधपुर-नरेश अभयसिंहने अेक भारी फोज लेकर बीकानेरपर आक्रमण किया उस संबंधके ये दूहे है।

२८—जयसिह—जयपुर-नरेश महाराज सवाई जयसिह ।

२६—सवाई जयसिहका उत्तर ।

३०—पृथ्वीराज राठोड़—ये महाराज रायसिहजीके छोटे भाई थे। अकबरके दरबारमें रहते थे पर अपनी परतंत्रता उन्हे बहुत अखरती थी। महाराणा प्रतापके बादशाहसे संधिकी प्रार्थना करनेपर इन्होने अपने पत्र द्वारा उनको फिर स्वातंत्र्य-रक्षाके लिअे सन्नद्ध किया था (यह पत्र पीछे प्रतापसिहके वर्णनमें दिया गया है)। ये बड़े ऊँचे दर्जेके कवि थे। कृष्ण-रुकमणीरी वे़लि, जिसको वे़ल भी कहते है, इनका सुप्रसिद्ध डिगल़ काव्य है (इस काव्य का अेक बडा सुंदर संस्करण हिंदुस्तानी अेकेडेमी, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित हुआ है)। इनका विवाह जेसल़मेरके रावल़ हरराजकी कन्याओं लालादे और चंपादेके साथ हुआ था। कहा जहा है कि उदयपुरकी अेक राजकुमारीके साथ भी इनका विवाह हुआ था। लालादे की मृत्युपर इन्होंने नीचे ३२ नंबरवाला दूहा कहा था। ये बड़े भारी हरिभक्त थे । नाभादासने अपनी भक्तमालमें इनका उल्लेख किया है।

३१—पृथ्वीराज कल्याणरा इ०—कहते है कि पृथ्वीराजजीकी स्मरणशक्ति बड़ी तेज थी। कोई कवि इनामकी आशासे कुछ बनाकर लाता और इन्हे सुनाता तो सुनकर तुरंत उस कविताको दुहरा देते और कहते कि यह तो पुरानी कविता है। अंतमें अेक चारणने सोचकर यह दूहा बनाया और इन्हे सुनाया तथा पुरस्कार पाया।

३२—लालादे—यह जेसल़मेरके रावल़की कन्या और पृथ्वीराजकी पत्नी थी। उसकी मृत्युके बाद चिता जलते समय पृथ्वीराजने यह दूहा कहा।

३५—जयसिह—महाराज सवाई जयसिह जिन्होंने सं० १७५६ से सं० १८०० तक राज्य किया था। जयपुरको इन्होंने बसाया था। इन्होंने अपने पुत्र शिवसिहको विष देकर हत्या की थी।

वखतसिंह—ये जोधपुर-महाराज अजीतसिहके छोटे पुत्र थे। इन्होंने अपने बड़े भाई अभयसिहके कहनेसे अपने पिताको विप दे दिया था। पहले

ये नागोरके राजा थे । बादमें अभयसिंहके पुत्र रामसिंहकी मूर्खतासे रुष्ट होकर सरदारोंने इन्हे जोधपुरका राजा बनाया। आगे उपालंभके ४२ और ४३ नंबरके दूहे देखो।

पत-जयपुर जोधाण-पत ३०—अेक बार जयसिंह और अभयसिंह दोनों पुष्करमें साथ बैठे थे। वहाँ करणीदान नामके चारण भी उपस्थित थे। दोनों राजाओंने करणीदानसे कुछ सुनानेके लिअे आग्रहसे कहा जिसपर उन्होंने यह स्पष्टोक्ति सुनाई।

३७—मुहणोत नैणसी—यह जातिका ओसवाल था और जोधपुरके महाराज जसवंतसिंहजीका दीवान था । बड़ा वीर तथा विद्यानुरागी था। इसकी बनाई ख्यात, जो 'मुहणोत नैणासीरी ख्यात' के नामसे प्रसिद्ध है, अेक अत्यंत महत्वपूर्ण अैतिहासिक ग्रंथ है । उसमे उस समय तकका राजस्थान और राजपूत वंशोंका इतिहास खूब विस्तारसे दिया हुआ है । जोधपुर राज्यका सर्वसंग्रह (गेजेटियर) नामक अेक और भी ग्रंथ उसने लिखा था।

संवत् १७२३ की पोह सुद ६ को महाराज जसवंतसिंहजीने किसी कारणवश नैणसीको और उसके भाई सुंदरदासको कैद कर दिया। फिर संवत् १७२५ मे अेक लाखका दंड करके दोनोंको छोड दिया पर नैणसीने अेक पैसा भी देना स्वीकार नहीं किया जिस विषयमें ये दूहे अभी तक प्रसिद्ध है। दंड न देने पर वे फिर कैद कर लिये गये। संवत १७१७ मे नैणसीने पेटमे छुरी मारकर अपना शरीरात किया।

३६—जाडा चारणने रहीमकी प्रशंसामें दूहे बनाये (देखिये विशेष वीर नं० १०५ और दानवीर नं० ७-८) जिसपर रहीमने पुरस्कार देकर यह दूहा कहा।

४०—बीरबल—यह ब्राह्मण जातिका और सम्राट् अकबरका दरबारी था। बुद्धिमानी और हाजिरजवाबीके लिअे इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। बीरबलविनोद, अकबर और बीरबल आदि कई पुस्तकें इस विषयमें छपी है। संवत् १६४० में अफ़गान-युद्धमे यह मारा गया। यह बड़ा भारी वीर,

दानी तथा कवि भी था। उसकी मृत्युपर अकबरने यह दूहा कहा था। नीचे लिखा दूहा भी अकबरका कहा हुआ बताया जाता है—

दीन जानि सब दीन, अेक न दीनो दुसह दुख।
सो बिछुरत हम दीन, कछु नहि राख्यो बीरबर॥

(बीरबलने दीनोंको सब कुछ दे दिया केवल अेक चीज नहीं दी थी यानी दुस्सह दुःख। वह भी मरकर उसने मुझे दे दिया। सो उस दानीने अपने पास कुछ भी नहीं रखा)।

तानसेन—यह भी अकबरका दरबारी था। यह ग्वालियरका निवासी और पहले हिंदू था फिर मुसलमान बना लिया गया। तानसेन भारतवर्षके महान् संगीतज्ञोंमें ऊँचा आसन रखता है।

४१—हत्यारो ऊदो—यह महराणा कुंभाका बड़ा लड़का था। इसने संवत् १५२५ में अपने पिताको कटारसे मार डाला और मेवाड़का राज्य अपने हाथमें किया पर मेवाड़के सरदारोंने पितृघातीका पक्ष नहीं लिया और उसके छोटे भाई रायमलको बुलाकर राणा बनाया। ऊदा हारकर मांडूके सुल्तानकी शरणमें गया और अपनी पुत्री देनेका वचन देकर सहायता माँगी। बातचीत करके ज्योंही डेरेके बाहर हुआ त्योंही उसपर बिजली गिरी और वह मर गया। सुलतानने उसके लड़कोंको लेकर मेवाड़-पर आक्रमण किया पर पराजित हुआ।

४२—बखतसिंह—ऊपर दूहा नं० ३५ देखो। अेक बार बखतसिंह अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर बिड़दा रहे थे तब किसी स्पष्टवक्ता चारणने यह दूहा कहा था।

४४—जगरामसिंह—संवत् १८११ में जोधपुरके महाराज विजयसिंह का मराठोंके साथ युद्ध हुआ। उस युद्धमें ठाकुर महेशदास बड़ी वीरतासे लड़कर काम आया पर जगरामसिंह परास्त होकर भाग आया। तो भी महाराजने उसे आसोपका पट्टा देनेका विचार किया और महेशदासकी वीरताकी कोई कदर नहीं की। इसपर किसी चारणने यह दूहा कहा। जिस

पर महाराजने आसोप जगरामसिहको न देकर महेशदासके नावालिग बेटेको दिया।

४५—फिट वीदाँ इ०—वीकानेरके महाराज दलपतसिहको जहाँगीरने अजमेरमें कैद कर दिया और वीकानेरका राज्य उनके छोटे भाई सूरसिंहको दिया। वीकानेरके सरदारोंने अपने महाराजको कैद होने दिया और उन्हे छुडानेके वास्ते कोई प्रयत्न न किया इसलिअे कवि इस दूहेके द्वारा उनको फटकारता है।

जब महाराज कैदमे थे उस समय चाँपावत हाथीसिह अपनी ससुरालको जाता हुआ उधरसे निकला। महाराजकी अेक दासीने उसके किसी आदमीसे पूछा कि ये कौन सरदार है। जिसपर आदमीने उत्तर दिया कि राठोड है। दासीने व्यंगसे कहा कि क्या पृथ्वीपर अभीतक कोई राठोड़ जीवित विद्यमान है ? यह बात हाथीसिह तक पहुँची। उसने दासीसे सब हाल पूछा और महाराजके कैद होनेकी बात जानकर कहा कि अभी तो मैं ससुराल जात हूँ लौटकर महाराजको छुडाऊँगा। दासीने कहा कि यह काम ससुरालका आनंद मनानेवालोंसे नहीं हो सकता। हाथीसिहको यह बात चुभ गई और उसी दम महाराजको छुडानेके लिअे तय्यार हो गया। बडी भारी लड़ाई हुई जिसमें हाथीसिह और महाराज दलपतसिंह दोनों काम आये। यह हाथीसिह प्रसिद्ध वीर वल्लूसिहका भाई था।

४७—मल्हारराव होलकर इंदोरका मराठा राजा था। उस समय राजपूतानेकी हालत वहुत खराब थी। आपसमें वैर-विरोध होनेके कारण सिंधिया और होलकरने खूब लूटमार मचा रखी थी। संवत् १८०८ मे मल्हारराव होलकरने राजस्थानके राजाओंको दवाकर उन्हे अेक अैसा संधिपत्र मंजूर कर लेनेको विवश किया कि जिससे उनके गौरवकी हानि होती थी। उसी समय किसी चारणने यह दूहा कहा था

(५) हास्य और व्यंग

२—जनरल सर प्रताप—ये जोधपुरके महाराज तखतसिंहजीके दूसरे पुत्र और महाराजा जसवंतसिंहजीके छोटे भाई थे। इनका जन्म संवत् १६०२ में हुआ था। ये बड़े वीर और प्रतापी थे। गवर्नमेंटने इनको ईडरका राज्य दिया। जोधपुर-राज्यके महाराजाओंको नाबालिगीमें ये तीन बार रीजेंट—राज्य-प्रबंधक—रहे। ये स्वामी दयानन्दके अनुयायी थे। जोधपुर राज्यमें इन्होंने अनेक सुधार किये। यूरोपीय महायुद्धमें अपने पौत्र महाराज सुमेरसिंहजीके साथ सम्मिलित हुअे थे। ये डाढ़ी-मोंछ मुंड़ाये रहते थे जिसपर कविने यह दूहा कहा।

३—महाराणा सज्जनसिंह (१६१६-.६४१)—इन्होंने संवत १६३१ से १६४१ तक मेवाड़में राज्य किया। ये बड़े साहित्य-प्रेमी, विद्वान और विद्वानोंका आदर करनेवाले नरेश थे। राज्यमें इन्होंने अनेक सुधार किये तथा कई संस्थाओंको जन्म दिया। सम्वत १६३७ में इन्हे G.C.S.I. की उपाधि मिली। उसी अवसर किसी स्पष्टवक्ता कविने दूहा पढ़ा।

४०—सुरही हाजर हुई इ०—किसी बनियेने अपने जीवन भरमें केवल अेक पुण्यकार्य किया और वह था अेक गौ-दान। मरनेपर वह यमराजके दरबारमें लाया गया। यमने उससे कहा कि तेरी दी हुई गाय अेक घड़ी तक तेरे कहनेमें रहेगी और पीछे तू नरकमें डाला जायगा। जब गाय आई तो बनियेने उसे आज्ञा दी कि तू यमराजको मार। गाय सींग बढ़ाकर यमराजकी ओर दौड़ी। यमराज भाग चले, गाय भी पीछे-पीछे चली। बनियेने गायका पूँछ पकड लिया और वह भी साथ चला। यमराज भागते-भागते विष्णुभगवानके यहाँ गये और बोले कि महाराज मुझे बचाइये। विष्णु भगवानने सब हाल सुनकर बनियेको तुरन्त नरकमें डालनेकी आज्ञा दी कि इतनेमें बनिया चुपकेसे सामने आया और कहने लगा कि लोग तो आपका नाम याद करके ही भव-सागरसे पार हो जाते है, मैंने तो साक्षात् आपके दर्शन कर लिये, क्या अब भी मैं नरकका अधिकारी ही

वना रहा ? भगवान्‌ने हँसकर उसे स्वर्गमें भिजवा दिया। इस प्रकार बनियेने यमराजको भी चकमा दिया।

---

(६) प्रेम

२४—संकर विख इ०—अमृतको प्राप्त करनेके लिअे देवों तथा दैत्योंने समुद्रको मथा। मथनेपर जो वस्तुएं निकली उनमे विष भी था। भोलानाथ शंकरने उसे ग्रहण किया और उसे अपने गलेमे स्थान दिया जिससे उनका गला नीला हो गया। इसी कारण उनका नाम नीलकंठ पडा।

३०—सायर वहनि—सागरमे वड़वा नामको अग्निका निवास पुराणों में बताया गया है। इसीके कारण सहस्रों नदियोंके गिरनेपर भी समुद्रका पानी बढ़ने नहीं पाता—अेक ही सतहपर रहता है।

---

(७) शृङ्गार रस

१—प्रियतम

१—साजन-साजन हूँ करूं—अैसा ही अेक और दोहा नीचे लिखे अनुसार है—

साजन साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जडी।
साजन लिख दूँ कागदाँ, वाँचूँ घडी-घडी॥

६—वत्तीस लखण—साहित्यमें शारीरिक सौंदर्य के ३२ लक्षण प्रसिद्ध है। ये प्रायः स्त्री-सौंदर्यके संवध में वर्णित हुअे है।

२—नायिका

७—थल भूरा इ०—मिलाओ—

खेजड रूँख, भरूँट खड, ऊँडो नीर अथाह।
ढोलो पूछै, मारवण, इतरो रूप कठाँह॥

११—कूँझ—अेक पक्षी जिसे संस्कृतमें क्रौंच और हिंदीमें करांकुल कहते है। राजस्थानीमें यह शब्द कई तरहसे लिखा जाता है, जैसे—कुंज, कूँझ, क्रुँझ, कुरज। साधारणतया इसे कुरज कहते हैं। यह सारस जाति का पक्षी होता है और जलाशयोंके किनारे रहता है। राजस्थानी साहित्यमें इसका बड़ा भारी महत्व है। कुरजोंके सम्बन्धमें अनेकों सुन्दर उक्तियाँ मिलती हे जिनमेंसे कुछ आगे स्थान-स्थानपर दी गई हैं। आदिकवि वाल्मीकिकी प्रतिभा-स्फुरणका कारण अेक कुरजका करुण रुदन ही था—

मा, निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

इस पक्षीका स्वर अत्यन्त करुण होता है।

५—प्रियका प्रवास

६—कादम इ०—पानी तथा कीचड़वाली जमीनमें ऊँट प्रायः नहीं चल सकता।

१०—तीज—सावण और भाद्रपदकी तीजोंके त्यौहार राजस्थानमे धूमसे मनाये जाते है और बहुत लोक-प्रिय है। तीजोंका त्यौहार राजस्थान-का जातीय त्यौहार है।

३२—सजन सिधाया हे सखी इ०—अैसे ही दो दूहे ये है—

साजन सिधाया, हे सखी, वड़ियाँ बाँध कटार।
दोड़ी तो पूगी नहीं, हेला दिया हजार॥१॥
सजन सिधाया, हे सखी, कांधे धारी बँदूक।
कै तो साथे ले चलो, नहि कर दो दो टूक॥२॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

१०२—आज धराऊ धूँधऴो इ०—मिलाओ—

नव जल़ भरिया मग्गड़ा, गयणि धड़क्कइ मेह।
इत्थंतरि जइ आविसिइ, तइ जाणिस्सिइ नेह॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमें)

१२—चकवी—साहित्यमें प्रसिद्ध है कि रातको चकवा-चकवी अेक साथ नहीं रहते। दिनमे प्रियसे वियोग नहीं होता अतः चकवीका सूर्यसे प्रेम स्वाभाविक है।

११०—विच न समातो हार इ०—मिलाओ,—

हारो नारोपितः कंठे मया विश्लेष-भीरुणा ।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्सागर-भूधराः ॥

—रामायण

७—सदेशा

१—ढाढी—अेक जाति; इनका पेशा उत्सवोंपर गाना-बजाना तथा वंदीजन अेवं सन्देशवाहकका काम करना है। आरम्भमे ये हिन्दू ढोली या भाट थे पर वादमे मुसलमान हो गये। ये अब तक हिन्दू रीति-रिवाजोंका पालन करते है। कविता करना इनका पैतृक व्यवसाय है। राजस्थानके लोकप्रिय साहित्यके निर्माता तथा संरक्षक मुख्यतया ढाढी अेवं ढोली लोग ही हैं।

१३—प्रियतमका आगमन

१—काग उडावण धण खडी इ०—मिलाओ,—

वायसु उड्डावन्तिअअे पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमे उद्धृत अपभ्रंशका दूहा)

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो कौवेको उडाया जाता है। यह प्रथा प्रायः सारे भारतमें प्रचलित है। कबीर, सूर आदिने इसको लेकर कई-अक अच्छी-अच्छी उक्तियाँ कही है।

१५—सज्जण वारूँ कोडधा—इसपर यह कथा है—

वादशाह अकवरने अपने दरवारी वीकानेरके पृथ्वीराज राठोडसे अेक दिन कहा कि तुम्हारे तो देवी वशमें है, वताओ तुम्हारी मृत्यु कहाँ होगी। पृथ्वीराजने कहा कि मथुरामे विश्रामघाटपर। यह सुनकर वादशाहने

उन्हें नौकरीपर अटक भेज दिया कि देखें तुम्हारी मृत्यु मथुरामें कैसे होती है। इस बातको पाँच महीने हो गये। इसी समय किसी भीलने यमुना के तटपर बैठे चकवा-चकवीको कपड़ा डालकर पकड़ लिया और उन्हे बेचनेको शहरमे लाया। बादशाहको खबर हुई तो उसने पिंजड़ेको अपने पास मँगवा लिया और भीलसे पूछा कि रातको ये पक्षी कहाँ रहे। भीलने कहा कि इसी पिंजड़ेमें। बादशाहने कहा कि अैसा शत्रु तो मित्रसे कहीं अच्छा। इसपर खानखानाने यह चरण पढ़ा—

सज्जन वारूँ कोडधा या दुरजणकी भेट।

पर दूसरा चरण वे न कह सके। तब तुरन्त पृथ्वीराजको बुलानेका हुक्म हुआ। जब वे मथुरा पहुंचे तो उन्होंने इसका उतरार्ध बनाकर बादशाह के पास पहुँचा दिया और थोडी देर बाद वहीं उनका देहान्त हुआ।

---

(८) शान्त रस

१—कालबलीकी महिमा

२—काबाँ लूँटी गोपका इ०—श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेके पश्चात् अर्जुन द्वारका गया और वहाँसे बहुत-सी यादव-स्त्रियोंको लेकर हस्तिनापुर लौट रहा था कि मार्गमें बर्बर जातियोंने उसपर आक्रमण कर दिया। भावी-वश जिसने महाभारतका युद्ध जीत लिया था वह वीर अर्जुन उन बर्बरोंका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका और वे बहुत-सी स्त्रियोंको लूट ले गये।

६—हरचन्द वेची नार इ०—राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी राजा था और बड़ा सत्यवादी था। उसकी सत्यवादिताकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। स्त्री, पुत्र और अपने-आपको भी वेचकर उसने सत्यकी रक्षा की। विशेप जाननेके लिअे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक देखो।

४— चेतावनी

११—हाथाँ परबत तोलता—जैसे रावण, बाणासुर आदि।

समदाँ घूँट भरेह—जैसे अगस्त्य ऋषि जो समुद्रको पी गये थे।

६—हरिभक्ति

३—सबरी—यह भीलनी थी और मातंग ऋषिकी सेवा करती थी। ऋषिकी कृपासे इसे हरि-भक्ति प्राप्त हुई। ऋषिने उससे यह भी कहा था कि श्रीराम तुम्हारे यहाँ आवेंगे। तभी से शबरी जंगलमें जो अच्छे-अच्छे फल देखती उनको जमा रखती कि श्रीरामके आने पर भेंट दूंगी। अन्तमें उसकी कामना पूरी हुई। पिछले भक्तोंमें यह प्रसिद्धि हो गई कि शबरी स्वयं चख-चखकर स्वादिष्ट फलोंको जमा करती थी और श्रीरामने प्रेमके वश होकर उसके जूठे फल खाये।

---

(९) प्रकीर्णक

१—वर्षासम्बन्धी

१०—मालवे—मारवाडमें अकाल पडनेपर यहाँके लोग, विशेषतः गाय बैल आदि रखनेवाले, मालवे चले जाते थे जहाँ उनके पशुओंको घास और पानी मिल सके। दक्षिण राजस्थानके लोग अब भी कभी-कभी-अैसा करते है।

२—कूट और पहेलियाँ

१७—मृगरथ इ०—मिलाओ-दूर करहु बीना कर धरिवो। मोहेमृग, नाँही रथ हाँक्यों, नाँहिन होत चन्दको ढरिवो॥

—सूरदास

३२—फेरी कोनी—फेरा नहीं या फिराया नहीं। घोड़ेको फिराया नहीं, पानोंको उलटा नहीं, और रोटीको पलटा नहीं।

३४—कूट्यो कोनी—कूटा नहीं। कपडेको कूटा नहीं, मूँजको पीटा नहीं, और जाटको मार-पीटकर ठीक नहीं किया।

३५—जोड़ी कोनी—जोडी नहीं। गाडीके बैलोंकी जोडी नहीं, औरतके पैरोंमें जूती नहीं, और बेटीके लिअे वर नहीं मिला

नोट—इस प्रकारकी बहुत-सी पहेलियाँ अमर-खुसरोकी रचनाओंमे मिलती जिनका अेक सग्रह 'अमीर-खुसरो और उनकी कविता' के नामसे काशीकी नागरीप्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

४——प्रकीर्णक

२—जळ पीधो इ०—मिलाओ—

चडियो नीर अपार पड़ियो जद पीधो नहीं ।
गूद्‌लिये जळगार जीव न धापै, जेठवा ॥

३—जगतण इ०—मिलाओ—

जगतणकूँ भगतण कहै, कहै दूधकूँ खोया ।
चलतीकूँ गाडी कहै, देख कबीरा रोया ॥